प्रकाशक

फूलचन्द गुप्त

संचालक

सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा।

प्रथमबार १०००

संवत् २०

भूमिका

एकांकियों ने ही आधुनिक हिन्दी नाट्य के अधिकांश भाग को घेर रखा है। रंगमंच तथा प्रोत्साहन के अभाव में बड़े पाँच एकांकियों की पर्याप्त उन्नति नहीं हो सकी है, जबकि पश्चिमी एकांकियों के अनुकरण तथा कुछ अमेचर रंगमंचों, क्लबों, तथा स्कूल एवं कालेजों के उत्सवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के कारण हिंदी में एकांकी द्रुतगति से उन्नति कर रहे हैं।

हमारे यहां प्राचीन साहित्य, विशेषतः संस्कृत साहित्य में एकांकी मिलते हैं, किन्तु वे आधुनिक एकांकी से विभिन्न हैं। अर्वाचीन हिन्दी एकांकी का विकास बहुत कुछ पाश्चात्य अनुकरण पर हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन में यही स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी में अनेक विद्वान कलाकारों का ध्यान एकांकी को परिपुष्ट करने में लगा हुआ है। रेडियो के सहयोग के कारण हिन्दी को अनेक उच्च कोटि के टेकनीशियन मिल रहे हैं। रेडियो ने हिन्दी एकांकी की लोकप्रियता बढ़ाने में बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया है, और निरन्तर ले रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में नवीन हिन्दी एकांकी के उदय, विकास एवं प्रमुख एकांकीकारों का संक्षिप्त आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। आशा है, विद्यार्थी वर्ग इससे प्रचुर लाभ उठा सकेगा।

हरबर्ट कालेज, कोटा —प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

मई १६५३ ई०

विषय सूची

प्रथम खण्ड

एकांकी नाटक की तत्त्व विवेचना

एकांकी का जन्मः—

आधुनिक युग बड़ा तीव्रगामी है। विविध विघ्न-बाधा संकुल मानव जीवन में संघर्ष इतना अधिक और जीविका के साधन जुटाना इतना कठिन हो गया है कि मनुष्य का अधिकांश समय परिवार के भरण-पोषण तथा सामाजिक आडम्बर बनाये रखने में ही व्यतीत हो जाता है! प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में व्यस्त है। उसे पल मारने का अवकाश भी नहीं मिलता। रेल, तार, वायुयान हमारे जीवन की गतिशीलता के प्रतीक हैं। जीवन की शान्ति एवं तन्मयता गत महासमर से तीव्रता एवं कार्य बहुग्रता में परिवर्तित हो गई हैं।

समयाभाव के कारण गम्भीर तथा दीर्घकाय साहित्यिक माध्यमों के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गई तथा मनुष्य का लम्बे नाटकों, दीर्घकाय उपन्यासों, तथा विस्तृत महाकाव्यों के प्रति कम आकर्षण रह गया। मनुष्य नवीनता का पुजारी है वह सदैव नई-नई चीज़ों के निर्माण में रस लेता आया है। अतः चिर नवीनता की आकांक्षा करने वाले परिवर्तनशील मस्तिष्क ऐसे साहित्यिक माध्यमों के आविष्कार में लग गये जो अल्पकाल में ही मनोरंजन करा दे और जीवन-निर्माण में कुछ सहायता भी प्रदान करे। अतः ऐसे साहित्यिक माध्यमों का जन्म हुआ, जो आकार में संक्षिप्त होते हुये भी अपने अनिर्मित

सौन्दर्य और आकर्षण को स्थिर रख सके। महाकाव्यों से खण्ड काव्य, उपन्यासों से कहानियाँ, और नाटकों से एकांकियों का निर्माण हुआ।

अंग्रेज़ी साहित्यक परम्परा में एकांकी दसवीं शताब्दी के धार्मिक अवसरों पर अभिनीत संत जीवनियों में एकांकी के जन्म की कहानी मिलती है— "ईसाई भिक्षु अपनी धार्मिक-शिक्षा प्रसार के लिए कुछ मनोरंजक वातावरण निर्मित किया करते थे। उन्होंने संतों के जीवन के कुछ रोचक तथा अद्भुत रस से पूर्ण उन स्थलों को चुना, जो दर्शक को देर तक आकर्षित रख सकते थे। इन्हें वे नाटकीय रूप में प्रदर्शित करते थे। इन कथानकों में कहीं प्रेम की पराकाष्ठा थी, कहीं दया और करुणा की विजय थी, कहीं सहानुभूति की अविरल छाया थी और कहीं बलिदान और त्याग की मूर्तिमान भावना थी। इन्हीं भावनाओं में हमें एकांकी की छाया मिल सकती है।" १ इस प्रकार अंग्रेजी के "मिरैकिल्स" (सन्त-जीवन में अद्भुत कार्य सम्बन्धी लघु नाटक) तथा "मोरैलिटीज़" (नैतिक-शिक्षा विषयक लघु नाटक) नाटकों का प्रचलन हुआ। अनेक अंशों में ये दोनों शैलियें एकांकी नाटकों के सन्निकट आ जाते हैं। १७-१८ शताब्दियों में बड़े नाटकों के पूर्व या मध्य में अभिनय के योग्य छोटे छोटे पृथक आस्तित्व वाले छोटे नाटक लिखे गए, जो विशेषतः हास्य युक्त मनोरंजक से युक्त होते थे। विक्टोरियन युग में "प्रवेशिका" (Curtain Raiser) के रूप में एकांकी नाटक का एक रूप प्रचलित रहा। प्रवेशिका में साधारणतः दो पात्र परस्पर कथोपकथन द्वारा किसी भावना का स्पष्टी करण करते थे। इन पुराने रूपों में एकांकी निरन्तर विकसित होता रहा।

विकास में अंग्रेजी एकांकीकारों का सहयोग

भारत में अङ्गरेजी भाषा के दीर्घकालीन उपयोग, उच्च कक्षाओं में अंग्रेजी की नाट्यशैलियों से विशेष अध्ययन तथा माध्यम के रूप में व्यापक प्रसार के कारण हिंदी नाट्य जगत् में अंग्रेजी नाट्यशैलियों एवं माध्यमों का विशेष रूप से अनुकरण प्रारम्भ हुआ। ये प्रयोग करने वाले नाट्यकार पूर्ण शिक्षित एवं अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ थे। नवीन प्रयोग करने वालों में, विशेषतः नाट्यसाहित्य के निर्माताओं की संख्या ऐसे नाट्यकारों की संख्या प्रचुर थी, जो अंग्रेजी नाट्य जगत् के आदर्शों, परिपाटियों और नवीन प्रयोगों से प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे। अपने व्यक्तित्व, का रंग चढ़ा भारतीय समस्याओं तथा तत्कालीन विचारधाराओं से कथानक लेकर इन्होंने हिन्दी भाषा में पाश्चात्य शैली के एकांकी नाटकों के प्रयोग प्रारम्भ किये।

इधर योरप में कृत्रिम भावुकता, रोमाण्टिक ,अतिरंजना, कलागत रूढ़ियों एवं सौंदर्य साधना के पुराने मापदंड मर्यादा का अतिक्रमण कर चुके थे। धीरे-धीरे नवीन साहित्यिक जागृत एवं क्रान्ति के लिये पृष्ठ-भूमि तैयार होने लगी, किन्तु इग्लैण्ड में ऐसा कोई साहित्यिक न था, जो आधुनिक युग की विचार धारा के अनुसार परम्परा को ढाल लेता या ऐसी शैली का आविष्कार करता, जो आधुनिक परिस्थितियों से मेल खा जाती। यह महान् कार्य योरप में नौर नैजिन देनरिक इब्सन (१८२८-१६०६) द्वारा सम्पन्न हुआ। इब्सन ने १६ वीं शताब्दी के अंग्रेजी नाटकों को अति भावुकता, जीवन से दूरी, कल्पना तथा जीर्णशीर्ण मान्यताओं से मुक्त कर एक नये प्रकार के स्वाभाविक यथार्थवादी घरेलू

नाटक की नींव डाली। उनके नाट्य साहित्यमें भावुकतापूर्ण सौंदर्य, कल्पना जन्म साहित्य साधना के स्थान पर वर्तमान सामाजिक संघर्ष से उत्पन्न जटिलताएँ, नये युग की समस्याएँ, और नग्न यथार्थ वादी जीवन की झांकियां दिखायी गयीं। कृत्रिमता के विरुद्ध आवाज ऊँची की गयी। उन्होंने यथार्थ वाद का प्रचार किया; पुरानी बनावटी प्रणाली, काव्यमय कथोपकथन, पुराना रंगमंच, अस्वाभाविकताओं का बहिष्कार किया और नये यथार्थवादी आदर्शों का प्रचार किया। इब्सन ने प्रथमवार ऐसी यथार्थवादी दैनिक जीवन समस्याओं को अपने नाटकों का विषय बनाया जैसे प्रेम तथा विवाह की गुत्थियां, धर्म की उलझने, नैतिक आदर्शों का खोखलापन, सामाजिक आचार-व्यवहार तथा दैनिक जीवन की विद्रूपताएँ ये वे विषय थे जिन्हें विक्टोरियन नाट्यकारों ने विवेचन के उपयुक्त न समझा था और त्याग दिया था। उन्होंने स्त्री समस्याओं को अपने "डोल्स हाउस" में उभारा 'घोस्ट्स' में संस्कारों से उत्पन्न रोगों का विवेचन किया; 'एन, ए, निमी आफ़ दी पिपुल" में जनता की मनोवृत्तियों का खाका खींचकर यह चित्रित किया कि जनता एक स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति को किस प्रकार दण्डित करती है। 'दी वाईल्ड डक' में वह नाना प्रकार के अति को पहुंचे हुए व्यक्तियों पर हँसा। इस प्रकार इब्सन ने विषय सम्बन्धी एक क्रान्ति नाट्यजगत् में उत्पन्न की और नाना प्रकार की सामाजिक समस्याओं को नाट्यजगत् में प्रविष्ट कराया। उनके पात्र जीते जागते हड्डी और मांस के पुतले थे, जो दैनिक जीवन की सयस्याओं से संघर्ष करते थे। कल्पना की कला बाजियों, अद्भुत् रोमांचकारी कथानक या रंगमंच की सस्ती भावुकता से नाटक मुक्त हो गया।

सर्वप्रथम उनके नाटक सामाजिक, दैनिक और घरेलू समस्याओं से सम्बन्धित हैं। पुराने असंभव दृश्यों, मिथ्या भावुकता, रोमांस या कृत्रिमता का इनसे कोई सरोकार नहीं है। उनका मूल उद्देश्य अपने समाज के यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करना है। उन्होंने अनुभव किया कि लम्बी-लम्बी कृत्रिम भावुकता से भरी हुई उक्तियों से परिपूर्ण नाटकों का

सम्बन्ध मनुष्य के नित्य प्रति के दैनिक जीवन से कुछ भी नहीं हो सकता। यदि अंग्रेजी नाटक महत्वपूर्ण बनना चाहता है, तो उसे समाज का प्रतिबिम्ब बनकर रहना होगा, युग के जीवन, तथा समस्याओं को मुखरित करना होगा; अद्भुत कल्पना युक्त प्रदेश तथा व्योमविहार से मुक्त होकर नये युग के कठोर सत्यों का दिग्दर्शन कराना होगा। इन यथार्थवादी आदर्शों का कुछ प्रतिपादन हेवुड ने सत्रहवीं शताब्दी में किया था; किन्तु उन्होंने सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं का प्रतिपादन इतन यथार्थवादी ढंग से नहीं किया था। इब्सन ने घरेलू और सामाजिक समस्याओं के प्रति जनता की रुचि को मोड़ दिया।

उनके नाटक आधुनिक सामाजिक जीवन की नित्य प्रति की घटनाओं से सम्बन्धित समस्या-नाटक थे, जिनमें व्यंग, उपहास, कटाक्ष और आलोचना का सम्मिश्रण था। इनका उद्देश्य मानव को समाज के जीर्णशीर्ण सम्बन्ध, कृत्रिमता, रूढ़वादिता से मुक्ति दिलाकर स्वच्छन्द बनाना था। इब्सन ने नये समाज का निर्माण करने वाली भावना के चित्र खींचे हैं। उन्होंने चित्रत किया है कि सामाजिक मानव का भाग्य-निर्माण करने वाली कुछ अदृश्य शक्तियां हैं, जो मंच के भीतर से पात्र को प्रभावित करती हैं और धीरे-धीरे नाटक की कथा वस्तु को करुणा की चरम सीमा पर पहुंचा देती हैं। विशेष रूप से अपने विवाहित स्त्रियों की दयनीय परिस्थिति तथा समाज के शिकंजे में बँधे होने के चित्र खींचे हैं। उन्होंने प्रथम बार साहस पूर्वक समाज की कमजोरियों का संकेत किया।

टैकनिक के क्षेत्र में नाटक के पांच भागों में से, इब्सन ने प्रारम्भिक भाग को छोड़ दिया। उनके नाटक संघर्ष से प्रारम्भ हुए। यह संघर्ष को पार कर तीव्र गति से चरम सीमा की ओर चलते हैं और फिर अन्तिम निर्णय पर पहुंच जाते हैं। इब्सन ने स्पष्टवादिता और स्वाभाविकता से काम लिया यह स्वाभाविकता विक्टोरियन युग की अति रंजना और भावुकता के विरुद्ध एक प्रति-क्रिया स्वरूप हुई थी। लम्बे काव्यमय कथोपकथन, स्वगत कथन, अर्द्धजागृत, संकलन-त्रय की अवहेलना प्राचीन परिपाटी के काल्पनिक

मिथ्या विचार शून्य-मनोविकारों के कृत्रिम उद्‌गारों का चित्रण छोड़ दिया गया। कल्पना-लोक तथा कृत्रिम आदर्श भूमि से उतर कर नाटक चिरसंघर्ष-मय वर्तमान में आ गया।

इंगलैंड में नाटक को कृत्रिमता, अतिशय भावुकता और रंगमंच के सस्तेपन से मुक्त करने का कार्य अर्थात जोन्स पिनरो (१८५५-१९३४) तथा हेनरी आर्थर जोन्स (१८५१-१९२९) के द्वारा सम्पन्न हुआ। उनकी प्रारम्भ में तीखी आलोचना भी हुई। हेनरी आर्थर जोन्स का नाटक "माईकल एन्ड हिज लौस्ट एन्जिल" ने बड़ी क्रांति उत्पन्न की, क्योंकि उसका कथानक एक ऐसे पादरी के जीवन से सम्बन्धित था जिससे पाप किया और उस पाप पर उसे जितना पश्चात्ताप करना चाहिये था न किया। धर्म के संरक्षकों ने इसपर तीखे प्रहार किया किन्तु जोन्स तथा पिनरो अपने क्रांतिकारी कार्य में दृढ़ता से लगे रहे। इनके अनंतर ऑस्कर वाल्ड तथा डबल्यू० एस० गिलबर्ट के नाटक आते हैं, जिनमें जागृत का प्रकाश है और जो जीवन के अधिक समीप हैं। वाइल्ड ने अपने तीखे बुद्धि विलास और व्यंग द्वारा अंग्रेजी नाटक को विश्वसाहित्य में ऊँचा उठाया। वे सौंदर्य के सब रूपों के आराधक थे। गिल्बर्ट भी व्यंग के प्रयोग की असाधारण प्रतिभा सम्पन्न थे तथा अपने युग की कमजोरियों के निर्देश में विशेष प्रयत्नशील रहे।

इब्सन का नये युग के नाट्यकारों पर विशेष प्रभाव पड़ा है। उनकी यथार्थवादी स्वाभाविक कार्य-प्रणाली से प्रभावित होकर आर्थविंग, पिनसे, गल्र्सवर्दी, शा इत्यादि एकांकीकारों ने नवीन शैली के यथार्थवादी समस्या-मूलक नाटकों की सृष्टि की है। अंग्रेजी रंगमंच क्रमशः तड़क-भड़क तथा व्यवसायी वृत्ति से मुक्त होकर जीवन के समीप आ गया। आधुनिक नाट्यकारों ने तड़क-भड़क के दृश्य निकाल डाले और अपनी समस्याएँ, पात्र, स्थिति, वातावरण इत्यादि मानव जीवन की दैनिक समस्याओं में से चुने हैं। कथोपकथन में स्वाभाविकता का पूर्ण ध्यान रखा गया है। पात्रों के भाषण लम्बे न होकर छोटे-छोटे सरल भावयुक्त स्वाभाविक और

व्यापक होने लगे हैं। नाट्यकारों की कला का, केन्द्र-विंदु जीवन का ज्यों का त्यों यथार्थवादी चित्रण हो गया। यही नहीं, पश्चिम के आधुनिक श्रेष्ठ नाट्यकार केवल अंग-परिचालन तथा मूक अभिनय द्वारा मन की नाना वृत्तियों की अभिव्यंजना नाट्यकला का एक अंग मानने लगे। वे आधुनिक मानव जीवन तथा समाज का नग्न चित्र प्रस्तुत करना अपनी कला का ध्येय समझने लगे।

अंक-विधान के सम्बन्ध में भी नाना प्रकार के प्रयोग हुए हैं। शेक्सपीयर के नाटकों की पांच अंक वाली पद्धति के विरुद्ध आन्दोलन चले हैं। पांच के स्थान पर तीनों अंकों को रखने की प्रथा चली। कथावस्तु के तीन महत्वपूर्ण भागों को तीन अंकों के अन्तराल में संक्षिप्त कर दिया गया। यह विकाश अवस्था थी, जहां आकर नाटक-प्रगति अवरुद्ध नहीं हुई। तीन अंक संकुचित होकर अंक में सीमित हो गये। अनावश्यक पात्रों का बहिष्कार कर दिया गया। एकांकियों में जीवन का एक पहलू, एक महत्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा उद्दीप्त क्षणका चित्रण प्रारम्भ हो गया। क्षेत्र संकुचित किन्तु संकलन-त्रय का पूर्ण निर्वाह चलने लगा।

इब्सन तथा उनके अनुयायियों के नाटकों का योरप में पहले तो बड़ा तिरस्कार हुआ, किन्तु कालान्तर में पूर्वापेक्षा उनकी यथार्थवादी शैली का महत्व समझा गया। आज पश्चिम में इब्सन का जो मान है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सन् १८६५ में जो भविष्यवाणी बर्नार्ड शा ने की थी वह सत्य थी। इब्सन के प्रभाव से नाटकों से बाह्याडम्बर, कृत्रिमता, पद्यों का प्रयोग, नृत्य, स्वागत, इत्यादि का बहिष्कार हो गया। नाटक जीवन के समीप आ गया है। पश्चिम के सभी आधुनिक नाट्यकारों पर इब्सन का प्रभाव स्पष्ट है।

भारत में भी नाट्यकारों पर यह प्रभाव स्पष्ट दीखता है। हिन्दी के पुरानी शैली के नाट्यकारों में पात्र पद्य में बातचीत करते थे, शेर सुनाये जाते थे कवि ताओं और नृत्यों की भरमार रहती थी यहां तक कि पात्र गद्य में बोलता बोलता

अकस्मात् पद्य में बोलने लगता था। स्वागत कथन लम्बे लम्बे तथा अस्वाभाविक होते थे। इब्सन के प्रभाव के कारण ये विलुप्त हो गये हैं। कुछ विशेष स्थलों और परिस्थितियों को छोड़ कर पात्रों रङ्गभूमि पर लम्बे लम्बे स्वागत भाषण करना सर्वथा अस्वाभाविक माना जाने लगा।

आधुनिक अंग्रेजी एकांकीकार, जिन पर इब्सन का विशेष प्रभाव पड़ा है, ये हैं—आर्थर विंग, पिनरो, आस्कारवाईल्ड, जार्ज बर्नार्डशा, आर्थरजोंस, होप्टमैन, शेखोव, संडरमैन, प्रिन्डेलो। इन सब एकांकीकारों ने कृत्रिमता से मुक्ति पाकर दैनिक जीवन तथा समाज के दिन-प्रति-दिन की समस्याओं, जीवन के नाना पहलुओं, परिस्थितियों को शब्द-मितव्यय तथा निदर्शन चातुरी से प्रस्तुत किया। कथोपकथन में वाक्वैदग्ध्यता, संक्षिप्तता, मर्म-स्पर्शिता और चारित्रिकता का समावेश किया। नाटकीय संकेत बढ़ कर लम्बे, व्यापक, प्रभावव्यंजक तथा रंग भूमि की व्यवस्था के सम्बन्ध में लम्बी योजनाओं से युक्त हो गये। रंगमंच की अपूर्णताओं और न्यूनताओं को दृष्टि में रख कर अभिनय योग्य एकांकियों का निर्माण किया गया।

अंग्रेजी के आधुनिक प्रमुख एकांकीकार

ओनीलः—ओनील (Eugeneo' Neill) अपने कुछ एकाँकी नाटकों जैसे—The Moon of caribbees, The Long voyage Home, Bound East for Cardiff के लिये विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें टेकनिक का विशेष सौन्दर्य है। प्रारम्भ विशेष कलात्मकता से होता है। कुछ नाटकों जैसे Ill, The Emperor Jones में प्रारम्भ लम्बा हो गया है। नाटकीय पृष्ठभूमि सतर्क रहती है। आपके सभी एकाँकियों की एक मूल समस्या है—व्यक्ति का परिस्थितियों से निरंतर संघर्ष। ओनील की त्रुटियों में यह बात ध्यान देने योग्य है कि इनके नारी पात्र, जब वे संघर्ष में लीन नहीं होते, तो कमजोर पड़ जाते हैं। एकाँकियों में विस्तार भी अधिक हो जाता है।

-सेठ गोविन्ददास "नाट्यकला मीमांसा"

पॉलग्रीन:—(Paul Creen) अपने पात्रों के स्थान (या लौकल कलर) तथा भौगोलिक विशेषताओं के प्रति विशेष सजग है। इनका झुकाव एक कवि जैसा है—भाषा और भाव दोनों में। संगीतमय तथा स्वाभाविक सवाद लिखने मे बहुत कम अंग्रेजी नाट्यकारों को इतनी सफलता प्राप्त हुई है। आपकी समस्यायें देखकर प्रतीत होता है, जैसे आपने स्वयं अनुभव किया है।

जे० एम० बेरी:—रंगमंच के साधनों का जितना अच्छा उपयोग बेरी ने किया है वह बहुत कम नाट्यकार कर सके हैं उनके चरित्र-चित्रण चित्रोपमता है और मूक अभिनय भी अपनी पृथक् विशेषता रखती हैं। कथानक का भी सौन्दर्य है।

बर्नार्ड शा:—शॉ में वक्ता का स्वरूप प्रकट हुआ है। उनके पात्र तर्क और वाद–विवाद में बहुत दिलचस्पी लेते हैं, भूमिकाएँ तथा रंग-सूचनायें प्राय: लम्बी होती हैं। आपके कथोपकथन स्वाभाविक तथा तर्कपूर्ण रहते हैं। इनकी त्रुटि यह है। कि ये लेखक के विचारो की कठपुतली जैसे बन गये हैं। प्रारम्भ का भाग लम्बा हो जाता है।

नोएल क्रोवर्ड:—(Noel Coward) व्यंग्यकार के रूप में उल्लेखनीय हैं। आपकी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, मानव मनकी निगूढ़तम गुत्थियों का अध्ययन सूक्ष्म होता है। कभी-कभी कमजोर वातावरण में भी सशक्त चरित्रों के निर्माण द्वारा बल डाल देते हैं। आप सुखान्त एकांकी या व्यंगात्मक प्रहसन लिखने में सिद्धहस्त हैं।

हैराल्ड ब्रिगहाउस:—टेकनिक की दृष्टिसे आप सफल हैं और प्रायः सरल समस्याओं पर ही एकांकी लिखते रहते हैं आपका दृष्टिकोण सीधा कथानक मंजा हुआ और दृष्टिकोण तीव्र होता है। ग्रामीण-भाषाओं के कथोपकथन निर्माण में विशेष सफल रहते हैं।

क्लफर्ड ओडेट्स:—(Clifford Odets) आपके एकांकीओं में कार्यव्यापार तीव्र होता है और संक्षिप्त सें प्रारम्भ से वे गतिवान हो जाते हैं। विकास में आप विशेष परिश्रम करते हैं। आपके Waiting for

Lefty और Tile the Day I Die में आपने कथानक का अच्छा गठन दिखाया है। आपका कथोपकथन कभी कभी शुद्ध और नीरस तर्क से परिपूर्ण हो जाता है।

भारतेन्दु काल में अंग्रेजी का प्रभाव पड़ चुका था, पर वह इस काल में और अधिक स्पष्ट होने लगा था। अंग्रेजी पुस्तकों अनुवादों तथा बँगला से छनकर अंग्रेज़ी साहित्य हिंदी पर प्रभाव डालने लगा था। हिंदी एकांकी से बाल्यकाल में अँग्रेजी के नाटकों के कुछ अनुवाद हुए थे किन्तु वे अधिक सफल नहीं थे। अब कविता, गद्य, तथा नाटकों— तीनों ही क्षेत्रों में अंग्रेजी साहित्य के प्रति लेखकों का आकर्षण था काव्य के क्षेत्र में श्रीधर पाठक द्वारा गोल्डस्मिथ के "डेज़रटेड विलेज;" तथ "ट्रेवलर" के अनुवाद हो चुके थे। वर्डसवर्थ के प्रकृति-चित्रण का प्रभ था। हमारे कवियों ने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण कर उनका वर्णन अंग्रे शैली पर किया। गोल्डस्मिथ की शैली पर श्रीधर पाठक ने स्वयं लिख सब से महत्त्वपूर्ण कार्य नाटक के क्षेत्र में हुआ। शेक्सपीयर एडीसन अ नाट्यकारों के और अनुवाद हुये। इटावा-निवासी रत्नचन्द (१८५०-१९१ ने "कामेडी आफ एरर्स" का "भ्रमजालक" नाम से स्वतन्त्र अनुवाद कि गोनाराम वर्मा ने जो सेर एडीसन के "केटो" का "केटो वृतांत" ना अनुवाद किया। अनुवाद की दृष्टि से जयपुर के पुरोहित गोपीनाथ एम. "ऐज़ यू लाइक इट" का "मनभावन" तथा "रोमियोजूलियेट' "प्रेमलीला" विशेष सफल रहे हैं। भारतेन्दु ने केवल विदेशी स्थान नाम पर भारतीय नाम रख दिये थे; पात्रों, रीति रिस्मों आचार वि को विदेशी रूप में ही रहने दिया था। जबलपुर की आर्या नामक मर्ा "मर्चेन्ट आफ वेनिस" नामक का एक अविकल अनुवाद प्रस्तुत किया पद्यांशों का अनुवाद पद्यों में ही दिया गया। पुरोहित गोपीनाथ त साहित्य ने कवि के शब्दों और वाक्यों को अति सुन्दर रूप में सन् १८९३ में मिर्जापुर के मथुराप्रसाद उपाध्याय शर्मा बी. ए. ने शे के मैकबेथ का "साहसेन्द्र" नाम से अनुवाद किया। इनकी एक विशे

थी। कि उन्होंने कथा को भारतीय वातावरण में प्रस्तुत किया। अंग्रेजी के इस प्रभाव से हिंदी एकांकी में नवीन प्रेरणा प्राप्त हुई। हिंदी नाटयकारों को अपनी त्रुटियों का ज्ञान हुआ, रूढ़ियों में शिथिलता आने लगी, "स्वगत कथन" भी कम हो गये, पद्यों का प्रयोग भी अपेक्षाकृत शिथिल होने लगा। एकांकियों की रचना भी पाश्चात्य ढांचे के समीप आ गई। भाव, भाषा, शैली सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी अपना प्रभाव डाल रही थी।

आधुनिक हिन्दी नाटक के टेकनिक पर अंग्रेजी नाटक के आदर्शों की स्पष्ट छाप है।..आज का नाटक अस्वाभाविक वार्त्तालाप, दोहा-शेरवाली पद्धति अयथार्थवादी दृष्टिकोण, कृत्रिमताओं से मुक्त हो चुका है शेक्सपीयर की अतिरंजना प्रधान भावावेश की पद्धिति बहिष्कृत हो चुकी है। हिन्दी नाटकी स्वाभाविकता, यथार्थवाद, और दैनिक जीवन, समाज की समस्याओं को मुखरित कर रहा है। सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव हिंदी के एकांकियो के क्षेत्र में देखा जा सकता है। पश्चात्य अनुकरण हिंदी में अनेक प्रयोग हुए हैं आइये, देखें हिन्दी-एकांकी को अंग्रेजी ने कितना प्रभावित किया है—

<u>अंग्रेजी के अनुकरण हिन्दी में एकांकी का विकास—</u>

यों तो प्राचीन तथा नवीन मान्यताओं के अनुसार हिन्दी में एकांकी का विकास चल ही रहा था, किन्तु अंग्रेजी नाट्य साहित्य के प्रभाव से आधुनिक ढङ्ग से एकांकी का विकास आधुनिक युग की देन है। एकांकी पश्चिम के अनुकरण पर हमारे यहां भी प्रारम्भ हुआ। जिस टेकनिक के नये एकांकी लिखे गये, वैसे हमारे यहाँ नहीं थे। १, साधारणत: संस्कृत की परिपाटी पर जो एकांकी रचे गये हैं, उनकी प्रवृत्ति विस्तार की ओर है। हिन्दी-साहित्य में इस युग से पूर्व जिन एकांकियों का निर्देश किया गया है, वे पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार नहीं लिखे गये थे। उनके विशिष्ट तन्त्र का ज्ञान हमें न हो सका था। उनके रूप में अन्तर था।

इब्सन, पिनरो और शॉ इत्यादि में पुरानी पद्धति, कृतिम भावुकता, जीवन का अतिरंजित स्वरूप, स्वगत, काव्य का प्रयोग, दृश्यों की अधिकता, संकलन त्रय की अवहेलना तथा अन्य अस्वाभाविकताओं के विरुद्ध जो यथार्थ

इधर रेडियो पर प्रसारण के लिये एकांकियों की मांग बढ़ती गयी है। रेडियो के लिये अग्रेंजी एकांकियों के अनुवाद किये गये। अंग्रेजी के व्यापक प्रचार एव शिक्षा के कारण जनता पाश्चात्य शैली के एकांकियों का पर्याप्त मान हुआ। श्री कामेश्वरनाथ भार्गव ने "विराप्स कैण्डिलस्टिक्स" का "पुजारी" (१६३८) नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया। हेराल्ड विग्रहाउस के 'दी प्रिंस हू वाज़ पाइपर' तथा जे० जे० फर्गुसन के एकाकी "कैम्पबेल आफ किल म्हार" के अनुवाद प्रकाशित हुए। ए० ए० मिल्न की "दी मैनइन टी बौडलर हैट" का अनुवाद प्रो० अमरनाथ गुप्त ने किया; एच ब्रिगहाउस एवं जे० ए० फर्गुसन के एकांकियों के स्वतन्त्र अनुवाद श्री प्रेमनारायण टण्डन ने भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाकर किए। अमृतराय ने रूसी लेखक कोस्तांतिव सियोनोफ़के एकांकी "रूसी लोग" (सन १६४३) "चार चित्र" और "निशानेबाज़" रूसी एकांकी प्रस्तुत किये। श्री बृन्दावनलाल वर्मा ने आर्थर वेली के एक एकांकी का अनुवाद "प्रहसन प्रवेशिका" के रूप मे किया है। औलीफैण्ट डाउन के "मेकर आफ़ ड्रीम्स" का रेडियो रूपान्तर किया गया। जौन डिन्सवाटर के "× = ० ए नाईट आफ़ दी ट्रौजन वार" का अनुवाद श्री दुर्गादास भास्कर एम० ए०, एल० एल० बी०, "सरस्वती" में कलिंग युद्ध की एक रात" के नाम से प्रकाशित किया था। श्री भारतीय एम० ए० ने जापान के "नौ" नाटकों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया था :

१—कुछ आलोचकों के मत इस प्रकार हैं—

हिन्दी में आधुनिक एकाकी नाटक पश्चिम से आया है। संस्कृत में पुरानी परिपाटी के नाटकों का उल्लेख उपलब्ध हैं, किन्तु ये पुराने टाइप के काव्य प्रधान एकांकी हैं। हिन्दी का एकांकी संस्कृत रीति से नहीं, पाश्चात्य शैली से प्रभावित हुआ है।" —डा० हरदेव बाहरी, डी० लिट्

२—हिन्दी साहित्य में एकाकी नाटक पाश्चात्य अनुकरण की देन हैं।
—प्रो० चन्द्रकिशोर जैन, एम० ए०

३—हिन्दी एकांकी पर पाश्चात्य एकांकी का प्रभाव पड़ा है।
—प्रो० डी० एम० बोरगांवकर, एम० ए०

नाट कहा गया है।

भाणः स्याद् धूर्त्तचरितो नानावस्थांन्तरात्माः।

एकांका एक एवात्र निपुणः पण्डितो विटः॥

भाण में अंक और एक ही पात्र होता है। यह पात्र कोई बुद्धिमान विट होता है जो अपने तथा दूसरों के धूर्ततापूर्ण कृत्यों को वार्तालाप के रूप में रंगमंच पर चित्रित करता है। वार्तालाप किसी कल्पित व्यक्ति के साथ होता है। रंगमंच पर आकर नायक आकाश की ओर देखता हुआ सुनने की आकृति करके कल्पित पुरुषों की उक्तियों को स्वयं दुहराता है। भाण में एक ही अंक का विधान है। श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क" ने संस्कृत एकांकियों में भाण तथा एकांकियों को विशेष महत्त्व प्रदान किया है।

संस्कृत एकांकियों के तत्त्वों पर विचार करने से पूर्व उनके भेदों के आधारों पर विचार करना चाहिये। ये भेद नाना दृष्टियों से किये गये हैं। जैसे १. चरित २. अंक, ३. पात्रों की संख्या, ४. अभिनय प्रणाली, ५. इसका आधार, ६. कथानक की स्वाभाविकता, ७. वृत्ति, ८. संधि तथा ९. कृत्य आदि के आधार। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर संस्कृत एकांकियों की भिन्न-भिन्न श्रेणियां बनीं तथा उनका प्रचार हुआ। यद्यपि आज के युग में इनमें से बहुत से प्रकार प्रायः लुप्त हो चुके हैं, तथापि हिंदी एकांकी के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योग है। इसमें यह सन्देह नहीं कि इनका यथार्थ अन्तर पूर्णतः आज हम नहीं समझ पायेंगे, क्योंकि संस्कृत एकांकी का प्रवाह अवरुद्ध सा हो गया है तथा एकांकी कला उत्तरोत्तर विकास मार्ग पर आरूढ़ रही है।* संस्कृत एकांकियों का टैक्नीक, रंगमंच तथा परिस्थितियाँ आधुनिक वैज्ञानिक साधनों से परिपूर्ण जगत से सर्वथा भिन्न थीं। तब भी प्रयोग की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि नाट्याचार्यों ने संस्कृत साहित्य में एकांकी के महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये थे और एकांकी निर्माण के निमित्त नाट्यकारों के लिये नियम निर्धारित किये थे। संस्कृत एकांकी की टैकनीक यथेष्ट विचार तथा रंगमंच के अनुभव के पश्चात निर्धारित की गई थी, परन्तु उनकी प्रणाली अर्वाचीन पश्चिमीय प्रणालियों से सर्वथा भिन्न थी।

* [illegible] "[illegible]" भूमिका पृष्ठ ५.

संस्कृत एकांकियों के उपभेद:—

व्यायोग:—आधुनिक टेकनीक की दृष्टि से व्यायोग पूर्ण एकांकी स्वरूप है। इसमें एक अंक होता है तथा एक दिन का ही वृतान्त के रहने से काल सकलन का पूरा निर्वाह रहता है। व्यायोग के अन्य लक्षण इस प्रकार हैं:—

"ख्यातेति वृत्तो व्यायोग: स्वल्प स्त्रीजन संयुत:,
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रित:
एकांकश्च मते ....।"

व्यायोग का कथानक ऐतिहासिक या पौराणिक होता है नायक धीरोद्धत राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष होता है। स्त्री पात्रों की न्यूनता रहती है, पुरुष पात्रों की बहुलता होती है। हास्य या श्रृंगार प्रधान रस नहीं होते। युद्ध का कारण स्त्री के अतिरिक्त अन्य कोई होता है, जैसे व्यक्तिगत ईर्षा, दर्प, अभिमान या जातिगत उग्रता। कौशिकी वृत्ति का प्रयोग नहीं होता। भारतेन्दुजी ने "धनंजय विजय" का निर्माण हिन्दी लक्षणों के अनुसार किया है। संस्कृत का "सौगंधिका हरण" सफल व्यायोग का उदाहरण है। इसी प्रकार "किरातार्जुनीय" तथा परमार राजा धरावर्ष के भाई प्रह्लादनदेव का एकांकी "पार्थ पराक्रम" भी द्रष्टव्य हैं।

गोष्ठी : इस प्रकार के एकांकी में नौ या दस प्राकृत साधारण श्रेणी के पात्र होते हैं। जिनमें पांच है स्त्रियाँ होती हैं। श्रृंगार के तीनों रूपों में श्रृंगार की प्रधानता होती है। उदात्त वचन शून्य का शिकी वृत्ति का प्रयोग होता है। गर्भ और विमर्श संधियाँ नहीं होती हैं। "रैवत मदनिका" सरल गोष्ठी का उदाहरण है।

अंक : उत्सृष्टांक : यह करुण रस प्रधान एकांकी है जिसमें स्त्रियों के विलाप से वातावरण एवं इसकी सृष्टि की जाती है। एक अंक और साधारण पुरुष प्रमुख पात्र का कार्य करता है इसका कथन लोक प्रसिद्ध होता है किन्तु एकांकीकार अपनी प्रतिभा जन्य निपुणता द्वारा कथानक का विस्तार कर देता है। कथानक

का मूल अभिप्राय हार अथवा जीत का चित्रण होता है। दो परस्पर विरोधी शक्तियों का युद्ध घात प्रतिघात या प्रहारमय नहीं, प्रत्युत वाणी का होता है। इसमें जिस भाषा का प्रयोग होता है उससे वैराग्य की भावना प्रगट होती है। वृत्ति भारती, सन्धि मुख निर्वहण तथा दसों लासांगों का अंग-नृत्य रहता है। शर्मिष्ठायति" सफल अंक का उदाहरण है।

भाण में एक ही पात्र द्वारा सम्पूर्ण कथोपकथन का प्रयोग होता है। सम्बोधन और युक्ति प्रत्युक्ति आकाश भासित के द्वारा होती है। मुख्य पात्र रंगमंच पर अपने अभिनय द्वारा किसी कल्पित व्यक्ति द्वारा वार्तालाप करता है। इस एकांकी की विशेषता यह है कि एक ही व्यक्ति को दो व्यक्तियों (कभी दो से अधिक) का कार्य करना पड़ता है। कभी नाना वस्तुओं को सम्बोधित कर वह रस का आविर्भाव करता है। भाण में प्रायः भारती वृत्ति, मुख और निर्वहण सन्धियों तथा लास्य के दस अंग का प्रयोग होता है इसका सम्बन्ध अतीत के गर्भ में छिपे हुये अनुभावों से विशेष रूप में होता है। भाण का प्रयोग अंग्रेजी में भी मीनोड्रामा के रूप में हुआ है। पश्चिम साहित्य में गद्य और पद्य में पृथक-पृथक भिन्न-भिन्न प्रकार के मीनोड्रामे हैं। अंग्रेजी में सुप्रसिद्ध कवि ब्राउनिंग के मीनोड्रामा विशेष लोकप्रिय हुये हैं। हिन्दी में सेठ गोविन्ददास "सच्चा जीवन" "प्रलय और सृष्टि" "अलबेला" "शाम और वर" "स्टेएटवर्न और ओ" नील की पद्धति पर लिखे गये हैं। संस्कृत में "लीला मधुकर" भाण प्रसिद्ध है। भाण की ही शैली का एक उपरूपक भाणिका भी होता है, जिसमें नायक मंदति और नायिका उदात्त और प्रगल्भा होती है।

नाट्य रासक एक प्रकार का गीति एकांकी है, जिसका प्रमुख पात्र उदात्त और उपनायक पीठ मर्द होता है। प्रधान रस हास्य तथा सहायक वातावरण शृंगार रहता है। इसमें वासक सज्जा नायिका की योजना है। इसके अतिरिक्त मुख और निर्वहण सन्धियाँ तथा नाट्य के दसों अंगों की योजना होती है।

उल्लाप्य में एक अंक, दिव्य कथा, धीरोदत्त, नायक चार नायिकायें तथा

शृंगार हास्य और करुण रस होते हैं। इसके विस्तार के सम्बन्ध प्रायः नाट्यकारो के दो मत हैं। यह एक ही अंक का होता है किन्तु कुछ आलोचक इसका विस्तार तीन अंकों तक मानते हैं। सभव है इसके विस्तार का प्रारम्भ एक अंक से प्रारम्भ होकर तीन अंको तक चला हो।

काव्य मे केवल एक अक, आरमटी वृत्ति नहीं होती, हास्य व्यापक रस रहता है, गीतो का बाहुल्य रहता है, नायक और नायिका दोनो उदात्त होते हैं और मुख, प्रतिमुख और निर्वहण सन्धियाँ होती हैं।

प्रेंखण : इस एकाकी मे प्रमुख पात्र हीन पुरुष होता है, गर्भ और विमर्ष सन्धियाँ नहीं होती। सूत्रधार विष्कभक तथा प्रवेशक आदि का प्रयोग नहीं किया जाता है। नान्दी एवं प्ररोचना को नैपथ्य से ही पढ़ने का विधान है। युद्ध, सक्ट तथा सब वृत्तयो होती है। संस्कृत मे "वालिवध" प्रेंखण का उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्रीगदित : मे एक अंक, प्रसिद्ध कथा तथा धीरोदत्त नायक होता है। गर्भ और विमर्स सन्धियाँ इसमें नहीं होती, पर भारतीवृत्ति का आधिक्य होता है। एक पाश्चात्य विद्वान का मत है कि इसमें नायिका लक्ष्मी का रूप धारण करके आती है और कुछ बोलती है या गाना गाती है। इससे इसका नाम श्रीगदित पड़ा है। इसका कथानक प्रसिद्ध कथा से लिया जाता है। "मायाकापालिक" एक सफल श्रीगदित का उदाहरण है।

विलासिका मे एक अंक होता है जिसमें दस लास्यांगों का विनिवेश तथा विदूषक, विट, पीटमर्द आदि का व्यापार होता है। गर्भ और विमर्ष संधियाँ इसमे नहीं होतीं। नायक हीन गुण वाला होता है, किन्तु वेश-भूषा में अच्छी तरह जाता रहता है! इसमें कथानक सक्षिप्त होता है।

हल्लीश मे एक ही अंक, सात से दस तक स्त्री पात्रों तथा उदात्तवचन बोलने वाला एक पुरुष रहता है। इसमे कौशिकी वृत्त तथा मुख और निर्वहण सधियाँ हैं एवं गान, लय, ताल का प्रचुरता से प्रयोग किया जाता है। "केलि खेतक" इसी प्रकार के सफल एकाकी का उदाहरण है।

वीथी : इस एकाकी मे नायक कल्पित होता है। वातावरण मे शृंगार रस की प्रधानता रहती है। एक ही प्रमुख समस्या का विकास होकर नाटक की समस्त घटनाये एक ही दिन मे समाप्त हो जाती है। आकाशवाणी द्वारा उक्ति प्रत्युक्ति होती है। अर्थ प्रकृतियो के साथ-साथ मुख और निर्हवण सन्धियाँ होती हैं। पात्रों की सख्या एक से तीन तक होती है।

प्रहसन : मे प्रायः एक ही अंक होता है। इसलिये एकाकी के अन्तर्गत आता है। इसमे हास्यरस की प्रधानता होती है। आरभटी वृत्ति विष्कभ का प्रयोग नहीं होता ! वीथी के तेरह अंगो मे से सभी इसमें आ सकते हैं। शुद्ध प्रहसन मे पाखण्डी, सन्यासी, तपस्वी अथवा पुरोहित नायक की योजना होती है। प्रहसन तीन प्रकार का होता हैं, शुद्ध, विकृत और संकर। हिन्दी मे प्रहसन का विशेष रूप से प्रचार हुआ है।

उपर्युक्त उपभेदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सस्कृत साहित्य मे एकांकी की परम्परा पुरानी है। सस्कृत एकाकी टेकनीक पर्याप्त जटिल था और उनके उदाहरण भी पर्याप्त विकसित स्वरूप में उपलब्ध थे। स्थूल रूप में वे एकांकी की आधुनिक दोनो श्रेणियो (एकांकी और झाकी) मे उपस्थित थे। चरित्र, पात्र, अभिनय प्रणाली, रस, कथानक, वृत्त, सन्धि, नृत्य के आधार पर इनकी पृथक-पृथक टेकनीक तथा मर्यादायें निर्धारित हो चुकी थीं।

संस्कृत एकाकी प्रकार भेद के रूप में प्रयुक्त हुआ। प्रयोगों की दृष्टि से नाना प्रकार के एकांकी विनिर्मित हुए, किंतु अनेक कारणो से एकाकी की अव रुद्ध हो गई ! कुछ आलोचकों का विचार है कि इसका कारण प्राचीन भार तियों के पास की बहुलता थी। जब उनके पास बड़े नाटक लिखने के लिये जनता के पास अनेकांकी देखने के लिये पर्याप्त अवकाश था, तो वे क्यों छोटे-छोटे एकाकी क्यों लिखते।[1] यह दृष्टिकोण सही नहीं प्रतीत होता क्योंकि हम देखते हैं कि साहित्य के बड़े माध्यमों—महाकाव्य, उपन्यास बड़े नाटक, के साथ साथ छोटे माध्यम भी निरन्तर विकसित होते चलते हैं

---

१. डा० सत्यनारायण सिंह अरुण "तपस्वी" भूमिका।

सभी कलाकार बड़े माध्यमों का उपयोग नहीं करते। सम्भवतः इसका कारण यह है कि तत्कालीन जनता एकांकियों से विशेष प्रभावित न हो सकी। उनकी समस्याओं का निदान एकांकी में न मिला। एकांकी प्रयोगकालीन अवस्था में ही रह गया। कदाचित संस्कृत भाषा की क्लिष्टता इसके मार्ग में बाधक रही हो या एकांकी का जीवन से तनिक सम्बन्ध विच्छेद हो गया हो। वह युग एकांकियों की पृथक उपयोगिता न समझ पाया और एकांकी बड़े नाटक के अन्तर्गत अंक के आकार प्रकार और स्वभाव में तद्रूप होने के कारण भिन्न अस्तित्व स्थापित न कर सका। बड़े नाटक पनपते रहे, छोटे एकांकियों की ओर नाट्यकारों की दृष्टि कम रही। साधारण रूप में नाट्यकारों ने पुरानी पेम्टपेम्ब्रित पारपाटी पर ही बड़े नाटक लिखे। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में इने गिने एकांकियों का उल्लेख मिलता है। मध्यकाल में चन्देल राजा परमार्दिदेव के मन्त्री वत्सराज कृत छः एकांकी उपलब्ध हैं।

१—'किरातार्जुनीय : व्यायोग, २—कर्पूरचरित : भाण, ३—रुक्मणी परिणय : ईहामृग, ४—त्रिपुरदाह : डिम, ५—हास्य-चूलामणि : प्रहसन, ६—समुद्र मथन।' इनके अतिरिक्त परमार राजा पराधर्स के भाई प्रह्लादनदेव का एकांकी "पार्थ पराक्रम" व्यायोग भी प्रसिद्ध है। भास का "दूतवाक्य" प्रसिद्ध एकांकी है, जिनमें गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग है। पद्यों की प्रमुखता के कारण इसमें काव्य का आनन्द आता है। भास का "उरुभंग" नीलकण्ठ का "कल्याण सौगंधिक तथा सौगंधिका हरण" "रेवतमर्दानिका, यादवोदय, 'देवी महादेव,' 'मेनिकाहित,' 'बालिवध,' 'क्रीड़ा रसातल,' संस्कृत के प्रसिद्ध एकांकी मिलते हैं। काव्य का एक अंग माने जाने के कारण संस्कृत एकांकियों में काव्य सौन्दर्य तथा श्रवण सुखद संवादों का प्राचुर्य है। पद्य का प्रयोग अधिक किया जाता है। हिन्दी एकांकी साहित्य का इन एकांकियों पर लम्बा प्रभाव पड़ा और काव्यपूर्ण संवादों की संस्कृत परम्परा भारतेन्दु युग तक चली आई।

संस्कृत में एकांकियों का प्रचार भरत मुनि के समय से पूर्व भी था। इसका कारण समय की न्यूनता नहीं, एक नये प्रकार का प्रयोग था। नाट्य

साहित्य के अन्तर्गत नवीन भेदों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से इनका प्रचलन प्रारम्भ हुआ।

एकाकी का मूल रूप भारतीय नाट्यशास्त्र में अपने समस्त मूल तत्वों सहित मौजूद हैं। एकांकी का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना नाटक साहित्य का इतिहास है। वे वास्तविक अर्थों मे एकांकी थे किन्तु भेद यही था कि उन्हे एक प्रकार का रूपक ही समझा जाता था। स्वतन्त्र रूप से एकांकी के विकास प्रसार की कोई सुनिश्चित रूपरेखा नाट्कारों के सम्मुख न थी। इसमे सन्देह नहीं कि रूपक उपरूपक के पन्द्रह एक अंक वाले नाटकों में आधुनिक एकाकी नहीं मिलेगा, तथापि बीज रूप से उसके सविधान के सम्पूर्ण रचनात्मक आधार तत्व तथा विविध सूत्र उपलब्ध हैं। समय परिस्थिति और रगमंच के भेद के कारण ये आधुनिक एकांकी से हटे हुये जटिल सविधान से परिपूर्ण प्रतीत होते हैं, तथापि पारस्परिक विभेदों से यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि संस्कृत एकाकीकारों ने एकांकी की गति और आन्तरिक वाहन विकास पर यथेष्ट गभीरता पूर्वक विचार किया था। संस्कृत मे प्रारम्भ मे छोटे छोटे एकाकियों का प्रचार था।, पर कालान्तर में इससे बड़े और चार या पाच अंक वाले नाटकों का प्राधान्य हो गया। धीरे धीरे एकाकी नाटका का यह प्राचीन परम्परा लुप्त हो गई।"

अवनति का एक कारण धार्मिक था। ऐतिहासिक दृष्टि से अनिश्चितता होने के कारण देश आन्तरिक एवं वाक्य संघर्षों से पीड़ित था। मुसलमानों को धर्म प्रधान साहित्य माध्यम-नाटक से घृणा थी, उस पर भारतीय नाटकों को मूल प्रेरणा तथा स्पन्दन भी धर्ममय था। अत मुसलमान शासकों ने नाट्य साहित्य को कोई प्रोत्साहन न दिया। नाट्यकला का ह्रास हुआ तथा उसके साथ साथ एकाकियों की धारा, भी अवरुद्ध सी हो गई।

४—एकांकी नाटक : परिभाषा, तत्व एवं विस्तार

एकांकी नाटकों की टेकनीक नवीन होने पर भी पर्य्याप्त उन्नति कर चुकी है। अनेक तत्वों के विषय में मत स्थिर हो चुके हैं, कुछ के विषय में टेकनीक के नवीन प्रयोग निरन्तर चल रहे हैं। इन वाद-विवादों से स्पष्ट है कि विद्वानों का ध्यान एकांकी टेकनीक के परिष्कार की ओर है।

परिभाषा—नाटक मानव जीवन का एक चित्र है, जो जनता में भाव उदीप्त करता है। कुछ आलोचकों का विचार है कि एकांकी बड़े नाटक का ही छोटा स्वरूप है। यह मत मान्य नहीं है, क्योंकि एकांकी और बड़े नाटकों में केवल आकार और अंक का अन्तर बाहर से दीखने वाला अन्तर ही नहीं, कुछ मौलिक भेद भी हैं। इनकी पृथक-पृथक विशेषतायें हैं।

बड़ा नाटक सम्पूर्ण मानव जीवन का क्रमबद्ध विवेचना है। सम्पूर्ण जीवन का चित्र होने के कारण उसमें विस्तार होता है, समय अधिक लगता है, अनेक महत्त्वपूर्ण स्थल, छोटे-छोटे दृश्य, भाँति-भाँति की परिस्थितियाँ, अनेक अंक तथा पात्रों का जमघट मिलता है। लम्बे-लम्बे कथोपकथन, वर्णन बाहुल्य, कथा विस्तार, चरित्र विकास, काल्प का लम्बा प्रयोग, स्वगत मिलकर कृत्य, समय स्थल, धीमा प्रवाह बड़े नाटकों का मानव जीवन और समाज का सर्वांगीण चित्र बनाते हैं। एकांकी में हम इन तत्त्वों को पसन्द नहीं करते।

एकांकी मानव जीवन के एक पहलू या उद्दीप्त क्षण का चित्र है। प्रत्येक एकांकी एक मूल विचार (Idea) समस्या (Problem) एक सुनिश्चित सुकल्पित लक्ष्य (Aim); एक ही महत्त्वपूर्ण घटना और विशेष परिस्थिति

पर निर्मित हो सकता है। उसमें एक से अधिक घटनाओं पर पहलुओं पर प्रकाश डाला नहीं जा सकता। चूँकि उसमें समय का ध्यान रखना पड़ता है, एकाकीकार ऐसा कोई उद्दीप्त क्षण रख लेता है, जिसकी ओर जनता या दर्शकों ध्यान आकृष्ट करना चाहता है।*

इस लक्ष्य में ही एकाकी का केन्द्रीभूत आकर्षण है। विचार के विकास के लिये जो संघर्ष अनिवार्य है, उस संघर्ष के पूरे नाटक में कई पहलू दिखाये जा सकते हैं पर एकाकी में सिर्फ एक पहलू पर प्रकाश डाला जाता है। जीवन समाज या कथा के एक पहलू को ही लिया जाता है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता। ° वह एक प्रकार का प्रभाव एक उद्देश्य या एक विशेष समस्या का स्पष्टीकरण, या एक पात्र अथवा पात्र वर्ग पर ही कथावस्तु को केन्द्रित करता है।

एकाकी में दो तत्त्व सबसे महत्त्वपूर्ण हैं—प्रथम एकता (Unity अर्थात् जो पहलू अंकित किया जाये उसी की ओर सब कथोपकथन एकाग्र से चले। किसी प्रकार का वस्तु विभेद उसे सह्य नहीं। समस्त कथा सूत्र उ महत्त्वपूर्ण घटना या उद्दीप्त क्षण पर एकाग्र हो जाये। व्यर्थ के विषय आ प्रमाद और वस्तु के ऐक्य को खण्डित न कर दें। कथानक, काल तथा स

(Time, Place and Action) की एकता का पूर्ण निर्वाह- हुये बिना सफल एकांकी का निर्माण सम्भव नहीं । ❀

दूसरा तत्व संक्षिप्तता या छोटी परिधि (Economy) है । अल्प-काल में ही सब कुछ स्पष्ट कर देना एकांकी का उद्देश्य है । छोटी कहानी की तरह उसका विस्तार अधिक नहीं है । जीवन के उद्दीप्त क्षण के निदर्शन में मितव्यय तथा चातुरी होनी अनिवार्य है । यदि विस्तार हुआ, तो एकांकी आधे घण्टे में वर्षों की घनीभूत पीड़ा कैसे उभार सकेगा ? जटिल कथावस्तु के लिये बड़ी परिधि, अधिक विस्तार और समय चाहिये । यदि इनका ध्यान रखा जाय तो एकांकी नाटक के क्षेत्र में आजाता है । एकांकी के अभिनय में २५ से ३०, ४० मिनट का समय लग सकता है × किन्तु उसमें प्रभाव और वस्तु का ऐक्य तो अनिवार्य है ही । इस सम्बन्ध में परिमितियल वाइल्ड लिखते हैं, एकांकी कुछ मिनटों से लेकर पूरे एक घण्टे तक नाट्यकार की इच्छानुसार फैलाया जा सकता है ; उसमें एक या अनेक दृश्य हो सकते हैं, किन्तु उसका झुकाव ऐक्य की ओर विशेष रूप से रहता है । यह उसी समय तक चलना चाहिये, जब तक दर्शक निरन्तर बिना उकताए देखते रहें । उसमें लम्बे-लम्बे वर्णन बाहुल्य न रहे, जिनका मनोवैज्ञानिक महत्त्व बड़े नाटकों में है ।"

जीवन का जो पहलू स्वाभाविक रूप से न चित्रित किया जा सके, वह एकांकी की परिधि से बाहर है । एकांकी की गति धीमी या तीव्र हो सकती है, किंतु यह जीवन से इतना न हटा रहे, कि उसकी स्वाभाविकता को हानि

❀ एकांकी नाटक का विषय जीवन की एक घटना ही है । सहायक विषयों के लिये उसमें कोई स्थान नहीं है । —प्रो० अमरनाथ गुप्त एम. ए.

× 'One Act play is characterized by superior unity and economy. It is possible in a comparatively short space of time and it is to be assimilated as a whole"— "The crafts man ship of one Act play." ·Percivle wilde

पहुंच जाय। ❀ ज्यों-ज्यों यह चरम सीमा (climax) महत्त्वपूर्ण घटना उद्दीप्त क्षण या विशेष परिस्थिति की ओर अग्रसर हो, त्यों-त्यों एकांकी को एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता से गुम्फित होते रहना चाहिये। यह स्थल कौतूहल और जिज्ञासा को उद्दीप्त रखे। फिर उसका अन्त हो जाना चाहिये। जिसमें समस्त कथासूत्रों का संगुफन हो और विशेष समस्या या परिस्थिति स्पष्ट हो जाय। ÷

एकांकी का आविष्कार रंगमंच की आवश्यकता के कारण हुआ था। अतः अभिनय तत्व का एकांकी टेकनीक में विशेष महत्त्व है। एकांकीकार को रंगमंच का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिये। वह जनता की भावनाओं को आन्दोलन करे और उसकी अपील विशद-पूर्ण और सजीव हो। साहित्यकार एकांकी का माध्यम इसलिये चुनता है, क्योंकि वह रंगमंच की सुविधाओं और विशेषताओं का उपयोग करना चाहता है। एकांकीकार को ऐसी कथा-

---

÷ The time factor is important ; which the speed of action may be accelerated or tarded, it must not be so for from that of life that it is wholly rejected

—Percival wilde.

× The play it self must build, become more interesting as it day. elops or the audience will be bored ; and it must end, finally at a moment which is neither too early nor too late and which a state of affairs which is correct and satisfying construction of one Act play".

—"Percival wilde

Since the stage does certain things superbly well, it is the duty of the craftsman to make use of its capabilities from one end of the key-board to the other ; to appeal to the emotions, that is its natural gesture ; to be vivid powerful, and direct. He has chosen the play from because it can cope with his material it is for him to exploit it.

—Percival Wilde.

वस्तु संजोनी चाहिये जिससे रंगमंच की कठिनाइयों में कोई अड़चन न टाल सके और देश-काल के अनुसार वातावरण निर्माण हो सके।

रचनात्मक आधारभूत तत्वों में प्रथम स्थान वस्तु निरूपण का है। वस्तु निरूपण के चार भाग होते हैं—निरूपण, अवरुधन, उत्कर्ष तथा उपकर्ष, कथानक का प्राण विस्मय और भविष्य विषयक जिज्ञासा है। कुशल नाट्यकार घटनाओं को इस प्रकार सजाता है कि क्षण-क्षण संशय और विस्मय का प्रसार हो और आगे क्या होगा, यह जानने की इच्छा बनी रहे। निरूपण में विस्मय के साथ जिज्ञासा का प्रथम खिंचाव रहता है। वह एकांकी का आदि भाग है, जिसमें एकांकीकार को नाटकीय पृष्ठ-भूमि, मुख्य पात्रों का परिचय, मूल समस्या का संकेत तथा परिस्थिति का परिचय दे देना होता है, विभिन्न सूत्रों का समझने के लिये आवश्यक हैं। जहां बड़ नाटकों में यह कार्य प्रथम तीन-चार दृश्यों में होता है, एकांकी में यह प्रारम्भिक रंगसूचनाओं तथा बात-चीत में होता है।

दूसरा तत्व अवरून्धन (conflict) है। पात्रों के आन्तरिक या बाह्य द्वन्द्व स्वरूप कुल नाटकीय स्थलों का निर्माण होता है। प्राय: पात्रों के दो वर्ग हो जाते हैं, जिनमें अवरून्धन चलता है और एकांकी जिज्ञासा कौतूहल और विस्मय एकत्रित करता हुआ उत्कर्ष (climax) की ओर ऊँचा उठने लगता है। उत्कर्ष भाग में भावों या विचारों का नाटकीय स्थलों का अथवा पात्रों का द्वन्द्व एक ऊँचे स्तर पर चित्रित किया जाता है। कथानक में निरंतर गति होती है और वह धीरे-धीरे जोर पकड़ता हुआ चरम उत्कर्ष पर पहुंच जाता है। उत्कर्ष स्वाभाविक होना चाहिये तथा उसकी प्रगति निरूपण और अवरून्धन के स्थलों से होती हुई भावों की चरम सीमा की ओर अग्रसर होनी चाहिये। सबसे महत्त्वपूर्ण भाव समस्या, उद्दीप्त क्षण को आगे बढ़ाना चाहिये और गौण भावों, समस्याओं को नीचे छोड़ देना चाहिये।

अपकर्ष (Resolution) एकांकी का अन्तिम
की गांठ खुल जाती है और मुख्य भाव ; विचार या
स्वरूप प्रकट हो जाता है। विस्मय का भी अन्त हो

पहुंच जाय । ✽ ज्यों-ज्यों यह चरम सीमा (climax) महत्त्वपूर्ण घटना उद्दीप्त क्षण या विशेष परिस्थिति की ओर अग्रसर हो, त्यों-त्यों एकांकी को एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता से गुम्फित होते रहना चाहिये । यह स्थल कौतूहल और जिज्ञासा को उद्दीप्त रखे । फिर उसका अन्त हो जाना चाहिये । जिसमें समस्त कथासूत्रों का संगुफन हो और विशेष समस्या या परिस्थिति स्पष्ट हो जाय । ÷

एकाकी का आविष्कार रंगमंच की आवश्यकता के कारण हुआ था । अतः अभिनय तत्व का एकांकी टेकनीक में विशेष महत्त्व है । एकांकीकार को रंगमंच का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिये । वह जनता की भावनाओं को आन्दोलन करे और उसकी अपील विशद-पूर्ण और सजीव हो । साहित्यकार एकांकी का माध्यम इसलिये चुनता है, क्योंकि वह रंगमंच की सुविधाओं और विशेषताओं का उपयोग करना चाहता है । एकांकीकार को ऐसी कथा-

÷ The time factor is important ; which the speed of action may be accelerated or tarded, it must not be so for from that of life that it is wholly rejected

—Percival wilde.

× The play it self must build, become more interesting as it day. elops or the audience will be bored ; and it must end, finally at a moment which is neither too early nor too late and which a state of affairs which is correct and satisfying construction of one Act play".

—"Percival wilde

Since the stage does certain things superbly well, it is the duty of the craftsman to make use of its capabilities from one end of the key-board to the other ; to appeal to the emotions, that is its natural gesture ; to be vivid powerful, and direct. He has chosen the play from because it can cope with his material it is for him to exploit it.

—Percival Wilde.

वस्तु संजोनी चाहिये जिससे रंगमंच की कठिनाइयों में कोई अड़चन न डाल सकें और देश-काल के अनुसार वातावरण निर्माण हो सके।

रचनात्मक आधारभूत तत्वो में प्रथम स्थान वस्तु निरूपण का है। वस्तु निरूपण के चार भाग होते हैं—निरूपण, अवरुधन, उत्कर्ष तथा उपकर्ष, कथानक का प्राण विस्मय और भविष्य विषयक जिज्ञासा है। कुशल नाट्यकार घटनाओं को इस प्रकार सजाता है कि क्षण-क्षण संशय और विस्मय का प्रसार हो और आगे क्या होगा, यह जानने की इच्छा बनी रहे। निरूपण में विस्मय के साथ जिज्ञासा का प्रथम खिंचाव रहता है। वह एकाकी का आदि भाग है, जिसमें एकांकीकार को नाटकीय पृष्ठ-भूमि, मुख्य पात्रो का परिचय, मूल समस्या का संकेत तथा परिस्थिति का परिचय दे देना होता है, विभिन्न सूत्रों का समझने के लिये आवश्यक हैं। जहाँ बड़ नाटको में यह कार्य प्रथम तीन-चार दृश्यो में होता है, एकांकी में यह प्रारम्भिक रंगसूचनाओं तथा बात-चीत में होता है।

दूसरा तत्व **अवरुन्धन** (conflict) है। पात्रों के आन्तरिक या बाह्य द्वन्द्व स्वरूप कुल नाटकीय स्थलों का निर्माण होता है। प्राय: पात्रों के दो वर्ग हो जाते हैं, जिनमें अवरुन्धन चलता है और एकांकी जिज्ञासा कौतूहल और विस्मय एकत्रित करता हुआ उत्कर्ष (ciimax) की ओर ऊँचा उठने लगता है। उत्कर्ष भाग में भावो या **विचारों का नाटकीय स्थलों का** अथवा पात्रो का द्वन्द्व एक ऊँचे स्तर पर चित्रित किया जाता है। कथानक में निरंतर गति होती है और वह धीरे-धीरे जोर पकड़ता हुआ चरम उत्कर्ष पर पहुंच जाता है। उत्कर्ष स्वाभाविक होना चाहिये तथा उसकी प्रगति निरूपण और अवरुन्धन के स्थलों से होती हुई भावी की चरम सीमा की ओर अग्रसर होनी चाहिये। सबसे महत्त्वपूर्ण भाव समस्या, उद्दीप्त क्षण को आगे बढ़ाना चाहिये और गौण भावों, समस्याओं को नीचे छोड़ देना चाहिये।

अपकर्ष (Resolution) एकांकी का अन्तिम र
की गाँठ खुल जाती है और मुख्य भाव ; विचार या क
स्वरूप प्रकट हो जाता है। विस्मय का भी अन्त हो जात

प्रधान गुण स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिक सत्यता का है। सम्पूर्ण कथावस्तु का निर्माण इस प्रकार किया जाये कि उसमें विस्मय, जिज्ञासा, अन्तर या बाह्य संघर्ष और कौतूहल का समावेश हो।

एकांकी मे यथा संभव पात्रो की संख्या कम रहनी चाहिये। अधिक पात्र होने से उनका स्वाभाविकता से चरित्र चित्रण नहीं हो पाता, कथानक में भी जटिलता उत्पन्न होती है। गौण पात्र भी मुख्य-पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने या नाटकीय कथावस्तु को विकसित करने मे सहायक होकर ही एकांकी में स्थान पा सकते हैं। गौण पात्र उत्तेजित, माध्यम, सूचक या प्रभाव व्यंजकता के कार्य कर सकते हैं। उत्तेजक कथासूत्र को सजीव कर आगे बढ़ाता है ; माध्यम मुख्य पात्र के विचारो को स्वगत होने से रोकने के काम में आता है ; सूचक नाटकोपयोगी सूचनायें देते हैं ; प्रभाव व्यंजक कहीं-कहीं रहस्यमय इंगित, संकेत या भूमिकार की भाँति उपस्थित होते हैं। कहीं उक्त चारो कार्यों के लिये किसी पदार्थ अथवा किसी प्राकृतिक व्यापार का भी उपयोग कर लेता है। कहीं कहीं पात्रों का मनोविज्ञान एकांकी का कथावस्तु बनता है और नाटककार उनके मन के अतल गह्वरो को आलोकित कर देता है।

नाटक का प्राण कथोपकथन है। इसके द्वारा एकांकी का कथासूत्र आगे बढ़ता है, पात्रों के चरित्र सम्बन्धी तत्त्व लाल होते हैं, और कथासूत्र विकसित होकर उसमें तनाव आता है। कथोपकथन में अनावश्यक विस्तार नहीं होना चाहिये, न वे व्याख्यान, उपदेश, शुष्क वाद-विवाद या अति साहित्यिक होकर दुरूह हो जाय। उनमें पात्रो के चरित्र, या सामाजिक स्थिति और शिक्षा के अनुकूल सहज स्वाभाविकता होनी चाहिये। "यह संक्षिप्त, मर्मस्पर्शी; वाक् वैदग्ध्ययुक्त चरित्र की चारित्रिकता को प्रकट करने वाला तथा एकांकी के सूत्र को आगे बढ़ाने वाला होना चाहिये। बहुधा एकांकी कथोपकथनों में होकर समस्त गति और शक्ति सञ्चित करता हुआ चरम सीमा या क्लाइमेक्स पर पहुँचता है अथवा सम्भाषण में ही परिसमाप्त पा लेता है। +

संक्षिप्त परिधि होने के कारण एकांकीकार प्रत्येक शब्द को नाप तोल कर रखता है। §§ कम से कम शब्दो में एकांकीकार को अधिक से अधिक भाव व्यक्त करने, वातावरण के निर्माण करने और नाटकीय परिस्थिति को उद्दीप्त करना चाहिये।

स्वाभाविकता की रक्षा के लिये स्वागत कथन का प्रयोग नहीं किया जाता। पुरानी परिपाटी मे प्रायः इसका प्रयोग किया जाता रहा है। आधुनिक एकांकीकार इस अस्वाभाविकता से बचने के लिये टेलीफोन पर बातचीत या कभी-कभी जड़ पदार्थों या पशु-पक्षियों को माध्यम बनाकर निज मन्तव्य प्रकट करता है।

रंगमंच निर्देश इनकी सहायता से नाटकत्व का रूप प्रतिष्ठित प्रभाव उद्दीप्त पात्रों की रूप कल्पना स्थिर और रंगमंच की पूरी व्यवस्था पाठकों या निर्देशक को समझा दी जाती है। आधुनिक एकांकीकार रंग सूचनाओं से समस्या स्थिति, पूर्वकथा या पात्रों की मुख मुद्रायें अभिव्यक्त कर एकांकी के उद्घाटन या प्रारम्भ (Exposition) का कार्य लेता है। रंगमंच की व्यवस्था स्पष्ट करने के लिये कहीं-कहीं अत्यन्त विस्तृत योजनायें एकांकी के प्रारम्भ मे दी जाती हैं, घटना प्रारम्भ होने से पहले का आवश्यक इतिहास भी इसी मे दे दिया जाता है। पाश्चात्य एकांकीकारो ने इस दिशा में यहाँ तक उन्नति की है कि वे स्टेज के पूरे प्रबन्ध का एक मान चित्र तक देते हैं। कुछ एकांकीकार पाठकों की कल्पना उद्दीप्त करने के लिये प्रभाव व्यंजक और तीखे संकेतों का उपयोग करते हैं। इससे एकांकी सुपाठ्य बन जाता है और अभिनय में भी इनसे सहायता मिलती है। ❀

---

§§ You have a painfully small number of words with which to accomplish a large effect for events must in general be large on the stage therefore every word must count—Walter Prichard Eaton.

❀ इस सम्बन्ध मे डा० सत्येन्द्र के विचार देखिये 'इन संकेतों के द्वारा ही यह पता चलता है कि एकांकीकार अपने समस्त अभिनय के लिये रंगमंच

५—हिन्दी साहित्य में एकांकी का विकास

जीवन और समाज की पृष्ठ-भूमि:—

१६ वीं सदी का उत्तरार्द्ध भारतीय इतिहास ही में नहीं प्रत्युत समग्र विश्व के इतिहास में क्रांतिकारी परिवर्तनों और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के कारण प्रसिद्ध है। यह नवचेतना का युग है, जिसमे नवप्रेरणा देने का श्रेय यूरोप मे डार्विन, कार्लमार्क्स, टाल्सटाय तथा भारत में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि दयानन्द तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। रूढ़िवादी जीर्णशीर्ण परम्पराओं मे आबद्ध समाज के हाथो इन विचारको को संघर्ष और अवरोध सहन करना पडा था। साहित्यिक जगत मे भी नव-चेतना की रश्मि उदित हुई और भारतेन्दु इसके केन्द्र विन्दु बने।

मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त मध्यकालीन सामन्तवादिता का ह्रास होना शुरू होगया तथा पचास वर्ष तक अराजकता, अव्यवस्था तथा अस्थिरता का युग रहा। १७५७ मे प्लासी के युद्ध के फलस्वरूप बंग-प्रदेश पर अंग्रेजों का एकाधिपत्य हो गया। अंग्रेजों के ससर्ग से पाश्चात्य सभ्यता, यूरोपीय विचारधारा, और अंग्रेजी भाषा द्वारा कलकत्ते के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक जीवन में युगान्तर हुआ। भारतीय साहित्य, विचारधारा और शैलियों की अभिव्यक्ति के लिये नवीन मार्ग प्राप्त हुआ।

[illegible] कल्पना करता है और उसके द्वारा अपने भावों के स्थूल के अतिरिक्त [illegible] प्रकाश भी प्रकट करना जानता है या नहीं। कुछ सकेत [illegible] के लिये होते हैं और पात्रों के हृदय में अन्तरग को [illegible] देते हैं।'

सन् १७६४ के बक्सर के युद्ध में विजय प्राप्त कर १७६५ में अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी वसूल करने का अधिकार प्राप्त हो गया। फलतः हिन्दी भाषी पूर्वीय भाग बिहार अंग्रेजों से आक्रान्त हो गया और हिन्दी पर इस नवीन परिस्थिति का सीधा प्रभाव पड़ने लगा। सन् १७८४ में सर विलियम जोन्स ने एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की, जिससे भारतीय तथा पाश्चात्य ज्ञान के आदान प्रदान का मार्ग प्रशस्त हुआ। सन् १८०० में वेलेजली द्वारा स्थापित फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना से दो संस्कृतियों का आदान प्रदान और भी व्यापक रूप से होने लगा। सन् १८०३ में लासवाड़ी के युद्ध तथा बनारस की लड़ाई ने हिन्दी प्रदेश के मध्य भाग को भी अंग्रेजी साहित्य के लिये अनावृत कर दिया। सन् १८१८, तक राजपूताने की रियासतों और १८०२, १८०४ तथा १८०८ के मरहठा युद्धों ने मरहठों की शक्ति को भी क्षीण कर दिया। सन् १८२६ में अंग्रेजों की भरतपुर विजय ने समस्त हिन्दी भाषा भाषी प्रान्त को उनके आधिपत्य में अचल कर दिया। इन घटनाओं के प्रकाश से यह स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ही हिन्दी पर अंग्रेजी राज्य, यूरोपीय विचारधारा एवं साहित्य का सीधा प्रभाव पड़ने लगा था। गद्य की भाषा का विचार होने लगा था। जन-सामान्य भाषा का भी एक रूप निश्चित करने का प्रयत्न बढ़ने लगा।

पाश्चात्य विचारों तथा साहित्य को जनता में फैलाने में शिक्षण संस्थाओं का विशेष योग रहता है। सन् १८२३ में आगरा स्कूल बुक सोसाइटी और आगरा कालेज की, १८३३ में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी की स्थापना ने सन् १८३५ में मैकाले की मिनिटस् के अनुसार की हुई शिक्षायोजना के अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन का प्रचलन किया। अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबू लोगों को अच्छी सरकारी नौकरियाँ प्राप्त होने लगीं। फलतः पाश्चात्य साहित्य और भाषा के लिये भारतीयों के हृदय में एक नवीन आकर्षण होने लगा। इसी समय कम्पनी ने कुछ सामाजिक सुधार सम्बन्धी कानून भी निर्मित किए और सन् १८३५ में मेटकाफ के समय में प्रेस की स्वतन्त्रता प्राप्त हो-जाने से विचारों को स्वतन्त्रता पूर्वक अभिव्यक्त करने का अवसर भी प्राप्त होने लगा जिससे समाज तथा सरकारी आलोचना तथा स्वस्थ विचार करने

चिन्तन से प्रभावित विचारों ने १८५७ की क्रान्ति के निमित्त एक क्रांतिकारी मानसिक पृष्ठ-भूमि निर्मित करदी। वर्णव्यवस्था नाशक फौजी नियमों, चर्बी लगे कारतूसों वाली आस्था को चोट पहुँचाने वाली घटना तथा स्वाधीनता प्रिय वर्ग के सम्मिलित प्रभाव से एक भीषण विस्फोट उत्पन्न हुआ जिसने भारतीय इतिहास की गति ही परिवर्तित करदी। एक नवीन शासन नीति का जन्म हुआ, जिसने राजा महाराजाओं तथा जमींदारों द्वारा जनता को वश में रखने का उपाय किया। कुछ स्वार्थी व्यक्तियों के कारण कुछ ऐसे वर्ग भी बने जिनका ब्रिटिश राज्य से ही हित साधन होता था। इन नव-जात लोगों को परस्पर संघर्ष में लिप्त कर भेद-नीति के कारण अंग्रेजी शासन भित्ति दृढ़ हो गई। भारतीय साम्राज्य कम्पनी के हाथ से निकलकर ब्रिटिश मन्त्रि मण्डल के आधीन हो गया और इसके लिये जो आर्थिक समझौता कम्पनी तथा मन्त्री मण्डल में हुआ, उसका भार भारत पर डाला गया। १८५८ में विक्टोरिया के साम्राज्ञी होने से भारत को जो घोषणा-पत्र सुनाया गया, उससे आशा का संचार तो हुआ, किंतु प्रोत्साहन उससे रूढ़िवादियों को ही मिला। १८६० में इटली स्वतन्त्र हुआ। अमेरिका के संयुक्त राज्य की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। डिजरायली और ग्लैडस्टन की शांतिपूर्ण सुधारवादी नीति चल रही थी। १८६१ में इण्डियन कौंसिल एक्ट के सुधार हुए, जिनके अनुसार हाईकोर्ट स्थापित किये गये और जाबता दीवानी, जाबता फौजदारी और ताजिरात हिंद जारी किये गये थे। इससे भारतीयों में सामाजिक और राजनैतिक चेतना जगी। १८८३ में लार्ड लिटिन और रिपन के समय तक इंग्लैण्ड और भारत के मध्य तारीकों का प्रबन्ध तथा आने-जाने की सुगमता हो जाने और, स्वेज का मार्ग खुल जाने के कारण दोनों देशों का पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ होने लगा। यूरोप की बनी वस्तुओं की देश में खपत में वृद्धि हो गई। विचारधाराओं, भाषा, साहित्य की शैलियों इत्यादि का प्रभाव प्रबल वेग से भारतियों पर पड़ने लगा। अंग्रेजों के निकट संपर्क से व्यवहार, रहन-सहन, फैशन इत्यादि में भी परिवर्तन दिखाई देने लगा।

इस समय भारत की आर्थिक अवस्था बुरी रही। अंग्रेज प्रारम्भ से ही आर्थिक लाभ के कारण यहाँ आये; व्यापार में उन्हें प्रचुर लाभ हो रहा था।

वे निरन्तर आर्थिक शोषण और धन अपहरण करते रहे। उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने, उद्योग में विदेश पूंजी के लगाये जाने, कृषि की उन्नति पर ध्यान न देने, औद्योगिक शिक्षा के अभाव, बेकारी की उत्तरोत्तर वृद्धि, ब्रिटिश अफ़सरो की पेंशन और नाना प्रकार के करों तथा इंग्लैण्ड में भारतीय शासन के अनाप शनाप व्ययों के कारण भारतीय निर्धनता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी। उस पर १८५७ के कम्पनी और ब्रिटिश मत्रिमण्डल के समझौते के अनुसार विद्रोह दमन का सम्पूर्ण व्यय तथा कम्पनी के किये हुये अन्य व्यय सब का भार भारतीय कोष पर डाला गया। फिर १८६७ में अबीसीनियाँ युद्ध का व्यय भी भारत पर पड़ा तथा १८६६ व १८६९ में उत्तर भारत के दुर्भिक्षों ने निर्धनता वृद्धि की, १८७० की मेयो की विकेन्द्रीकरण योजना ने लगानों से आधे से भी अधिक लगान लेना प्रारम्भ किया। १८७४ में बंगाल का दुर्भिक्ष पड़ा तथा ; १८७७-७८ में फिर उत्तर भारत में दुर्भिक्ष पड़ा तथा १८७९ के अफ़गान-युद्ध का व्यय भी भारत पर डाला गया। इस प्रकार भारत की आर्थिक स्थिति निरन्तर क्षीण होती गई। इस दरिद्रता की प्रतिच्छाया भारतेन्दु के नाट्य-साहित्य पर है। इसके अनन्तर डफरिन, लैसडाउन, एल्गिन की सीमान्त प्रदेश सम्बन्धी नीति तथा इनके और कर्जन के द्वारा रेलों और सेना पर किये गये व्यय, तथा १८९६, १८९८, १८९९ एवं १९०० के दुर्भिक्षों ने भारत को इतना निर्धन कर दिया कि द्विवेदी-युग में वह भारतीय अर्थ सकट के कारण विपन्न रहा।

सन् १८७५ में आर्य-समाज की स्थापना हुई तथा इसी वर्ष न्यूयार्क थियोसफ़िकल सोसायटी की स्थापना हुई। इसी वर्ष इस सोसायटी की संस्थापक मैडम ब्लैवटस्की और कर्नल अल्काट भारतमें आये और सोसायटी का केन्द्र भारतमें स्थापित किया। इसके द्वारा पाश्चात्य दर्शन की महत्ता प्रकट हुई और विदेशियों को भारतीय ज्ञान और दर्शन की गरिमा प्रकट हुई। इससे दृष्टिकोण की व्यापकता में अभिवृद्धि हुई। किन्तु सन् १८८७ के दिल्ली दरबार में विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया जाने से भारतीयों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति शंका उत्पन्न हो गई। इसी क्रम में सन् १८७८ में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट द्वारा समाचार-पत्रों की स्वाधीनता छीनी जाने से

लार्ड रिपन (१८८०-८४) ने आते ही अफ़गान युद्ध बन्द किया, व्यय को रोका, भारतीय अर्थ-व्यवस्था में सुधार करने प्रारम्भ किये, प्रेस एक्ट को रद्द किया, मसूर राज्य को देशी शासकों के हाथों में समर्पित कर दिया, स्वायत्त शासन स्थापित करने का प्रबन्ध किया और उदार नीति का अवलम्बन किया। भारतीय जीवन कुछ शान्त हुआ। उन्हें अपने समाज को देखने तथा सुधारने की खांत्री हुई। अतः इस समय के प्रहसनों मे व्यग्य का शिकार सरकार न होकर सामाजिक कुप्रथाएं है।

अंग्रेजी भाषा साहित्य के माध्यम के अंग्रेजो ने भारत की राजनैतिक एकता स्थापित को तथा पाश्चात्य सम्यता नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों तथा आधुनिक विचारों ने अखण्ड भारत और उसकी स्वतन्त्रता का विचार उत्पन्न कर दिया। सन् १८८५ में इन्डियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हुआ किन्तु इस नव जात आन्दोलन को रोक देने के लिए रजवाड़ो, जमींदारों और प्रतिक्रिया-वादियों की सहायता से भेदनीति में सफलता प्राप्त की और हिन्दू मुसलिम वैमनष्य को बढ़ा दिया। "हिन्दु ला" की स्थिरता देकर सामाजिक प्रगति में प्रतिरोध लगा दिया। अग्रेजों की इस नीति की प्रतिक्रिया से राष्ट्रीय भावना जागृत हुई और ज्यो ज्यो अंग्रेजी सरकार ने भारतीय प्रगति का प्रतिरोध किया, त्यों त्यों उसका वेग प्रखर होता गया। प्रारम्भ में स्वतन्त्रता का तात्पर्य औपनिवेशिक स्वराज्य ही था, किन्तु अब पूर्ण स्वतन्त्रता की भावना बढ़ी, और लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने विदेशी शासक के प्रति उग्रता धारण कर ली। इन दिनों राष्ट्रीय भावना धार्मिक और राजनैतिक दोनों क्षेत्रो में व्यक्त हुई है।

यों तो दुर्भिक्षों से ग्रस्त सरकार की कठोर आर्थिक नीति से पिसा हुआ निम्नवर्ग घोर कष्ट पा रहा था किन्तु मध्यवर्ग सरकारी नौकरिया प्राप्त हो जाने तथा व्यापारिक लाभ से अंग्रेजी शासन को अच्छा समझ रहा था। इसी

मध्यवर्ग के हाथ में नेतृत्त्व था। अतः भारतीय जनता की दीन दशा, अंग्रेज अफसरों के दुर्व्यवहार और शासन में भाग न देने की प्रवृत्ति से व्यथित होकर भी मध्यवर्ग सरकार का घोर विरोध नहीं करता था, वरन् उसकी सरकारी नीति की आलोचना "हिज मेंजेस्टीज औपोजीशन" के रूप में थी। वह विक्टोरिया की उदारतापूर्ण नीति के प्रभाव के कारण विनम्र थी। कुछ राजनैतिक मांगों तथा शासन सुधारों तक ही उसका समस्त कार्यक्लाप सीमित था। उनका राजनैतिक संघर्ष तथा वरन् एक आग्रहपूर्ण सविनय याचना मात्र थी। कांग्रेस तथा देश के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों ने सरकारी नीति की कभी कड़ी आलोचना नहीं की, जितनी तत्कालीन साहित्यकारों ने। 'भारतमित्र' और 'सार-सुधानिधि आदि पत्रों में सरकार की उग्र आलोचना रहती थी। बड़े बड़े नेतागण राजभक्ति प्रदर्शित कर रहे थे या ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत ही स्वाधीनता चाहते थे। गांधीजी ने जुलू युद्ध में अंग्रेजों के पक्ष का समर्थन किया था।

सन् १८२० में सैयद अहमद ब्रेलवी तथा इस्माइल हाजी मौलवी के द्वारा चलाये हुए 'वासवी आन्दोलन ने मुसलमानों में कट्टरता उत्पन्न कर दी, जिसके कारण मुसलमान लोग हिन्दुओं के विरोधी होते जा रहे थे और साथ ही अंग्रेजी राज्य को भी 'दारुल हरब' घोषित कर दिया था। अतः इसका दमन अंग्रेजों की कूटनीति के द्वारा किया और मुसलमानों को सेना में निकाला जाने लगा तथा सरकारी नौकरी देना कम कर दिया। सन् १८५७ के विद्रोह में भाग लेने के कारण 'वाहवी' अन्दोलन का पूर्ण उच्छेद कर दिया गया। परन्तु इसके पश्चात् सर सैय्यद अहमदखां के प्रयत्नों के फलस्वरूप १८८५ में अँग्रेजों का मुसलमानों के प्रति यह कोप शान्त हो गया और तब नवजात राष्ट्र आन्दोलन को रोकने के लिये अंग्रेजों ने मुस्लिम पक्षपात प्रारम्भ किया, जिसके फलस्वरूप हिंदू मुस्लिम दंगों की उत्पत्ति हुई और साम्प्रदायिकता का विष फैलता गया। अंग्रेजों ने सदा इस भावना को उकसाया।

धार्मिकता के क्षेत्र में अराजकता उत्पन्न हो गई थी। अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों को उनके धर्मग्रन्थों से अपरिचित कर दिया था और उसी के साथ पाश्चात्य सभ्यता का ऊपरी चकाचौंध करने वाला रूप प्रदर्शित कर मोहित

कर लिया था। अतः इससे जो परिवर्तन हुआ, वह आकस्मिक तथा विशृंखल था। दो समस्याओं के परस्पर आदान प्रदान से क्रमशः विकसित होता हुआ नहीं, वरन् नूतन को सहसा ग्रहण कर लेने के कारण हुआ था। अतः इससे धार्मिक समाज में एक बड़ा संकट यह आया कि सामान्य जनता, जिसमें प्राचीन क्रम ही अपनाये रखा था। इन अंग्रेजी शिक्षितों को सन्देह की दृष्टि से देखने लगी। नवशिक्षित जन घोर खण्डन तो करते थे, पर नवनिर्माण का कोई पथ निर्देश न करते थे क्योंकि उन्हें अपने ही समाज शास्त्र का ज्ञान न था। फलतः वे समाज में न खप सके और अपनी सत्ता को की दूभर बना बैठे। अस्तु, पाश्चात्य विचारकों जैसे वर्क, मिल, मीलें, स्पेंसर, मिल्टन, आदि का प्रभाव पड़े बिना न रह सका। अंग्रेजी की शिक्षा के साथ-साथ इन विचारकों का प्रभाव क्रमशः व्यापक होता जारहा था। अतः नवशिक्षितों का एक दल और हुआ जिसने इन उच्च विचारों को भारतीयता के उत्कर्ष में ही उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया। समाज ने धीरे-धीरे इन लोगों को सम्मान देना प्रारम्भ कर दिया। हिंदी साहित्यकार इसी दल के थे। ये सब मध्यवर्ग के थे जिनका जन्म अंग्रेजी शासन, आर्थिक व्यवस्था और नव शिक्षा के कारण हुआ था। इसी मध्यवर्ग ने भारत में आधुनिकता का प्रवेश कराया और उसका संसार के अन्य देशों से सम्पर्क स्थापित किया। मध्यवर्ग ने राजनीति में निराशा देखी और समाज सुधार एवं धर्म सुधार की ओर अपनी शक्ति लगा दी। ये लोग हॉबसन की बौद्ध साहित्य की खोज, रॉथ की वैदिक साहित्य और इतिहास, तथा वोलिक और मक्सूलर के संस्कृत अध्ययन और सन् १८९३ में श्रीमती एनी बीसेन्ट के थियोसोफी के प्रचार से अपनी संस्कृति के गौरव का अनुभव करने लगे। आर्य-समाज का भी सामाजिक कार्यों में यथेष्ट हस्तक्षेप था। थियोसीफीकल सोसायइटी ने राष्ट्रीयता का पोषण किया और संकीर्णता दूर की। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के विचारों से भी भारतीयता एवं स्वदेश—भक्ति के भावों की प्रगति मिली। स्वामी विवेकानन्द ने सब भेदभाव विलत कर दिये। भारत की अशिक्षित जनता के सुधार के साथ ही विपथगामी शिक्षितो के सुधार का भी सुधार आन्दोलन का लक्ष्य था। हिन्दी नाट्यकारों ने भी विदेशीयता विमुग्ध शिक्षितों

पर व्यंग्य किये हैं । इन सभी धार्मिक साहित्यिक आन्दोलनों की छाप साहित्य के सभी अंग उपांगों पर है। भारतेन्दु, राधाकृष्ण दास, श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन त्रिपाठी आदि नाट्यकारों पर समाज सुधार और धर्मोपदेश का प्रभाव है। इन सबने समाज की पतितावस्था पर क्षोभ, कुरीतियों पर व्यंग्य और नवनिर्माण की ओर संकेत किया है।

सक्षेप में राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक दृष्टिकोणों से यह युग सक्रान्ति युग था। प्रत्येक प्रकार की हलचल इसमें हमें उपलब्ध है। पश्चिमी भावों, एवं विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा था। ज्यों ज्यों अंग्रेज आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते गये, त्यों त्यों भारतीय राजनीति और साहित्य पर उनका प्रभुत्व बढ़ने लगा। पूँजीवादी प्रजातन्त्र के विचारों का समावेश हुआ। ("अंग्रेजों के आगमन और उनकी व्यापारिक प्रवृत्ति के कारण भारतीय समाज में एक नये तत्व का समावेश हुआ। अभी तक भारत में सामन्तवादी विचारधारा का प्रभाव था। अंग्रेजों की व्यवसायिक वृत्तियों के कारण यहाँ भी पूंजीवादी वृत्ति का श्रीगणेश हुआ। क्रमशः ब्रिटेन की पूंजीवादी साम्राज्यशाही के द्वारा यहाँ सामन्तवादी विचारों की गति मन्दी पड़ गई और पूंजीवादी प्रजातन्त्र के विचारों का समावेश हुआ। इस परिवर्तन का प्रभाव समाज के सभी क्षेत्रों पर पड़ा—समाज पर भी"—श्री शिवनाथ एम० ए०) समाज पर दो संस्कृतियों की प्रतिक्रियाएँ निरन्तर हो रही थीं—भारतीय तथा यूरोपीय। विज्ञान और भौतिक सुख का सहारा लेकर चलनेवाली यूरोपीय संस्कृति भारतीय जनता को आकर्षित कर रही थी। साहित्य में व्यक्तिवाद की चर्चा प्रारम्भ हुई और प्रजातन्त्रवाद जड़ पकड़ता गया। यूरोप में टामसपेन ने "मानव के अधिकार" में समाज के ऊपर मनुष्य के महत्व को स्पष्ट किया और रूसो ने "शोशल-कंट्राक्ट" में समाज संचालन का विधान उपस्थित किया।

सन् १९०५ में एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटी, जिसका प्रभाव लम्बा लेकर देश की विचारधारा और समाज पर पड़ा। यह बंग भंग था। लार्ड कर्जन ने सन् १९०५ में बगाल के प्रान्तों को दो भागों में विभक्त कर दिया।

एक भाग पश्चिमी बंगाल बिहार का बना तथा दूसरा पूर्वी बंगाल और आसाम का बना। इस घटना ने राष्ट्रीय आन्दोलन को जन्म दिया। लार्ड कर्जन शिक्षित भारतवासियों के राष्ट्रीय विचारों से सहानुभूति नहीं रखते थे। उनके विचार तथा नीति डलहौजी जैसे थे। उन्होंने आते ही प्रत्येक सरकारी विभाग की जाँच पड़ताल की। अनेक भारतीय पुलिस विभाग से पृथक कर दिए गए। अपने एक भाषण में उन्होंने जब यह कहा कि शासन प्रबन्ध और आर्थिक शोषण साथ ही साथ चलते हैं' तो देश में व्यापक असंतोष फैल गया। बंगाल के भंग ने बंगाली भाषा-भाषी लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध दो प्रान्तों में विभक्त कर दिया था। जनता में राष्ट्रीयता के विचार लहरें मार रहे थे। उन्होंने सरकार की नीति के विरोध में जुलूस, सभा इत्यादि प्रदर्शन करने प्रारम्भ कर दिये। ये प्रदर्शन जितने ही उत्साह से प्रारम्भ हुये सरकार ने उतनी ही उग्रता से इनका दमन किया। सरकार की इस दमन नीति की प्रतिक्रिया स्वरूप नव-जाग्रत राष्ट्रीय चेतना क्रमशः व्यापक, विस्तृत और गहरी होती गई। सम्पूर्ण भारत ने बंग-भंग के प्रश्न को अपना सवाल बना लिया था। अन्ततः बाध्य होकर १६११ में सरकार को बंग-भंग की घोषणा उठा लेनी पड़ी।

राष्ट्रीयता का विकास तीव्र गति से चलता रहा। इसका श्रेय कांग्रेस को है। १८८५ से १६०५ तक कांग्रेस केवल एक सुधारवादी संस्था के रूप में कार्य करती रही। बंगभंग आन्दोलन के दमन के हेतु सरकार ने जो रुख ग्रहण किया। उसके प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस पूर्वतः-उदासीन रही थी। कांग्रेस सरकार से सुधार तथा अधिकारों के लिये प्रार्थना करती रही थी, किन्तु ये प्रार्थनाएँ निरन्तर ठुकराई जाती रही। कांग्रेस में भी दो दल होगए (१) उदार दल (२) उग्रदल। प्रथम वर्ग के नेता पुरानी सुधारवाद' मनोवृत्ति के व्यक्ति थे, दूसरे में तरुण और उग्रवादी। इन दोनों दलों में परस्पर विभिन्न दृष्टिकोणों से स्वराज्य प्राप्त की योजनायें चलती रहीं। स्वशासन का प्रस्ताव कलकत्ता कांग्रेस में दादाभाई नोरोजी की अध्यक्षता में पास हो गया। उक्त प्रस्ताव में कहा गया कि कांग्रेस के मतानुसार स्वराज्य प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशों में जो शासन प्रणाली प्रचलित है, वही भारत में चलाई जाय। १६०६ में

श्री विपिनचन्द्रपाल ने अंग्रेजी शिक्षा एवं विदेशी बहिष्कार आन्दोलन को और भी व्यापक रूप प्रदान किया। दमन नीति से पोषण पाकर राष्ट्रीय अभ्युत्थान क्रमशः उग्र होता गया। बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब, आन्ध्र जहां राष्ट्रीय स्कूलों का जन्म वेग से हो रहा था, वहां स्वदेशी आन्दोलन वेग से आगे बढ़ा।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रभाव प्रकट हो रहे थे। मूल रूप में तीन प्रकार के प्रभावों की छाया हमें इस काल के नाटकों पर मिलती है। ये तीन प्रभाव संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी साहित्य के थे। ज्ञान पिपासा के साथ तीन बड़े साहित्यों का सम्पर्क जनता के लिये प्रेरक बना। अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत साहित्य में एक साथ ही इतनी सुन्दर प्रभावशाली और उच्चकोटि की रचनाएँ उपलब्ध हुई कि हमारे साहित्य उ के पठ पाठन, प्रकाशन और अनुवाद में व्यस्त हो जाये। उनकी प्रौढ़ता ने हमारे साहित्यिकों के धैर्य को छीन लिया तथा उनका एक कार्य इनका अनुवाद अपनी भाषा में करना हो गया। २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंकिम, राखेल राय, घोष और गोस्वामी की रचनाओं ने हिन्दी की मौलिक रचनाओं को आवृत कर लिया था। ईसवी की १६ वीं सदी में जो भारत-व्यापी सांस्कृतिक जागृति प्रकट हुई, उसके आविर्भाव और परिवर्तन में बगला साहित्य और बाद में बंगला की पुनर्जीवित भारतीय शैली की चित्र-कला इन दोनों ने सब से बड़ा कार्य किया। १६ वीं और २० वीं शताब्दियों में बगला साहित्य का प्रभाव बंगवासियों के जीवन तक ही सीमित नहीं रहा, प्रत्युत इसका यह प्रभाव अनवादों के द्वारा समग्र भारत पर और विशेषतः हिन्दी नाटक पर पड़ा।

बंगला साहित्य पर अंग्रेजी भाषा का प्रभाव पड़ चुका था। बंगाल में अंग्रेजी राज्य की स्थापना १७६५ में हुई थी, जब दिल्ली में के मुगल सम्राट शाह आलम से अंग्रेजों को सूबे बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिली थी। अंग्रेज पूर्वी भारत के भाग्य विधाता बन बैठे थे। बंगाल के शिक्षित समाज का झुकाव अंग्रेजी भाषा, साहित्य और संस्कृत की ओर विशेष रूप से रहा है। १६ वीं सदी के प्रथमार्द्ध में बंगाल के हिन्दू उच्च वर्गों में अंग्रेजी का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था; जनता अंग्रेजी साहित्य में

भी रुचि लेने लगी थी। बंगाली साहित्यकों ने अंग्रेजी का अनुवाद किया तथा उसकी शैली का प्रयोग अपनी भाषा मे किया। यही कारण है कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हिन्दी साहित्य में बंकिम जैसे उपन्यासकार तथा द्विजेन्द्रलाल राय के अंग्रेजी से प्रभावित नाटको का प्रचलन यथेष्ट मात्रा में हुआ। उनकी सौन्दर्य तथा प्रौढ़ता ने हमें विशेष रूप से आकर्षित किया। अंग्रेजी प्रभावित बंगला नाट्य साहित्य के अनुकरण के कारण हम कोई विशेष उन्नति न कर सके। उस काल का हिन्दी-नाट्य साहित्य बंगला साहित्य की छायामात्र बनकर रह गया।

सस्कृत साहित्य हिन्दी के नाट्य-साहित्य का मूल प्रेरक रहा है। आरंभिक हिन्दी नाट्य साहित्य संस्कृत के नाट्यशास्त्र के अनुसार विरचित है। उसमें पाश्चात्य प्रणाली का तनिक भी अनुकरण नहीं है। भारतेन्दुजी के समकालीन नाट्यकारों मे सस्कृत शैली का अनुकरण मिलता है। संस्कृत मे नाटक शास्त्र और नाट्यकला का इतना विकास है कि आधुनिक एकांकी के एक अंक वाले छः भेद मिल जाते हैं—१ भाण २ व्यायोग ३ ईहामृग ४ अंक ५ वीथी तथा प्रहसन। इनके अतिरिक्त गोष्ठी, नाट्यरासक, काव्य, प्रेंडण रासक, श्रीगदित, विलासिका, हल्लीस, भाणिका, उल्लाप्य, ये उपरूपक भी एक ही अंक वाले हैं। स्पष्ट है कि रूपक-उपरूपक के २८ भेदों मे लगभग पंद्रह एक अंक वाले होते हैं। भारतेन्दुजी नें अंग्रेजी पढ़ी थी, किंतु उन्होने अपने नाटको में संस्कृत आदर्शों का ही अनुकरण किया। इस काल के अन्य एकांकीकार काशीनाथ खत्री, श्रीनिवास, पं० बद्रीनारायण चौधरी, राधाचरण गोस्वामी, पं० बालकृष्ण भट्ट, श्रीशरण, पं० प्रतापनारायण मिश्र, शालिग्राम, देवकीनन्दन त्रिपाठी, बाबू राधाकृष्णदास, अम्बिकादत्त व्यास, किशोरीलाल गोस्वामी, आदि संस्कृत नाट्यशास्त्र में दी हुई प्रणाली के अनुसार एकांकी रचना कर रहे थे।

भारत मे अंग्रेजी साहित्य का प्रचार निरन्तर पर था अंग्रेजी राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् देश में अंग्रेजी भाषा और साहित्य का प्रारम्भ हो गया था। अंग्रेज अपनी भाषा तथा साहित्य को भारत में प्रचलित कर

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत पर स्थायी विजय प्राप्त करना चाहते थे। देश स्कूल कालेजों में अंग्रेजी धीरे-धीरे अनिवार्य बनाई गई ; अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्तियों को ऊँची नौकरियाँ दी गई। अंग्रेजी भाषा-साहित्य के सम्पर्क से भारतीय विचारधारा तथा हिन्दी साहित्य में युगान्तर उपस्थित हुआ ; नव-जीवन का संचार हुआ। साहित्यिक जगत् में पाश्चात्य शैलियों एवम साहित्य प्रणालियों के अनुकरण द्वारा आत्म-प्रगटी-करण के नवीन मार्ग खोले गये। हिन्दी गद्य ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था से निकल कर प्रौढ़ता की ओर प्रगति की। पाश्चात्य शैलियों पर हिन्दी-साहित्य का पुनर्निर्माण होने लगा। इन्हीं नई प्रणालियों में एकांकी, कहानी और खण्डकाव्य भी थे। पूर्व तथा पाश्चात्य साहित्यिक प्रणालियों का संघर्ष था। साहित्यिक ऐसी दुविधा में थे जब वे अपनी सांस्कृति परम्परा को न छोड़ सकते थे, न पाश्चात्य प्रणाली ही को पूर्ण रूप से आत्मसात् कर सकते थे। इस काल के सर्वोत्कृष्ट लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वयं अंग्रेजी के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया था। उन्होंने संस्कृत तथा अंग्रेजी का अध्ययन किया था। अंग्रेजी के एक नाटक 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का अनुवाद हिन्दी में किया था। (शेक्सपीयर के नाटकों से इस युग के नाटक कई तत्वों में मिलते जुलते हैं। विशेषत: पात्रों के व्यक्तित्व का चित्रण, रोमांस, गद्य पद्यमय भाषा, शब्द, क्रीड़ा, विदूषक, गर्भ रूपक, मृतो-जीवन, हंसाने के लिये वेष का प्रयोग— ए. ए. मैकडोनल: ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृष्ठ ३५०–५१). दूसरी ओर उन्होंने बंगला के नाट्य-सरो-वर में भी अवगाहन किया था। अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित वहीं के नाटकों के आदर्शों पर विनिर्मित बंगाली नाटकों का सूत्रपात वे देख चुके थे। उन्होंने हिन्दी नाट्य-साहित्य की कमी को देखा। इसमें कोई भी विशेष उल्लेखनीय नाटक हिन्दी के पास नहीं था। निवाजकृत, शकुन्तला, हृदयराम लिखित 'हनुमान नाटक' ; व्रजवासीकृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि कुछ नाटक लिखे जा चुके थे, किन्तु इसमें नाट्यकला के सम्पूर्ण तत्वों का विकास नहीं हुआ था। नाटक की अपेक्षा इनमें काव्य का अंश अधिक था। मौलिक नाटकों में केवल रींवा के महाराज रघुराजसिंह कृत 'आनन्द रघुनन्दन' की रचना १८ वीं शताब्दी में हो चुकी थी। वास्तव में संस्कृत और पाश्चात्य प्रणालियों के

संघर्षमय वातावरण में हिन्दी के मौलिक नाटक का सच्चा विकास भारतेन्दु से होता है। भारतेन्दु ने स्वयं हिन्दी के रिक्त अंशो की पूर्ति की, नये नये आदर्श और मॉडल प्रस्तुत किये ; साथ ही निज समकालीन नाट्यकारो को उनकी रचनाये अपने-अपने पत्रो 'हरिश्चन्द्र मेगजीन' ; 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' 'कविवचनसुधा' में छाप कर साहित्य की नवीन प्रणालियो पर लिखने को प्रोत्साहित किया। इन पत्रिकाओ में जहा गद्य सम्बन्धित पत्रकारिता की अन्य सामग्री प्रकाशित हुई वहा संस्कृत शैली से प्रभावित कुछ एकाकियो की भी सृष्टि हुई। इनके भेद कई प्रकार के होते थे। प्रायः कोई समाज सुधार का विषय लेकर दो पात्रो द्वारा कथोपकथन कराया जाता था, जिसमे मूल समस्या का निर्देशन रहता था। इन कथोपकथनो मे किसी दृश्य का सकेत तो न था, संक्षिप्त रंगसूचनायें और बोलचाल की भाषा का प्रयोग होता था, आकार दो पृष्ठो के लगभग होता था। उदाहरण स्वरूप 'बसन्त पूजा' (हरिश्चन्द्र मेगजीन १५ मई १८७४ पृष्ठ २१६) ; राधाकृष्णदास कृत 'धर्मालाप' तथा किसी नाट्यकम् का "सबै जात गोपाल की" (हरिश्चन्द्र मेगजीन नवम्बर १८७३ पृष्ठ ३५) कभी कभी बड़े नाटकों के संक्षिप्त रूप प्रकाशित किये जाते थे, जिसमें कुछ दृश्यो मे सब कुछ कह दिया जाता था और वस्तु-एक्य पर अधिक ध्यान दिया जाता था, जैसे क० प० लिखित "रेल का विकट खेल" श्रीशरण कृत "बाल विवाह"। तृतीय प्रकार रूपकों का था जिनमें चार-पाच दृश्यो में साधारण-सा कथानक प्रस्तुत किया जाता था, जैसे—ग्राम पाठशाला नाटक ("हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" जनवरी १८७५) इनमें अंक तथा दृश्य के सम्बन्ध में किसी सुनिश्चित मत का पालन नहीं किया जाता था, किन्तु यह स्पष्ट है कि हिन्दी नाट्यकारों ने एकाकी दिशा में मौलिक और अनुवादित प्रयोग प्रारम्भ कर दिये थे।'

भारतेन्दुजी का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हिन्दी के रिक्त अंशो की पूर्ति करना था। हिन्दी में नाट्य साहित्य की कमी की ओर उनकी दृष्टि गई। भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी गद्य इतना प्रौढ़ एवं परिपक्व न हुआ था कि उसमे नाटकों का निर्माण हो सकता। हिन्दी मे नाट्य साहित्य के अभाव के चार कारण थे। प्रथम कारण ऐतिहासिक अनिश्चितता थी। सम्पूर्ण भारत में हिन्दी के जन्म

से ही अनेक आन्तरिक या वाह्य झगड़े चलते रहे। हिन्दू राजा परस्पर लड़ते रहे। फिर मुगल आये और हिन्दुत्व दबसा गया। आनन्द और मनोविनोद के लिये जनता में कोई विशेष चाव न रहा। मुगलों के समय तक संस्कृत की नाट्य प्रणाली का अन्त हो चुका था। हिन्दी नाटकों को कोई प्रोत्साहन नहीं मिल रहा था। मुसलमानी धर्म नाट्य साहित्य की अनुमति नहीं देता। कट्टर मुसलमान उसे कुरान के आदेशों के प्रतिकूल समझता है। बाद को कुछ मुगल बादशाहों ने संगीत आदि ललित कलाओं को आश्रय अवश्य दिया परन्तु नाटक का वे फिर भी आदर न कर सके।

दूसरी कठिनाई हिन्दी में सब प्रकार के भावों को व्यक्त करने वाले गद्य का अभाव था। नाटक के लिए दैनिक जीवन से सम्बन्धित पुष्ट और सामर्थ्यवान गद्य चाहिए। भारतेन्दुजी ने इस प्रकार के गद्य को विकसित करने का भी पूर्ण उद्योग किया। एक और कठिनाई यह थी कि हमारे सामाजिक जीवन में नटों के प्रति घृणा और साम्प्रदायिक मतों की प्रधानता थी। हमारे आध्यात्मिक जीवन में अमोद-प्रमोद को कोई विशेष स्थान नहीं प्रदान किया गया है। हिन्दी के पास कोई अपना रंगमंच न था। पारसी रंगमंच की प्रधानता के कारण हलके रंगमन्चीय नाटकों का प्रचलन तो हो गया, किन्तु उच्चकोटि के सामाजिक नाटकों के लिए प्रोत्साहन न मिल सका। हिन्दी के साहित्यिक काव्यकला के विकास में ही लगे रहे। सामन्त युग के समस्त विकार इस काल में पूर्ण परिपाक पर थे। हिन्दी का निजी रंगमंच न होने के कारण हमारे नाटक सुपाठ्य हैं, उनमें अभिनेयता उस मात्रा में नहीं है।

वास्तव में भारतेन्दु हरिश्चन्द तथा उनकी मण्डली से ही हिन्दी एकांकी का प्रारम्भ होता है। यों तो श्री राधाचरण गोस्वामी, श्री निवासदास, काशीनाथ, खत्री, पं० बद्रीनाथ चौधरी 'प्रेमघन' पं० बालकृष्ण भट्ट, श्रीशरण, प्रतापनारायण मिश्र, देवकीनन्दन त्रिपाठी, इत्यादि भी एकांकी के क्षेत्र में अपने प्रयोग कर रहे थे, किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कार्य सबसे महत्वपूर्ण था। उन्होंने प्राचीन प्रचलित संस्कृत नाट्यशास्त्र की प्रणाली के अनुसार एकांकी रचना की है। उन्होंने 'विद्यासुन्दर' का बंगला से हिन्दी में अनुवाद

किया था। यह ब्रजभाषा में था, तथापि खड़ीबोली के गद्य का विकास भारतेन्दु के एकांकियों में उपलब्ध है। इन एकांकियों में प्रयुक्त काव्य-प्रयोग स्वगत भरतवाक्य, मंगलाचरण, प्रस्तावना, संक्षिप्त रंग सूचनायें गर्भांक इत्यादि प्रचलित संस्कृत नाट्यशास्त्र की देन है। भारतेन्दु के द्वारा विचार पक्ष में राष्ट्रीय क्रान्तिवादी भावनायें प्रकाश में आई। उनकी एकांकी कला के बाह्य पक्ष में अधिक परिवर्तन नहीं मिलता, विचारधारा में आती हुई राष्ट्रीय-क्रांति स्पष्ट मुखरित हुई है। रूपकों का बाह्य रूप (तन्त्र)-किंचित् परिवर्तन के साथ संस्कृत का प्रचलित रूप ही धारण किए हुए है, पर विचार और समस्याएँ आपेक्षाकृत नवीन हैं। क्षेत्र में विभिन्न प्रकारों (जैसे प्रहसन, व्यंग, भाण, रूपक, नाट्यरासक) को प्रचलित करने में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सेवायें महत्वपूर्ण हैं।

भारतेन्दु को प्रांतीय भाषा के नाटकों का अनुवाद करने में संतोष नहीं हुआ, न प्राचीन संस्कृत शैली के पूर्ण ग्रहण से ही। वे अपनी मौलिकता का प्रयोग करना चाहते थे। अनुवादों में मौलिकता के प्रदर्शन के लिये अवसर ही न था, वहां तो प्राचीन शैली के समस्त तत्वों को ग्रहण किया गया था। अतः भारतेन्दुजी ने मौलिक प्रयोग प्रारम्भ किये उनका प्रथम मौलिक एकांकी 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' एक प्रयोगकाल न प्रहसन था। 'चन्द्रावली' नाटिका की परिधि इतनी छोटी है कि उसे एक लघु नाटक कहा जा सकता है। उनकी 'प्रेम योगिनी'; 'नीलदेवी', 'विषस्य विषमौषधम', भारतदुर्दशा, 'भारत जननी', 'सतीप्रताप', 'अंधेर नगरी', आदि एकांकी नाटक ही है। अनूदित एकांकियों में विद्यासुन्दर 'धनंजयविजय' 'कर्पूरमंजरी' और 'भारत-जननी' है प्रथम उत्थान में हम देखते हैं कि हिन्दी एकांकीकारों के सामने अनुवाद के लिये केवल दो क्षेत्र रहे। बंगला साहित्य और संस्कृत साहित्य। बंगला के अतिरिक्त भारतेन्दुजी ने संस्कृत के एकांकियों के भी अनुवाद प्रस्तुत किये, जैसे 'कर्पूरमंजरी' पाश्चात्य शैली के प्रभाव से भरतमुनि के नाट्य शास्त्र के नियम शिथिल किये जाने लगे थे और प्रस्तावना हटाई जाने लगी थी। श्री प्रतापनारायण मिश्र के 'कलिकौतुक' रूपक में केवल दो-दो पंक्तियों के नांदी से काम चलाकर तुरन्त प्रथम दृश्य प्रारम्भ हो

छूतछात, वेश्यागमन इत्यादि कुरीतियों के प्रति घृणा उत्पन्न हुई; और स्वाभिमान, पवित्रता, और अतीत गौरव के भाव उत्पन्न हुए।

पौराणिक आदर्शवादी धारा :—

तीसरी पौराणिक आदर्शवादी एकांकियों की थी। धर्म के प्रति लोगों का चाव था। जनता उन्हें बड़े उत्साह से पढ़ती तथा देखती थी। अत. धार्मिक अभ्युत्थान में नाटककारों ने पर्याप्त दिलचस्पी ली। जनता की प्रवृत्ति धार्मिक विषयों की ओर किस मात्रा में थी, इसका ज्ञान पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र द्वारा 'मयुरध्वज' की आलोचना के निम्न व्यक्तव्यों के लगता है—

'बहुत काल से लुप्त हुए नाटकों का प्रचार इस समय कुछ कुछ होने लगा। महाशयों के मन में नाटक बनाने की उमगें उठने लगी हैं, जिनसे नये ढंग नाटकों में झलकते हैं। पानी श्रेष्ठ वही है जो समुद्र में जा मिले, इसी प्रकार नाटक भी श्रेष्ठ वही है, जो ईश्वर में भक्ति उत्पन्न करे जिससे पाठकों चित्त परमेश्वर में स्नेह करने लगे। सो यह गुण इस नाटक में विद्यमान है...........।'

इस धार्मिक धारा के अन्तर्गत पौराणिक कथानकों पर छोटे छोटे एकांकियों का निर्माण हुआ इनमें भारतेन्दु का 'माधुरी' धनंजयविजय, लाला श्रीनिवास का 'प्रल्हाद चरित्र'; पं० बदरीनारायणचौधरी 'प्रेमघन' का 'प्रयाग रामगमन'; राधाचरण गोस्मी का 'श्रीदामा' 'सती चन्द्रावली'; पं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'रुक्मिणी परिणय'; शालिग्राम वैश्य का 'मयूर ध्वज बालकृष्ण भट्ट का 'दमयन्ती स्वयवर'; जैनेन्द्रकिशोर, का 'सोमावती अथवा धर्मवती (१८२०); कार्तिक' प्रसाद रचित' 'उपाहरण' (१८९२); गोस्वामी 'द्रौपदी चीरहरण'; निःसहाय हिन्दू; प्रताप नाटक; मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या कृत 'प्रल्हाद नाटक' हैं।

अनुवाद :—

इन मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त अनुवादों की धूमधाम रही। संस्कृत गला प्राकृत और कुछ अंग्रेजी से अनुवाद भी किए गये। संस्कत को

अधिक महत्त्व प्रदान किया गया, क्योंकि उसी परिपाटी में हिन्दी नाट्यकारों ने आँखें खोली थीं। उनकी रचनाएं मौलिक होते हुए भी संस्कृत के नाट्य-शास्त्र के अनुकूल थीं। राजा लक्ष्मणसिंह की 'शकुन्तला' अनुवाद होते हुए भी साहित्य के लिए नवीन थी। इसी समय पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत साहित्य का विशेष अध्ययन किया और संस्कृत के काव्य और नाटक अंगरेजी, फ्रेंच जर्मन इत्यादि भाषाओं में अनुवादित हुए। हमारे साहित्यकों की अभिरुचि संस्कृत काव्य और नाटकों के अध्ययन की ओर विशेष रूप से गई। 'शकुन्तला' के पश्चात् अन्य नाटकों के अनुवाद भी प्रकाशित हुए। स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कई नाटकों के अनुवाद किये। लाला सीताराम बी. ए. ने कालिदास-भवभूति, हर्ष के सभी नाटक और 'मृच्छकटिक' का अनुवाद किया और साथ ही शेक्सपीयर के भी कितने ही नाटको का रूपान्तर कराया। अंग्रेजी नाटको से हमारे साहित्यिकार प्रभावित हुए, कहीं कहीं कुछ दृष्टियों से वे आदर्श अपनाये भी गये, किन्तु मूल प्रेरणा उन्हें प्राचीन संस्कृत साहित्य से ही मिलती रही। द्विवेदी युग में अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्टत: प्रकट होने लगता है और अंग्रेजी नाट्यशैली के नवीन आदर्शों को हमारे साहित्यिकार अपनाते हुए मिलते है।

प्रमुख विशेषतायें

रसों का आधार :—

भारतेन्दु कालीन एकाकी संस्कृत नाट्यशास्त्र की भांति रसों पर आधारित है। किसी विशेष रस को सामने रखकर तदानुकूल वातावरण की सृष्टि इनकी एक प्रमुख विशेषता रही है। इसी रस पद्धति को इस काल के अन्य लेखक विशेषत: प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास श्रीनिवासदास, प्रेमधन आदि ने एकांकी साहित्य की रचना में कार्यान्वित किया। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' से प्रतीत होता है कि हमारे यहां वाक्यों का रसात्मक रूप ही काव्य है और 'काव्येषु नाटकं रम्यं' से प्रकट होता है कि काव्य का भी रमणीय रूप नाटक है। काव्य का अंग माने जाने के कारण प्राचीन संस्कृत परिपाटी से प्रभावित एकांकियों में लम्बे २ कवित्वपूर्ण कथोपकथनों तथा रस सृष्टि करने वाले श्रवण सुखद समास बद्ध संवादों की प्रचुरता है।

नाटकों का निर्माण हुआ था, वे उनसे प्रभावित थे। इन्होंने "नाटक" निबंध में इस बात का संकेत किया है कि बिना अंग्रेज़ी के ज्ञान के उत्तम नाटक रचना नहीं हो सकती। सिद्धान्त की दृष्टि से वे अंग्रेज़ी नाट्यरचना का अध्ययन आवश्यक समझते थे। स्वयं उन्होंने अंग्रेज़ी का अध्ययन स्कूल में आरम्भ किया था। नाटक-प्रिय अंग्रेज़ी जनता का ध्यान वे देख रहे थे। उन्होंने अपने समय के नाट्य साहित्य का अध्ययन किया था, किन्तु उसमें उन्हें किसी प्रकार का नाटक-कौशल नहीं दिखाई दिया। उन्होंने नाट्य-रचना का अभ्यास संस्कृत के अनुवादों से किया। अंग्रेज़ी नाटकों से उनका कोई विशेष परिचय नहीं था पर शेक्सपियर की प्रतिभा से वे प्रभावित अवश्य थे। "दुर्लभबन्धु" उनका प्रारम्भिक कालीन अनुवाद है। अंग्रेज़ी के इस अनुवाद के साथ उन्होंने मौलिक नाटकों का भी क्रम जारी रक्खा। यद्यपि आपने पौराणिक और ऐतिहासिक कथानक अधिक चुने, तथापि उनका नाटकीय-चमत्कार सर्वथा मौलिक है। रचना शैली में संस्कृत नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों से प्रभावित होते हुए भी भारतेन्दु ही हिन्दी के मौलिक एकांकीकार हैं। अपने इस रूप में भी हम उन्हें बहुमुखी और बहुरंगी पाते हैं।

भारतेन्दु के प्रयोगकालीन एकांकी—

भारतेन्दु ने भिन्न-भिन्न संस्कृत प्रकारों (Types) के प्रयोग हिन्दी नाट्यकारों के सम्मुख प्रस्तुत किये हैं, जैसे—"धनञ्जय विजय" (व्यायोग); "भारत दुर्दशा" (नाट्य रासक या लास्य रूपक); "नीलदेवी" (ऐतिहासिक गीतिरूपक), भारत जननी (ओपेरा); माधुरी (रूपक); "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" तथा अन्धेर नगरी "(प्रहसन); विषस्यविषमौषधम्" (भाण या मोनोड्रामा।" इन एकांकियों में नाट्यकार ने स्वयं प्रकार (Type) का उल्लेख कर दिया है, जिससे यह स्पष्ट है कि वे एकांकियों के लेखन के आदर्श उपस्थित कर रहे थे। उनके समकालीन अन्य नाट्यकारों ने इन्हीं आदर्शों का पालन अपने एकांकियों में किया है।

अनुवादित एकांकी नाटक

भारत जननी : अनुवादित एकांकियों में 'भारत जननी' (१८७७) ओपेरा

Opera एक ही दृश्य में अपना सम्पूर्ण कार्य-व्यापार समाप्त कर देता है। यह एकांकी किसी अन्य कवि के "भारत माता" नामक बंगाल नाटक में अनुवादित किया गया है। इसे भारतेन्दु ने शोधकर प्रकाशित किया था। इसमें भारत संतानों की तत्कालीन दुर्दशा और गौण रूप से अतीत गौरव का वर्णन करते हुए राष्ट्र प्रेम उत्पन्न करने की भावना को मुख्यता प्रदान की गई है। इस एकांकी में सुधारवादी तत्त्व गीतों और कविताओं में दिये गये हैं।

धनंजय विजय—संवत् १९३० में प्राचीन संस्कृत प्रणाली पर कवि काचन कृत एक संस्कृत व्यायोग के आधार पर विनिर्मित हुआ था। गद्य के स्थान पर गद्य और पद्य के स्थान पर पद्य देकर भारतेन्दु जी ने अनुवाद को प्रामाणिक बनाया है। अनुवाद होने पर भी यह स्वतन्त्र एकांकी की भाँति मौलिक और मनोहर प्रतीत होता है। इसका नायक अर्जुन गम्भीर, दृढ़व्रती धीरोदात्त नायक है; एकाँकी में पात्रों की बहुलता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें स्थान और समय की इकाइयों का सुन्दर निर्वाह हुआ है। एक ही दिन का वृतान्त प्रस्तुत किया गया है; कौशिकी वृत्ति का प्रयोग नहीं किया गया है; वीर रस की प्रधानता है; स्त्रियाँ कम पुरुष बहुत हैं; कथोप-कथन लम्बे व कम हैं। गद्य कम पद्य अधिक हैं। स्टेज और पर्दों की न्यूनता को सुन्दर सांगोपांग वर्णनों द्वारा पूर्ण किया गया है। स्टेज सूचनायें केवल हृदय की भावनाओं मात्र का संकेत करती हैं।

पाखण्ड विडम्बन:—रूपक (सन् १८७२) प्रबोधचन्द्रोदय के तृतीय अंक का अनुवाद है। पढ़ने में कथानक अपने आप में पूर्ण है और अनुवाद जैसा प्रतीत नहीं होता। गीतों की बहुलता के कारण इस पर प्राचीन परिपाटी का प्रभाव स्पष्ट है और कुछ भारतेन्दु की काव्याभिरुचि को भी प्रकट करती है। भाषा में कुछ मारवाड़ी के भी प्रयोग हुए हैं, कवित्त सवैय्यों में व्रजभाषा का बाहुल्य है। वर्णन की दृष्टि से इसका अधिक महत्व है। कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है मानों एकांकीकार गीतों के प्रवाह में बह गया है।

मौलिकी एकांकी नाटक:—

प्रेमयोगिनी :मौलिक एकांकियो में 'प्रेमयोगिनी' (१८७५), माधुरी, भारत

दुर्दशा, (१८८०) नीलदेवी (१८८१) प्रसिद्ध हैं। "प्रेम योगिनी" अपूर्ण नाटिका है, जिसे एकांकी के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इसमें चार पृथक-पृथक दृश्य हैं, कथावस्तु बिन्दु मात्र है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें "जीवन का चित्रमय प्रदर्शन" है। हिन्दी एकांकियों में यथार्थवाद का प्रचलन इसी रचना से होता है। इस यथार्थवादी एकांकी में पात्रों का चरित्र-चित्रण उन्हीं की भाषा में किया गया है।

माधुरी—में श्रीकृष्ण की प्रेमिका माधुरी का वृन्दावन में विरह का चित्र प्रदर्शित किया गया है। सखियों के कथोपकथन में कुटिल हास की झांकी है। मनोविश्लेषणात्मक आधार पर निर्मित यह एकांकी वियोग श्रृंगार का सफल उदाहरण है।

भारत दुर्दशा—(१८८०) संस्कृत परिपाटी पर लिखा हुआ नाट्य-रासक है। इसमें एक अंक के कुल छः दृश्य हैं। राजनैतिक वातावरण को नाटकीय ढंग से प्रथम बार एकांकी का विषय बनाया गया। यह उपदेश प्रधान और समस्यामूलक है।

नीलदेवी—(१८८) वियोगान्त ऐतिहासिक गीत रूपक है, जिसमें संगीतों के कथानक का सौंदर्य है। यह एकांकी चरित्र प्रधान है। नीलदेवी के शौर्य, चातुर्य, युद्धोत्साह, स्वदेशभक्ति का दिग्दर्शन कराना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इसमें आधुनिक एकांकी के प्रायः सभी अंग बीज रूप से उपलब्ध हैं। इस पर अंग्रेजी नाट्य पद्धति की छाया है।

भारतेन्दु के प्रहसन

भारतेन्दु जी जब हिन्दी में प्रहसनों पर प्रयोग कर रहे थे, तब उन्होंने संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रयोग प्रारम्भ किए उनके प्रहसनों में से कुछ एक अंक के हैं, शेष एक से अधिक अंकों के हैं। प्रहसन को यदि सम्पूर्ण रूप से एकांकी के अन्तर्गत लिया जाय, तो सभी प्रकार के प्रहसन इसी श्रेणी में आ जाते हैं। कहीं-कहीं उन्होंने दृश्य के स्थान पर "अंक" और "गर्भांक" का प्रयोग किया है। हास्य की ओर भारतेन्दु की रुचि के दो कारण थे। सर्व

प्रथम तो वे स्वयं ही विनोद प्रिय थे तथा समाज सुधार के लिए उन्होंने हास्य और व्यंग्य को ही चुना। द्वितीय यह कुछ पारसी कम्पनियों की मनोरंजन प्रियता का प्रभाव था। उनके आदर्शों के अनुसार कलात्मक मनोरंजन ही प्रहसन का प्राण था।

भारतेन्दु के प्रहसन सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। मनोरंजन के साथ-साथ समाज की रूढ़िय, जीर्णशीर्ण मान्यताओं तथा समाज की निर्बलताओं पर उन्होंने उँगली रख दी है। इनमें बौद्धिक अपील है, तथा परोक्ष रूप से ये किन्हीं विशेष परिणामों पर पहुंचने के लिए निर्मित हुए हैं। हास्यपूर्ण प्रसंगों, कविताओं और स्थितियों का इनमें बाहुल्य है। कहीं-कहीं संस्कृत के उद्धरण भी आ गये है किन्तु उनमें "पूर्ण रूप से संस्कृत शैली का अनुकरण नहीं मिलता।"

अन्धेरनगरी: प्रथम प्रहसन "अन्धेर नगरी" (संवत् १९३८) छः दृश्यों का प्रहसन है। बनारस में बंगालियों और हिन्दुस्तानियोंने मिलकर एक छोटा-सा नाटक "समाज" दशाश्वमेघ घाट पर किया है। उसी में "अन्धेर नगरी" का प्रहसन जोड़ा गया। इसे भारतेन्दुजी ने नाटकों के पात्रों के अनुसार एक ही दिन में लिख दिया था। इसकी मूल समस्या यह है:—

"महन्त—बच्चा बहुत लोभ मत करना। देखना, हां—

"लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी ना कीजिये, या में नरक निदान॥

विषस्यविषमौषधम्: (संवत् १९३३) संस्कृत परिपाटी के भाग या नोनोड्रामा का एक उदाहरण है। इसमें मल्हराव के सिंहासन-च्युत होने का इतिहास हास्यमय वर्णन में चित्रित किया गया है और परस्त्रीगमन की निन्दा की गई है:—

"पर तिय-रत रावन वध्यो, पर धन रत तिमि कंस।
रामकृष्ण जय सूर ससि, करन मोह अध धंस॥

इसमें पात्र केवल एक भण्डाचार्य है, वही आकाश भाषित-अभिनय

प्रणाली से सम्पूर्ण कथानक खोलना है। कथानक का आधार ऐतिहासिक है किन्तु अनुचित रीति से अंग्रेजी राज्य की प्रशसा की गई है।

वैदिकी हिंसाहिंसा न भवति : (सवत् १६३०) प्रहसन में हिंसा-अहिंसा की व्याख्या की गई है। नान्दी के प्रथम दोहे में ही प्रहसन का विषय स्पष्ट कर दिया गया है।

नान्दी—बहु बकरा बलिहित् करैं,
जाके बिना प्रमान।
सो हरि की माया करै,
सब जग को कल्यान!

इस प्रहसन् का कथानक बहुत सीधा सादा है। एक नैतिक उद्देश्य—(माम भक्षण व्यभिचार तथा मद्यपान से हानियां) लेकर एक साधारण-सा कथानक निर्मित कर लिया गया है।

इन प्रहसनों का मूल विषय अतीत भारत के गौरव का चित्रण, वर्तमान पतितावस्था पर विक्षोभ तथा भविष्य के कल्याण की आशा है।" अपने नाट्य विधान में भारतेन्दुजीने संस्कृत के अनेक उदाहरण हिन्दी नाटय साहित्य में प्रस्तुत किए। यहां संस्कृत के अध्ययन के साथ निजी मौलिकता भी है।" उनकी एकाकीकला में संस्कृत की उप-रूपक की शैली और आदर्शों का अनुकरण है। हिन्दी में एकांकी के ढंग के लघु नाटक न होने के कारण उन्होंने संस्कृत के छोटे नाटक पढ़े। प्राचीन संस्कृत नाट्यशास्त्र में साहित्य की सभी शैलियां मिल जाती हैं। महाकवि भास, कांचन, राजशेखर के कुछ एकांकी बड़े सफल हैं। इन्हीं के आदर्शों पर उन्होने अनुवादित और मौलिक दोनों प्रकार के एकांकियों के प्रयोग किये। सस्कृत नाटकों की भांति आपके एकांकियों में गद्य और पद्य दोनों रहते हैं; उनमें काव्य माधुरी का अधिक आनंद आता है। आपके एकांकियों में श्रवण सुखद संवादों की प्रचुरता है। कविता-मय होने के कारण अभिनेयता की न्यूनता है। सस्कृत नाटकों के नान्दीपाठ, सूत्रधार वठी, स्वगत, भरतवाक्य, गायन, दोहों आदि की भी योजना यत्र तत्र उपलब्ध है। किन्तु जिस बात से हम विशेष प्रभावित होते हैं वह उनकी

प्रतिभा है। उन पर नये ढंग के बंगला नाटकों तथा पारसी रंगमंच का भी प्रभाव था। पारसी रंगमंच की दोहा शेर वाली पद्धति की छाप उनके एकांकियों पर है। अंग्रेजी का प्रभाव बंग-साहित्य के माध्यम से उनकी एकांकी कला पर पड़ा है। यह प्रभाव प्रथम एकांकियों के बाह्य ढाँचे में हुआ तथा अनन्तर क्रमशः आदर्शों में। प्रस्तावना का लोप, अंग्रेजी नाटकों के ढंग पर अंक विभाजन और दृश्य विधान, भरत वाक्य का अपेक्षाकृत कम प्रयोग आख्य वस्तु का लोप आदि कुछ ऐसे लक्षण हैं, जो भारतेन्दु धीरे-धीरे अपना रहे थे। भारतेन्दु की कला में ये तत्त्व धीरे-धीरे हिन्दी में आते हुए प्रतीत हुए।' वे नवीन विचार धारा से प्रभावित अवश्य हुए थे, किन्तु प्राचीनता से हटे नहीं थे।''

७—द्विवेदी युग में एकांकी का विकास

इस युग में सम्पूर्ण हिन्दी नाटक की धारा मंद सी रही। एकांकी भी क्षीण ही रहा। इसके तीन प्रधान कारण थे। (१) हम लोग नाटक को पढ़ कर ही उसके आनन्द को लेने के आदी हो गए। अभिनय कला का प्रचार कम हो गया। (२) हिन्दी में रंगमंच का अभाव था। मराठी और बंगाली रंगमंचों पर नवीन प्रयोग अवश्य चलते रहे। आधुनिक ढंग के कुछ एकांकी इन भाषाओं में लिखे गए हैं। दक्षिण भारत में भारतीय कला की परम्परा बनी रही। कथाकली नृत्यों में अभिनय कला सुरक्षित रही। तीसरा कारण शिक्षित और सुसंस्कृत समाज में अभिनय के प्रति अरुचि थी। समाज की उपेक्षा के कारण नाट्यकला का ह्रास होता गया।

इस काल के प्रमुख नाट्यकारों में पं० राधेश्याम कथावाचक, पं० -

दत्त शैदा नाट्याचार्य, श्री मंगलप्रसाद विश्वकर्मा, जयदेव शर्मा, श्री सिया-रामशरण गुप्त, ब्रजलाल शास्त्री एम० ए०, रामसिंह वर्मा, पं० सरयुप्रसाद विन्दु, शिवरामदास गुप्त, बद्रीनाथ भट्ट, पं० हरिशंकर शर्मा, श्री जी० पी० श्रीवास्तव, पं० रूपनारायण पाण्डेय, श्री प्रेमचन्द पाण्डेय, बेचन शर्मा 'उग्र' "श्री सुदर्शन"; पं० रामनरेश त्रिपाठी; श्री जयशंकर प्रसाद इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्री सुदर्शन के "राजपूत की हार" प्रताप प्रतिज्ञा; आनरेरी मजिस्ट्रेट; श्री रामनरेश त्रिपाठी के "स्वप्नों के चित्र"; दिमागी ऐयाशी, श्री बद्रीनाथ भट्ट का "लबड़धौंधौं"; तथा श्री जयशंकर प्रसाद के "सज्जन" "करुणालय" प्रायश्चित, और "एक घूँट" आदि चार एकांकी प्रसिद्ध हैं। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने "दुमदार आदमी" गड़बड़झाला; कुर्सीमैन; पत्रपत्रिका सम्मेलन, न घर का न घाट का; "मौछनी"; "अच्छा"; लफ़ड़बघ्घा; "बंटाधार"; "चोर के घर छिछोर"; "पैदाइशी मजिस्ट्रेट" करिया अच्छर भैंस बराबर" "भारत माता की जय" इत्यादि प्रहसन लिखे। श्रीवास्तव जी अब भी कुछ न कुछ लिखते रहते हैं। "उग्र" जी के "चार बेचारे" (१६२२); अफजल वध; तथा "भाईमियाँ" एकांकी प्रकाशित हुए हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी युग में भी एकांकी निर्माण का कार्य चलता रहा।

८—अर्वाचीन एकांकी नाटकों का विकास

अर्वाचीन एकांकियों का प्रारम्भः—

'हंस' मई १६३८ के एकांकी विशेषांक का हिन्दी एकांकी साहित्य के इतिहास में विशेष स्थान है। इस अंक द्वारा हिन्दी साहित्य का ध्यान एकांकियों की ओर आकृष्ट किया गया। इस विशेषांक द्वारा एकांकी पर अनेक भ्रान्तियाँ उठाई गईं और आलोचकों ने उनका समाधान किया। यद्यपि कई स्थायी कला कृतियाँ (भुवनेश्वर का 'कारवां') (१६३५); डा० रामकुमार वर्मा का 'पृथ्वीराज की आँखें' (१६३७); डा० सत्येन्द्र का 'कुणाल' (१६३७); बंगला में रवीन्द्रबाबू का 'मुक्तधारा, (एकांकी संग्रह), हिन्दी में अनुवादित होकर आ चुके थे, तथापि गम्भीरता से एकांकियों पर विचार होना १६३८ से ही प्रारम्भ हुआ।

इस काल के एकांकी लिखने में दृष्टिकोण का अन्तर हो गया था। प्रथमावस्था के एकाकीकारों में "एकांकी" लिखने का सकल्प न था। वे नाटक लिखना चाहते थे। उनकी छोटी कथा हुई तो वह एकांकी हो गया। अब तक हिन्दी में एकांकी कोई अलग स्थान नहीं बन पाया था। इस उत्पति में एकांकी सम्बन्धी एक चैतन्य जाग्रत हो उठा था। इस परिवर्तन की ओर व्यक्तियों और विद्वानों का लक्ष्य था। (डा० सत्येन्द्र "हिन्दी एकांकी" पृष्ठ ३०)।

"हंस" के एकांकी अंक में एक विवाद श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने उठाया। विवाद का प्रश्न था—एकांकी नाटक का साहित्य में क्या स्थान है? इस प्रश्न का उत्तर देने वाले आलोचकों को हम दो स्कूलों में विभक्त कर

सकते हैं। प्रथम स्कूल में वे आलोचक सम्मिलित हैं जो श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के समान एकांकी को "कहानी का एक छोटा सा संस्करण मात्र" (देखिये "हंस" एकांकी अंक पृष्ठ ८०१) कह कर उपेक्षित रखना चाहते हैं। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार के विचार इस प्रकार हैं—

"लाहौर में विज्ञापन बाजी का एक अनोखा ढंग में बहुत दिनों से देख रहा हूँ। सम्भव है कि वह ढग और भी बहुत जगह बरता जाता हो फिर भी, मैं उसे "अनोखा" इसलिये कह रहा हूँ कि दो विशेष व्यक्तियों ने यहाँ उसे बहुत आकर्षक बना रखा है।

कोई दो व्यक्ति हैं—एक बड़ी उम्र का लम्बा चौड़ा सा पुरुष और दूसरा एक बालक। सम्भव है वे परस्पर सचमुच चचा भतीजे हो, क्योंकि अपना परिचय वे इसी प्रकार देते हैं। जिस बेतकल्लुफी का व्यवहार वे एक दूसरे से करते हैं, उसे देख कर यह कहा जा सकता है कि वे पिता पुत्र नहीं हो सकते, और यह भी संभव है कि उसमे परस्पर व्यवसायिक सम्बन्ध भी हों। अनारकली बाजार में आप उन्हे प्रति दिन एक दूसरे के सामने खड़े होकर बहुत ऊँची सी आवाज में बातें करते हुये पायेंगे। उनकी बातचीत का विषय भी प्रतिदिन नया होता है। कभी वे जूतों के बारे में बाते करते हैं, कभी कपड़ों के बारे में और कभी दवाइयों के बारे में। दोनों की पौशाख भी कुछ निराली सी होती है। अपने चचा से ५-६ कदम की दूरी पर खड़ा होकर बालक सवाल करता जाता है और चचा साहब आवश्यक भावभंगी के साथ जवाब देते हैं। उस बातचीत में विज्ञापनीय वस्तु की खूबियाँ, प्रयोग, कीमत और मिलने का पता आदि सभी कुछ श्रोताओं के कर्णगोचर कर दिया जाता है। मेरी राय है कि एकाकी नाटक भी लगभग इसी प्रकार की चीज है।" ('हंस' का एकांकी नाटक चन्द्रगुप्त विद्यालकार का "एकांकी का साहित्य में कोई स्थान भी है।") (एक पत्र से)

इसी आलोचना में आगे चलकर चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने और आपत्तियाँ उपस्थित की हैं—"मेरी स्थापना यह है कि एकांकी नाटक की कोई निश्चित और निजी टेकनीक (Technique) न तो अ[illegible] बन पाई है न बन

प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, और उनमें (Climex) नही है सिर्फ विचारपूर्ण वार्तालाप मात्र है।

इस श्रेणी के आलोचकों का मन्तव्य है कि एकांकी की प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता का कारण उसकी स्वतन्त्र कलात्मकता या अनुभूति—व्यजना नहीं प्रत्युत रेडियो है। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार ने इस सम्बन्ध में लिखा है--

"भारतवर्ष मे, एकांकी की लोकप्रियता, कुछ अंश तक, एक और कारण से भी बढ़ रही है। यह कारण रेडियो हैं। साहित्य के नाम पर हमारे यहाँ के ब्राडकास्टिंग स्टेशन जो प्रोग्राम देते हैं, उनमें एकांकी नाटकों को विशेष महत्ता दी जारही है। इन नाटकों को बहुत आसानी से ध्वनित किया जा सकता है, और २०-२५ मिनट में विविध ध्वनियों के आधार पर ही एकांकी नाटक खेला जाता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ग्रामोफोन के सी.रयल रिकार्डों में बाजारू एकांकी नाटक खेला जाता है और यहीं आकर मुझे अपनी उपर्युक्त तुलना (अनारकली के चना भतीजा वाली) के लिये पूर्ण आधार मिल जाता है।"

प्रथम स्कूल की भ्रान्तियों का निवारण—संक्षेप में, प्रथम आलोचकों के समूह की भ्रान्तियाँ इस प्रकार है—(१) एकांकी नाटक विज्ञापन वाजी जैसा प्रोपेगेण्डा का एक ढंग है। इसके द्वारा विज्ञापित वस्तु की खूबियाँ, प्रयोग. कीमत और मिलने का पता सभी कुछ श्रोताओं के कर्ण-गोचर कर दिया जाता है।

(२) एकांकी नाटकों पर कोई-निजी और सुनिश्चित टेकनीक नहीं है। सीमायें या परिभाषायें नहीं हैं। अतएव साहित्य में उनका कोई स्थान नहीं है।

(३) एकांकी नाटक कहानी (Short story) का रंगमंच पर खेला जा सकने वाला संस्करण मात्र है।

(४) एकाकी में किसी नई दुनियाँ के निर्माण का तो ख्याल भी नहीं किया जा सकता। पात्रों के व्यक्तित्व का चित्रण अथवा विकास भी यहाँ नहीं किया जा सकता।

(५) एकांकी का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन और अर्थपूर्ण वार्तालाप मात्र है। बस, इतना ही। इससे अधिक कुछ नहीं।

(६) एकांकी की आधारभूत श्रेष्ठता उनकी कहानी है।

(७) एकाकी लिखना बहुत सरल है।

(८) इसकी लोकप्रियता रेडियो के कारण हुई है।

(९) एकांकी में क्लाइमेक्स का होना आवश्यक नहीं है।

उपर्युक्त भ्रान्तियों के एकांकियों के शुभचिन्तकों का ध्यान आकृष्ट किया तथा अनेक आलोचकों ने अपने अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किये। इन आलोचनाओं में सर्व प्रथम उन आलोचकों का स्थान है, जो स्वयं आलोचक एवं एकाकीकार है। उनकी आलोचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने एकाकी साहित्य को सोच समझ कर किसी मूल समस्या से प्रेरित होकर सृजन प्रारम्भ किया था। जैनेन्द्रकुमारजी ने प्रत्यालोचना लिखते हुए एक पत्र में लिखा—

(१) एकांकी नाटक की व्याख्याओं और परिभाषाओं से पूरा काम नहीं होता। उससे हिन्दी में लिखे जाने वाले एकांकी नाटक का परिष्कार नहीं होगा, वरन् लेखक कुछ विकल्प में पड़ जायगा। इसलिये एकांकी नाटक की सत्समालोचना अनुचित है। (२) एकांकी नाटक में व्यवहृत ब्रेकिट्स या कोष्टक फैशन के हैं, ईमानदारी के नहीं है। (३) एकांकी नाटक आज के लिये कृत्रिम चीज है। उसके अपनाये जाने का कारण फैशन है, न कि आवश्यकता। (४) जब हिंदी में अपना रंगमंच ही नहीं तो निर्देश की क्या आवश्यकता ? (५) एकांकी नाटक यदि छपता है, तो वह सुपाठ्य होना चाहिये।

उपर्युक्त विचारधाराओं के अतिरिक्त एक ऐसे समालोचकों का भी स्कूल है जो भ्रान्तियों को एकांकी के विकास, परिपक्वता एवं भावी उन्नति में बाधा स्वरूप समझता है। उसे परिपक्वता की ओर ले जाना, उत्तरोत्तर विकास, परिपुष्टि ही उनका लक्ष्य है। श्री उपेन्द्रनाथ अश्क, श्रीपतराय इत्यादि इसके अंग हैं।

श्रीपतराय के विचार इस प्रकार हैं—

आज की दुनिया में हमारे पास इतना समय नहीं कि हम लम्बे लम्बे किस्से पढ़ सकें और इसीलिए कहानी और एकांकी नाटक का आविर्भाव हुआ है। इसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता हमारे पक्ष का समर्थन करती है। यही हमने इन पृष्ठों में ('हंस' सम्पादकीय अंक अप्रैल १९३८) पिछले महीने में कहा था। उसकी पुनरावृत्ति हमारे तर्क साधन में इस समय आवश्यक हो गई है। यदि आज कहानी को हम साहित्य में एक प्रतिष्ठित पद देने को तैयार हैं, तो एकांकी को भी वही गौरव-पद देना होगा। यह कहना उचित नहीं कि एकांकी का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। है और अवश्य है।

श्रीपतरायजी को चन्द्रगुप्तजी की (Climax) वाली बात भी नहीं जंचती क्योंकि आपके विचार से "आजकल बहुत-सी ऐसी कहानियाँ भी लिखी जाती हैं, जिनमें Climax नहीं होता। और वह बिल्कुल ही जरूरी है' यह भी कौन कह सकेगा? स्वाभाविकता का तकाज़ा है कि दो व्यक्तियों के बीच हो रहे वार्त्तालाप को ज्यों का त्यों दिया जाए, न कि उसको कहानी के वर्णनात्मक ढंग पर दिया जाय।"

विज्ञापन बाजीवाले आरोप को श्रीपतरायजी निराधार और अनावश्यक मानते हैं। आजकल साहित्य का उपयोग प्रोपेगेण्डा के लिये हो रहा है। रेडियो पर निबन्ध और कहानी का भी उपयोग विज्ञापन के लिये किया जाता है फिर "एकाकी नाटकों के साथ ही विज्ञापनबाजी और रेडियो का अवगुण क्यों सम्बद्ध किया जाय?"

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क भी भ्रान्तियों को एकांकी के विकास में बाधा समझते हैं। उन्होंने चन्द्रगुप्तजी की आपत्तियां एवं भ्रांतियों की कड़ी आलोचना की है। उनका विचार है कि चन्द्रगुप्तजी ने एकांकी पर गहनता से सोचा नहीं है। अतः गलतफहमी उत्पन्न हो गई है।

<u>एकांकी और कहानी</u>—एकाकी और कहानी में कथोपकथन, अभिनय टेकनीक, उद्देश्य इत्यादि का मौलिक भेद है। चन्द्रगुप्तजी के अनुसार

"एकांकी कहानी का रंगमंच पर खेला जाने वाला संस्करण-मात्र है।" इसका उत्तर देते हुए "अश्क" जी ने लिखा है—

"किसी प्रामाणिक साहित्यिक आलोचक का यद्यपि उन्होंने नाप नहीं दिया तो भी यदि निमिष मात्र के लिए ऐसा मान लिया जाय तो इससे एकांकी का महत्त्व कुछ कम नहीं होता।,,

जैसे एक सुन्दर उपन्यास का एक सुन्दर नाटक बन सकता है, इसी प्रकार एक सुन्दर कहानी का एक सुन्दर एकांकी बन सकता। W. W, जेकब्स की The Monkey's Paw के खेले जाने वाले संस्करण की लोकप्रियता इस बात का उदारण है।

वास्तव में दोनों में उद्देश्य का अन्तर है। कहानी का उद्देश्य होता है कि उसे पढ़ा जाय, या सुनां जाय: पर एकांकी का यदि वह रगमंच के लिए लिखा गया है, सबसे बड़ा उद्देश्य यह है कि वह खेला जाय और इस उद्देश्य के लिए कहानी को परिवर्तित करना आसान काम नहीं। नाटक में जो कुछ हमें कहलवाना है और जो परिस्थिति अथवा घटना (Situation) पेश करनी है, वह रंगमंच के परिमित दायरे में ही पेश करनी है।

जहा कहानी लेखक अपने आपको बीच में ले आता है, कलम के चार झटकों मे (Situation Create) वातावरण और स्थिति का सृजन कर सकता है, या चरित्र का चित्रण कर सकता है, वहां नाटककार को तटस्थ होकर, पात्रों की बोलचाल और उनके अभिनय द्वारा ही अपने उद्देश्य में सफल होना होता है।"

कहानिया एकांकी के रूप में परिवर्तित होकर प्राय: उतनी सुन्दर और प्रभावोत्पादक नहीं रह जाती। उपन्यास और कहानी, एकांकी और कहानी; महाकाव्य और खण्ड काव्य में कुछ तत्त्वों में साम्य हो सकता है किन्तु इनमें से कोई भी एक दूसरे का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता।

चन्द्रगुप्तजी का यह विचार अंशत: सही है कि कहानी को एकांकी के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है, ऐसा हुआ भी है। जान गाल्सवर्दी ने अपने First and the last नामक एकांकी को कहानी के रूप में और

फिर उपन्यास के रूप में परिवर्तित किया है। W. W. Jacobs की monkey,s paw नामक कहानी बड़ा सुन्दर एकांकी बन पाई है। श्री चन्द्रगुप्तजी की कहानी तांगावाला 'काफीर' एकांकी के रूप आई, पर वह न तो इतनी दिलचस्प रही, न प्रभावोत्पादक ही। कोई भी कहानी स्टेज पर आ कर कितना प्रभाव उत्पन्न कर सकेगी, यह बात अभिनय करने पर ही देखी जा सकती है। चन्द्रगुप्तजी का 'अशोक' नाटक पढ़ने में बेहद दिलचस्प है। अनेक आलोचकों ने पढ़कर इसे पसन्द किया है (उपेन्द्रनाथ अश्क) पर वह रंगमंच की चीज नहीं है, यह चन्द्रगुप्तजी ने स्वयं भी पाया है।

एकांकी और कहानी सम्बन्धी बहस का निष्कर्ष "अश्क" जी ने इस प्रकार किया है—

"बहरहाल इस विषय पर मैं कुछ अधिक न कह कर विनय पूर्वक निवेदन करूंगा कि एक उपन्यास या कहानी का एक बड़े नाटक या एकांकी में परिणत करना उतना आसान नहीं, जितना चन्द्रगुप्त जी समझते हैं, और इसी तरह एक एकांकी का (जो खेले जाने के लिये लिखा गया है) उससे अच्छी कहानी में परिवर्तित करना सुगम नहीं। ऐसा करने वालों के लिए स्टेज और कहानी का पूरा-पूरा ज्ञान होना आवश्यक है।

लन्दन युनिवर्सिटी के हिन्दुस्तानी के अध्यापक T. Graham ने कहानी और उपन्यास के उद्देश्य में भिन्नता स्वीकार की है। इसी प्रकार की भिन्नता कहानी और एकांकी में भी है। दोनों साहित्य के दो पृथक स्वतन्त्र और अशक्त अंग हैं। दोनों के उद्देश्य टेकनीक वातावरण, हीनतायें तथा विशेषतायें पृथक-पृथक हैं।

यदि आलोचक एकांकी को नाटक का संक्षिप्त संस्करण कहकर संतोष कर लेते तो बात और थी। यद्यपि वह भी न्याय सगत नहीं होता, परन्तु एकांकी को रंगमंच पर खेली जाने वाली कहानी कहने को हम सर्वदा तैयार नहीं। कदाचित एकांकी के शैशव काल में उसकी टेकनीक से अनभिज्ञ होने के कारण हम उसे किसी नाम से पुकारें। पर क्या हमारे सामने पश्चिम का दृष्टान्त नहीं है जहां एकांकी का स्वतन्त्र स्थान है, उसकी अपनी टेकनीक है,

अपना रंगमंच है। जब कहानी, नाटक और एकांकी भिन्न हैं, एक दूसरे का स्थान नहीं ले सकते; तब एकांकी कहानी का स्वरूप कैसे हो सकता है। (प्रो० अमरनाथ गुप्त)

कहानी और एकांकी में एक विशेष अन्तर है। कहानीकार के पास अपना व्यक्तित्व एवं व्यक्तिगत धारणाएं प्रकाशित करने के लिए यथेष्ट स्थान होता है। वह वस्तुओं और चरित्रों को, जैसा वह चाहता है, वर्णन कर सकता है किन्तु एकांकीकार को चुप रहना पड़ता है। वह स्टेज सूचनाओं द्वारा या पात्रों के कथोपकथन द्वारा ही एकांकी के वातावरण तथा चरित्रों का चित्रण कर सकता है। कभी-कभी उसे बड़े कौशल (Subtly) से कुछ विशेष पात्रों के द्वारा अपने व्यक्तिगत मन्तव्य प्रकट करने होते हैं। (प्रो० ए० सी० दासगुप्त)।

कहानी और एकांकी में निम्न भेद हैं—(१) दोनों का ध्येय भिन्न है। कहानी केवल पढ़ने के लिये लिखी जाती है, एकांकी का निर्माण रंगमंच के लिये होता है (२) कहानी में वातावरण की सृष्टि स्वयं कहानीकार वर्णन द्वारा करता है, एकांकी में यह पर्दों और अभिनय द्वारा की जाती है। (३) कहानी में पग-पग पर एकांकीकार का व्यक्तित्व झलकता है। एकांकीकार यदि व्यक्तित्व प्रकाशित करना चाहे तो कठिनता से कर सकता है।" एकांकी में कभी नाट्यकार का व्यक्तित्व न्यून होता है, कभी बिलकुल ही नहीं।" (४) एकांकी में नाटयकार का ध्यान केवल घटनाओं तक सीमित न रहकर पात्रों के चरित्र-चित्रण और विशेषतः कथोपकथन की ओर रहा है। एकांकीकार को अभिनय और स्टेज का पूरा ज्ञान जरूरी है।

एकांकी और सम्भाषण—चन्द्रगुप्त ने चचा-भतीजे वाला उदाहरण प्रस्तुत कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि एकांकी नाटक केवल सम्भाषण तक ही परिमित है। वह सम्भाषण ही है, और कुछ नहीं। उनका कथन इस प्रकार है—

"अपने चचा से भतीजा ५-६ कदम की दूरी पर खड़ा होकर सवाल आरम्भ करता है और चचा साहब आवश्यक भाव भंगी से उत्तर देते जाते

है। मेरी राय यह है कि एकांकी नाटक भी लगभग इसी प्रकार की चीज है। आप पूछेंगे कि एकांकी नाटक के लिये आवश्यक चीज क्या है? मेरा उत्तर है कि सिर्फ मनोरंजक अथवा अर्थपूर्ण वार्तालाप। बस, इतना ही इससे अधिक कुछ नहीं।"

अंग्रेजी साहित्य में एकांकी जब अपने शैशव में था तब भी कुछ आलोचकों ने, जिसमें William Aicher प्रमुख हैं, एकांकी को केवल सम्भाषण रह कर इसकी कला से भ्रान्ति एवं अनभिज्ञता प्रदर्शित की थी। इस कथन का खण्डन भी किया गया था। हिन्दी साहित्य में भी कतिपय आलोचकों ने इसका उत्तर दिया है। इनमें श्री 'अश्क' और प्रो० अमरनाथ गुप्त उल्लेखनीय हैं।

श्री "अश्क" ने Curtain Raise का निर्देश करते हुए यह स्थापित किया है कि मनोरंजन के लिये खेले जाने वाले नाटकों का स्थान आज मनोवैज्ञान की गूढ़ तम गुत्थियों को सुलझाने वाले, जीवन का यथार्थ स्वाभाविक चित्रण करने वाले एकांकियों को ले लिया है। आपका विचार है कि केवल मनोरंजन एक सफल खेले जाने वाले एकांकी के लिये काफी नहीं है। मनोरंजक आवश्यक है; पर वही सब कुछ नहीं है। दिलचस्पी और कौतूहल तत्त्वों के विकास के हेतु यह रह सकता है किन्तु मूल उद्देश्य कोई समस्या, गूढ़ तत्त्व, मनोवैज्ञानिक चित्रण, जीवन की आलोचना रह सकती है।

सम्भाषण ही एक सफल खेला जाने वाला एकांकी नहीं रह सकता। एकांकी के लिये 'अश्क' जी ने निम्नलिखित बातों की आवश्यकता बताई है—

Concetration (एकाग्रता) अर्थात एकांकी का ऐसा होना कि वह रंगमञ्च की परिमित सीमाओं में और थोड़े समय में पूरा हो सके और दर्शक उसे देखकर असन्तुष्ट न हो जाये।

(2) Unity (अर्थात ऐक्य) अथवा सफल एकांकी में यह चार प्रकार का होना चाहिये—(१) Unity of motive (उद्देश्य का साम्य) (२) Unity of prupose (प्रसंग साम्य) (३) Unity of action (अभिनय का साम्य) (४) Unity of Impression (प्रभाव

का साम्य) (3) Attainment of units अर्थात् ऊपर कहे गये साम्य का एकांकी में प्राप्त करना सबसे कठिन बात है। इसी की कसौटी पर कसने से उत्तर, मध्यम अथवा निम्न श्रेणी के एकांकी का पता च जाता है।

(4) Particular care in the details of Composition—अपनी संक्षिप्तता और उद्देश्य तथा प्रसंग के ऐक्य के कारण एकांकी में इस बात का ख्याल रखना आवश्यक है।

(5) The Germinal Idea—भूत विचार अर्थात् आधार अथवा लक्ष्य।'अश्क' जी के विचार में एकांकी नाटक कहानी से भी कुछ ज्यादा है; अर्थपूर्ण वार्त्तालाप से भी कहीं ज्यादा है और यह आवश्यक नहीं कि हर कहानी लेखक अथवा नाटककार सफल और उत्तम एकांकी और विशेष रूप से झांकियाँ लिख सके। (श्री 'अश्क' एकांकी का साहित्य में स्थान,' 'हंस' मई १६५१ पृष्ठ ८६६)

प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी एम, ए. के अनुसार एकांकी में एक सुशिक्षित, सुकल्पित एक लक्ष्य, एक ही घटना, परिस्थिति अथवा समस्या की व्यवस्था, वेग और सम्पन्न प्रवाह, इन सब के निर्देशन में मितव्यय और चातुर्य आवश्यक माने हैं।

सेठ गोविन्ददासजी ने एकांकी संविधान दृष्टि में रख कर परिभाषा की है और संकलन द्वय—एक ही समय की घटना, एक ही कृत्य—का आवश्यक माना है। सेठ जी संघर्ष के एक ही पहलू को एकांकी के लिये जरूरी मानते हैं।

डा० रामकुमार वर्मा ने एकांकी के लिये—"एक घटना विविधि गतियों से तरंगित होती हुई चरम (Clmiax) तक पहुँचती है और फिर वहीं समाप्त हो जाती है।"

प्रो० नगेन्द्र ने लिखा है:—एकांकी में हमें जीवन का एक क्रमबद्ध विवेचन न मिलकर उसके एक पहलू, एक घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा एक उद्दीप्त क्षण का चित्र मिलता है। उसके लिये एकता एवं एकाग्रता अनिवार्य है—किसी प्रकार का वस्तु भेद उसे सहय नहीं। एकाग्रता में स्वाभा-

विकता की झकोर अपने आप आ जाती है और इस झकोर से स्पन्दन पैदा हो जाता है। विदेश के सकलन-त्रय का निर्वाह भी इस एकाग्रता में काफी सहायक होता है पर वह सर्वथा आवश्यक नहीं। प्रभाव और वस्तु का ऐक्य तो अनिवार्य है ही, लेकिन स्थिर और काल की एकता का निर्वाह किये बिना भी सफल एकांकी की रचना हो सकती है।"

प्रो० नगेन्द्र के अनुसार एकांकी के तीन तत्त्वों की आवश्यकता है—एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता।

प्रो० अमरनाथ के अनुसार "एकांकी बहुत कलात्मक चीज है। उसके अपने नियम, भिन्न कला, और तत्त्व हैं। उसे सम्भाषण पात्र कहकर नहीं टाला जा सकता।" एकांकी सम्बन्ध में आपने निम्न तत्त्वों को आवश्यक माना है—

(१) एकांकी की समाप्ति एक ही बैठक में अनिवार्य है। यह एक ही बार दो और एक ही समय में समाप्त होने वाली कृत है (२) बिजली और रफ्तार उसकी गति है (३) उसका विषय एक ही होता है (४) सहायक विषयों के लिये उसमें कोई स्थान नहीं (५) एकांकी फौरन आरम्भ हो जाता है (६) शीघ्र ही बिन्दु तक उसे पहुंचना होता है (७) क्षेत्र संकुचित पर प्रभाव साम्य अनिवार्य है (८) सहायक घटनायें कभी-कभी आ सकती हैं; किन्तु यह मुख्य घटना से अलग न जान पड़े। मेजर घटना, जो चुम्बक सदृश्य उसका ध्यान आकर्षित करती है, अनिवार्य है (एकांकी का विषय जीवन की एक घटना है (१०) कथावस्तु जटिल नहीं होता (११) ऐक्य एकांकी का आवश्यक अंग है (१२) यह जरूरी नहीं कि एकांकी छोटा ही हो। अक्सर यह छोटा ही होता है क्योंकि ऐक्य उसका ध्येय होता है (१३) विषय और समय की किफायत में ही कल्याण है। संभाषण यद्यपि एकांकी के लिये आवश्यक है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु सम्भाषण ही एकांकी है यह कहना सर्वथा अनुचित है; क्योंकि सम्भाषण के अतिरिक्त भी उसकी स्थिति और बातों पर ही निर्भर है।

इन मतों से यह स्पष्ट होता है कि आज का एकांकी केवल संभाषण मात्र नहीं; इससे बहुत अधिक कला की वस्तु है।

संभापण एकांकी के लिये आवश्यक अंग है। एकांकीकार इसी Medium के द्वारा विविध पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं, घटनाओं का घात प्रतिघात, आन्तरिक संघर्ष, एवं चारित्रिक विकास प्रकट करता है। एकांकी में सम्भाषण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि कोई एकांकीकार अपने इस कार्य में कुशल न होगा, या मानव के मनोविज्ञान, नाना अनुभूतियां; परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित न होता, तो एकांकी का आधारभूत लक्ष्य एवं समस्यापूर्ण न हो सकेगी।

यद्यपि एकांकी में संभापण की महत्ता को हम स्वीकार करते हैं किन्तु कुछ आलोचकों का, जिसमें प्रो० अमरनाथ गुप्त एम० ए० प्रमुख हैं विचार है कि सम्भाषण की एकांकी है, यह कहना सर्वथा अनुचित है। सम्भाषण के अतिरिक्त एकांकी में निम्न विशेषतायें और हैं।

(१) कथावस्तु का क्रमिक विकास (२) रंगमंच निर्देश (३) घटनात्मक विस्मय (४) पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व और क्रियायें।

दूसरी विचारधारा—द्वितीय स्कूल के अनुसार हिन्दी में एकांकी अपने उच्चतम विकसित अवस्था में पहुँच चुका है और उसमें अनेक कला-कृतियां प्रकाशित हो रहीं हैं। यूरोप के साहित्यकार आज एकांकी कला एवं साहित्य की वर्तमान प्रगति का एक महत्त्वपूर्ण अंग समझते हैं। पुराने आकर्षण और पुरातन परिपाटी के ध्वंस में ही उनके वर्तमान रूप का निर्माण हुआ है। हिन्दी के अनेक गणमान्य समालोचक एकांकी को उसका महत्त्वपूर्ण स्थान देने के पक्ष में है। इस पक्ष के कुछ आलोचकों के विचार इस प्रकार हैं—

एकांकी नाटक में यदि जीवन की ऊँची गति विधि के साथ-साथ कला का पूर्ण स्वरूप और सच्चे साहित्य की सारी आकाँक्षायें वर्तमान हैं, तो कोई सहृदय समालोचक इसलिये उसका अनादर न करेगा कि वह अति अभिनेय है। एकांकी नाटकों में भी अन्य साहित्य की भाँति ऊँची चिन्तना का प्रवेश है।

(प्रो० सद्गुणशरण अवस्थी ने 'दो एकांकी नाटक' भूमिका से)

अब एकांकी की उत्तमता कथावस्तु की पेचीदगी में नहीं रही, वरन् मानवीय प्रकृति की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याओं के उदघाटन

है। हर्ष है कि हमारे नाट्यकार इस ओर ध्यान दे रहे हैं। (प्रो० गुलाबराय 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, पृष्ठ ७४)

हमें विश्वास होता है कि हिन्दी रंगमंच और एकांकी नाटक का भविष्य उज्वल है। उच्चकोटि के मौलिक नाटक और अनुवाद हमारे सामने हैं। हिंदी की सृजन शक्ति जाग्रत है। (प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त—छः एकांकी" भूमिका पृष्ठ ८)

आज का एकांकी कुशल कलाकारों के हाथ में है। अपने समस्त विरोध के बाद भी एकांकी ने अपना ऊँचा स्थान साहित्य में बना लिया है। इस विवाद के बहाने उसकी अलग टेक्नीक के अस्तित्व का ज्ञान भी हुआ और जो अस्पष्टतायें कहीं-कहीं लेखकों में एकांकी के सम्बन्ध में विद्यमान थीं, वे भी स्पष्ट हो गयी। नई गति और नई आस्था के साथ एकांकी ने साहित्य-क्षेत्र में कदम बढ़ाया और कितने ही टेकनीक कुशल व्यक्तियों ने, जिन्होंने अध्ययन और मनन किया था, एकांकी के ऊँचे धरातल पर पहुँचने की चेष्टा की। (प्रो० सत्येन्द्र "हिन्दी एकांकी" पृष्ठ ३५)

"पिछले १५-२० वर्षों में एकांकी का बहुत विकास हुआ है। डा० रामकुमार वर्मा, श्री भुवनेश्वर प्रसाद, सेठ गोविन्ददास, पं० उदयशंकर भट्ट, श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, श्री सदगुरुशरण अवस्थी, पं० चतुरसेन शास्त्री, श्री शम्भूदयाल सक्सेना, श्री हरिकृष्ण "प्रेमी", श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' श्री भगवतीचरण वर्मा, और सुदर्शन जी प्रसिद्ध एकांकीकारों में हैं।" (डा० हरदेव बाहरी पी. एच. डी., डी. लिट—'चुने हुए एकांकी" पृष्ठ ६)

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क, जैनेन्द्र और श्रीपतराय स्कूल के प्रवर्तक है। श्रीपतराय एकांकी नाटकों के विषय में श्री चन्द्रगुप्तजी की शिकायत कुछ अन्शों में सही मानते हैं। एकांकी जब अपनी उचित मर्यादाओं से च्युत हो जाता है तो विज्ञापन का रूप ले सकता है। रेडियो पर आसानी से एकांकी खेले जाने की क्षमता और तत्परता इसके लिये अहित कर हुई है—इसे वे स्वीकार करते हैं। इस प्रकार अनेक भ्रान्तियां, आलोचना प्रत्यालोचनाओं में होते हुए एकांकी ने अपना मौजूदा रूप प्राप्त किया है। अब यह परिपक्व हो रहा है।

इस काल में नये एकांकीकारों का भी उदय हुआ है। इनमें से अनेक ने काफी अध्ययन और मनन के उपरान्त इस क्षेत्र में कदम बढ़ाया है और अपने कलात्मक तथा मनोरंजक नाटकों द्वारा एकांकी साहित्य को ऊँचे धरातल पर पहुँचाया। (श्री सत्येन्द्रशरत "हिन्दी एकांकी साहित्य" सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ ३०)

९—आधुनिक हिन्दी एकांकी की विशेषताएँ

यूरोप में कृत्रिम भावुकता, कला, एवं सौन्दर्य की प्रतिष्ठा मर्यादा के पार पहुँच चुकी थी। उसके प्रतिकूल प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही थी। जनता ने कला और मनोरंजन के स्थान पर वर्तमान सामाजिक संघर्ष से उत्पन्न जटिलताओं को अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। इब्सन ने इस युग का नेतृत्व किया राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया। रंगबिरंगे कल्पना लोकमें विहार करनेवाले स्वर्ग के समक्ष वर्तमान संघर्षमय जीवन को प्रथम स्थान प्रदान किया गया। इब्सन तथा उसकी विचारधारा से प्रभावित नाट्यकारों का विश्वास था कि अतीत या भविष्य चाहे जितना आकर्षक हो, किन्तु वर्तमान विभीषिकाओं से पलायन कर उस कल्पना लोक की शरण ग्रहण करना कायरता है। इस युग के यूरोपीय तथा भारतीय एकांकीकारों का विचार है कि युग युग का सोया मनुष्य का व्यक्तित्व अब जागृत हो रहा है, पुरानी जीर्णशीर्ण परम्परायें ढीली हो कर टूट रही हैं; नए मापदण्ड प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इब्सन के नाटकों के पात्र समाज की जर्जरित रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। समाज तथा व्यक्ति दोनों के संघर्ष में इस युग के एकांकीकारों ने व्यक्ति का पक्ष लिया है। नाटकों का विषय सामाजिक होने के कारण इब्सन युग में नाटकों के पात्र अभिजात वर्ग तक ही सीमित न रहे। समाज की समस्याओं की विस्तृत व्याख्या, नवीन तत्वों की ओर संकेत, बुद्धि-

मत का प्रतिपादन और जन-साधारण की जीवन व्याख्या हुई ।

इस काल के एकांकियों का मूल स्वर यथातथ्यवाद था । समाज का स्वाभाविक यथार्थवादी स्वरूप चित्रित किया गया । समाजवादी राजनीति की विषमताओं पर झूठी कल्पना या भावुकता की लीपापोती कर उसे छिपाने के स्थान पर यथातथ्यवादियों ने प्रकृतिस्थ यथार्थवाद का वर्णन किया; समाज को जैसा देखा, वैसा चित्रित कर दिया । इन एकांकीकारों का विश्वास था कि युगों की रूढ़ियों तथा बन्धनों में बंधे रहने के कारण कृत्रिम भावुकता और काल्पनिकता में पड़कर तथा थोथे सौन्दर्य पूजा में निमग्न रहकर मानव प्रकृति, समाज तथा संस्कारों का वास्तविक रूप सभ्यता के आवरण में आवृत हो गया है । यही वास्तविक रूप अब इनके यथार्थवादी साहित्य में अनुप्राणित हो गया है । वर्तमान संघर्ष एवं उथल पुथल में कल्पना या आदर्शवाद की कोई आवश्यकता नहीं समझते । यूरोपीय यथातथ्यवाद के अनुसार एकांकी सृजन करने वाले नाट्यकारों का उद्देश्य जीवन भर की विषमताओं के मूल का अनुसंधान और उसके समाधान स्वरूप जीवन की नवीन यथार्थवादी प्रणाली का आयोजन है । इब्सन की प्रकृति की ओर लौट चलने की विचारधारा का प्रत्येक स्थान पर आदर हुआ । यूरोप की भांति भारत में जो भी अस्वाभाविक या कृत्रिम सभ्यता के प्रतीक तत्व थे, उनका इस युग ने बहिष्कार किया । बर्नार्ड शॉ और इब्सन का प्रभाव हमारे कई नाटककारों पर अच्छा खासा पड़ा । कई एकांकीकारों में तो पाश्चात्य प्रभाव की यह भावना इतनी प्रखर हो गई कि वे उसे पचा भी न सके ।

आधुनिक हिन्दी एकांकी टेकनिक की दृष्टि से परिष्कृत हुआ है । हिन्दी में पाश्चात्य एकांकीकारों की रीतियां तथा कला का अनुकरण प्रारम्भ हुआ है । अनेक एकांकियों के अनुवाद किये गये हैं । डा० रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, सेठ गोविन्ददास, "अश्क" पं० उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सत्येन्द्र शरत्, जनार्दन मुक्तिदूत आदि एकांकीकारों ने पाश्चात्य टेकनीक के प्रयोग हिन्दी में सफलता से किए हैं । इब्सन, मेटरलिंक तथा बर्नार्ड शा की स्वाभाविकता, यथातथ्यवाद, अस्वाभाविकता का बहिष्कार, अनावश्यक भावुकता के प्रति प्रतिक्रिया, वर्तमान संघर्षमय जीवन के चित्रण में आस्था आज

हमारे एकांकी साहित्य में प्रविष्ट हो चुका है।

हमारे जीवन की सर्वतोमुखी अभिव्यक्ति एकांकी में हो रही है। संस्कृति की व्याख्या इतिहास और राष्ट्रीयता के प्रति आस्था, दैनिक जीवन की समस्याओं का हल एकांकियों में हो रहा है। ऐतिहासिक और राष्ट्रीय विषयों ने हिन्दी में अधिक एकांकियों का निर्माण कराया है।

कथानक के सम्बन्ध में पुरानी मान्यतायें नष्ट हो चुकी हैं। कुछ एकांकीकार जिनमें डा० रामकुमार वर्मा प्रमुख हैं, का विचार है कि सफल एकांकी बिल्कुल पूर्ण होना चाहिए। पढ़ने या देखने के पश्चात् नाटककार के लिए कुछ कहना शेष न रह जाना चाहिये। इसके विपरीत कुछ एकांकीकारों के जिनमें श्रीयुत उपेन्द्रनाथ "अश्क" और सत्येन्द्र शरत् प्रमुख हैं,) का विचार है कि एकांकी की समाप्ति के पश्चात् पाठक या दर्शक के मन में नाटकीय पात्रों की आगामी परिस्थितियों के प्रति उत्सुकता पैदा होनी चाहिये दर्शकों के मन में यह भावना होनी चाहिए कि कितना अच्छा होता अगर नाटक और आगे चलता तथा सब चीज पूरी तरह समाप्त हो जाती; तो उस एकांकी की सफलता में संदेह नहीं किया जा सकता। "अश्क" जी के एकांकी "देवताओं की छाया में", "पापी"; "लक्ष्मी का स्वागत"; "चरवाहे"; "चुम्बक"; "भंवर"; "उड़ान" आदि एकांकी अपनी समाप्ति पर मन में एक टीस या कसक-सी छोड़ जाते हैं और ऐसा लगता है कि नाटककार यदि चाहे तो आगे भी इन पात्रों के आगामी उतार चढ़ाव की गाथा चित्रित कर सकता है। सत्येन्द्र शरत् के "तार के खम्भे" के पांचों एकांकी भी इसी प्रकार का कथानक रखते हैं। यह नाटक के विकास संघर्ष को पार कर एकांकी प्रारम्भ होते ही चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ते हैं और वहां सदैव के लिए समाप्त न होकर, रुक जाते हैं। इन्हें बाद में और भी बढ़ाया जा सकता है। कुछ तो कथानक एकदम समाप्त हो जाते हैं किन्तु कुछ समाप्त होने पर भी कुछ अधूरा-सा छोड़ जाते हैं। इन नाटकों की समाप्ति के पश्चात् उन्हीं कथानकों को आगे बढ़ाकर दूसरे एकांकी तैयार किये जा सकते हैं, या फिर इन्हें ही विकसित करके एक बड़ा नाटक बनाया जा सकता है।

एकांकियों में चित्रित मूल विचारधाराओं में यथार्थवाद प्रमुख रूप से

हमारे सामने आया है। जीवन जीने की वस्तु है। उसमें दुःख, तकलीफ, प्रतियोगिता, आर्थिक संकट, संघर्ष, छीना झपटी, आनन्द सभी कुछ हैं, उससे आंख मिलाकर संघर्ष करना पुरुषत्व है, न कि काल्पनिक सुख की खोज मे जीवन की कठिनाइयों से भागना। जो प्रत्यक्ष है वही सत्य है। अतएव भौतिक जीवन के चित्र हमारे सामने आये हैं। पुराना वासनायुक्त सौंदर्य आज बासी हो गया है। आज तो जो प्रत्यक्ष है, जीवनप्रद है, वही सुन्दर है। प्रगतिवादियों ने पुरानी सौन्दर्य कल्पनाओं को छोड़कर वस्तुजगत की सत्यता को अपनाया है।

प्राचीन संस्कृत तथा आदर्शों के पुनः निर्माण का भी प्रयत्न हमारे एकांकीकारों ने किया है। इन एकांकियों का मूल आधार व आदर्श प्राचीन भारतीय कथा की आदर्श नायकों और घटनाओं का समीचीन मूल्यांकन है। पौराणिक, ऐतिहासिक, व साहित्यिक सभी मूलों से रूप ग्रहण किया है परन्तु आधुनिक एकांकी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्हें वर्तमान में दिखाया गया है।

कुछ एकांकी नितान्त वर्तमान आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक उत्पीडन के द्योतक हैं। उनमें आज की समस्यायें मुखरित हुई हैं। शोषक वर्ग के विरुद्ध भी काफी लिखा जा चुका है। मार्क्सवाद का प्रभाव एकांकियों पर पड़ा है।

राष्ट्रीय चेतना अधिक सजग है। यद्यपि साम्यवादी की प्रमुखता है, परन्तु गांधीनीति के अनुयायियों का भी स्वर है। राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याओं ने महत्त्वपूर्ण स्थान ले लिया है। पलायनवादी विचारधारा के विपरीत, इन एकांकियों में वर्तमान संघर्षमय जीवन को अपनाने की प्रवृति है। इन एकांकीकारों का विश्वास है कि अतीत चाहे जितना आकर्षक हो, परन्तु वर्तमान समय तथा उसकी उगती हुई नई समस्याओं से भागकर कल्पना के साम्राज्य में शरण लेना कायरता है। अतः इन एकांकियों की समस्यायें वर्तमान राजनैतिक एवं सामाजिक संघर्ष से उत्पन्न जटिल परिस्थितियों से सम्बन्धित हैं।

पात्र:—आज का एकांकीकार यथा सम्भव कम पात्रों को स्टेज पर लाता है। पुराने एकांकियों में अनेक पात्र (उदाहरणार्थ, देखिये चतुरसेन शास्त्री का "सीता-राम" जिसमें १६ पात्र हैं) होते थे, जिससे सबका चित्रण यथोचित रूप में नहीं होता था। अब यथा सम्भव कम पात्र रखे जाते हैं। ये पृथक रूप से Hero, Heroine और Villain होते हैं। कुछ मोनोड्रामा भी लिखे जा रहे हैं, जिनमें केवल एक ही पात्र होता है।

कुछ एकांकीकार (जिनमें सत्येन्द्र शरत् प्रधान हैं) ऐसे एकांकियों की रचना कर रहे हैं, जिनमें स्त्री पात्र है ही नहीं। एकांकी नाटक जीवन की उद्दीप्त घड़ी की या किसी महत्त्वपूर्ण घटना के एक पहलू की झांकी मात्र है। उस घड़ी में स्त्री-पात्र अनिवार्य हों ऐसी बात नहीं। पुरुषों के जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं तथा घड़ियां होती हैं, जिनमें नाटकीयता भी होती है और संघर्ष भी और किसी स्त्री से उनका किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं होता। ऐसे एकांकी लिखना अपेक्षाकृत कठिन भी है। हमारे रूढ़िग्रस्त समाज में रंगमंच पर स्त्री पुरुष के एक साथ आने के मार्ग में रुकावटें भी हैं। इसी कारण ऐसे एकांकियों की मांग की गई जिनमें केवल पुरुष पात्र हों। कालेज और विश्वविद्यालयों में ऐसे एकांकियों की मांग अत्यधिक है। हमारे देश में अभिनय कला के इतने पिछड़ जाने के अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि अभी शिक्षितों में इतनी जागृति नहीं हुई है कि पुरुष और स्त्री रंगमंच पर साथ-साथ अभिनय कर सकें। आज के समय से सामाजिक जागृति के युग तक जो रिक्त (Vacuum) है उसको पूरा कर, इन दोनों सिरों को जोड़ने के लिये पुरुष प्रधान (और स्त्री प्रधान भी) नाटकों की आवश्यकता है।

संविधान—इन एकांकियों का संविधान रंगमंच है। आज का नाट्यकार रंगमंच तथा अभिनय का विशेष ध्यान रखता है। प्रायः अभिनय के लिये ही इनकी रचना भी की जाती है। यह अपने वर्त्तमान रूप में बिना किसी असाधारण परिवर्त्तन के सरलता से अभिनीत हो सकते हैं। इसी कारण इन एकांकियों में यथा संभव पूर्व—कथा नहीं दी जाती, क्योंकि दर्शकगण उससे कोई लाभ नहीं उठा सकते। वैसे ज्यों ज्यों एकांकी विकसित होते जाते हैं,

त्यों त्यों पाठकों एवं दर्शकों को पात्रों के मनोभाव एवं Situation का ज्ञान होता चलता है।

इसी प्रकार इन एकांकियों में पात्रों का परिचय भी एकांकीकार द्वारा नहीं दिया गया है। मुख्य पात्र स्वयं ही अपनी बातचीत में एक दूसरे के द्वारा, अपना परिचय पाठकों एवं दर्शकों को देते हैं। पुरानी परिपाटी के नाटककारों ने पात्रों का परिचय स्वयं दिया है। पाठकों के दृष्टिकोण से यह ठीक है क्योंकि इससे उन्हें नाटक समझने में कठिनाई नहीं होती लेकिन आज की दृष्टि से यह भी अस्वाभाविक है। एकांकी तो जीवन का एक चित्र है। उसमें कृत्रिमता के लिये तनिक भी गुन्जाइश नहीं है। आज का एकांकीकार पात्रों के नाम तथा उनका परिचय भी धीरे धीरे पात्रों के ही द्वारा एक दूसरे के नाम लेकर पुकारने का प्रकट करता है।

इन एकांकियों का मूलाधार 'विकास' है। इनमें नाटकीय कथावस्तु का क्रमिक विकास ही है जिसमें मौलिक संघर्ष की प्रधानता है। आरम्भ में नायक और उसके प्रतिद्वन्दी की झलक हमें मिल जाती है; इनमें पारस्परिक संघर्ष चलते हैं। यह संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच कर समाप्त हो जाता है। साथ ही एकांकी भी समाप्ति पा लेता है। कहीं कहीं अन्तर्संघर्ष की प्रधानता है।

रेडियो एकांकी इस युग की माग है। रेडियो के लिये हमारे यहाँ सफल प्रयोग किये जा रहे हैं। रेडियो एकांकी प्रारम्भ से अन्त तक प्रभावोत्पादक हो रहे हैं। इसमें सर्वश्री रामकुमार वर्मा, विष्णु भाकर, रामचरन तिवारी, रामसरन शर्मा, हरिश्चन्द्र खन्ना, फकीरचन्द्र माथुर, जनार्दन मुक्तिदूत, लक्ष्मीनारायणलाल का कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

भाषा—प्राचीन परिपाटी के एकांकियों की भाषा साहित्यिक और कृत्रिम होती थी, अब यथार्थवादी की ओर वृत्ति अधिक है। बहुत से एकांकीकार एकांकी को अभिनय की वस्तु मानते हैं और इसीलिये उसमें साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं करते। आज के जागरूक कलाकार के सामने भाषा का प्रश्न जटिल रूप में उपस्थित है। उसे यह तो ध्यान रखना ही पड़ता है कि उसके पात्र ऐसी ही भाषा का प्रयोग करें जो प्रतिदिन प्रयोग में लायी जाती हो,

तथा जिससे नाटक वास्तविक व बिल्कुल सच्चे मालूम पड़ें ; किन्तु साथ ही यह भी बात रखनी पड़ती है कि उसके नाटकों की भाषा आज से दस साल बाद भी नयी स्वाभाविक ही रहे तथा इतनी पुरानी व निर्जीव न हो जाय कि नाटक खेलने योग्य न रहें।

आज का एकांकीकार भाषा को यथासंभव सरल, स्वाभाविक और दैनिक जीवन जैसी गतिशील रखना चाहता है साथ ही वह यह भी ध्यान रखता है कि भाषा बनावटी तथा अस्वाभाविक प्रतीत न हो। अस्वाभाविकता से बचने के लिए इन नाटको में "स्वगत कथन" का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया जाता। आज का एकांकीकार स्वगत-कथन को अस्वाभाविक और कृत्रिम मानता हैं। उसे पात्रों के कथोपकथन इस चतुराई से लिखने पड़ते हैं कि "स्वगत" की आवश्यकता ही न रहे। यो दैनिक जीवन में हम कभी स्वगत का प्रयोग नहीं करते। फिर एकांकियों में ही क्यों इनका प्रयोग किया जाय।

अस्वाभाविकता से मुक्त होने के लिए आज का नाट्यकार पात्रों द्वारा शेर, दोहे या गाने प्रयोग में नहीं लाता। दैनिक जीवन में हम हंसते रोते हुए कभी कविता का प्रयोग नहीं करते। यह बड़ा अस्वाभाविक प्रतीत होता है कि पात्र अपने मनोभाव गद्य बोलते २ पद्य में प्रकट करने लगें। अतः कविता का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया जा रहा है।

रंगमंच निर्देश :—इस दृष्टि से नये एकांकीकार बहुत आगे बढ़े हैं। आज के एकांकी में निर्देशों की सहायता से रंगमंच की पूर्ण व्यवस्था समझा दी जाती है, जैसे किस स्थान का दृश्य उपस्थित किया जा रहा है? कैसा कमरा है? कितने दरवाजे खिड़कियाँ तथा Arrangement हैं?, प्रवेश द्वार किधर है, कमरे में क्या २ सामान है? कौन २ व्यक्ति उपस्थित हैं? उनका रंग, रूप, ड्रेस, चाल ढाल, बैठने का ढग, आदतें इत्यादि स्पष्ट रूप से कह दी जाती हैं? वे क्या कर रहें हैं आदि आदि। दूसरे, यह निर्देश पात्रों की रूप-कल्पना तथा उनके अभिनय को भली भांति प्रस्तुत कर देने में सहायता करते हैं।

कुछ एकांकीकारों के प्रारम्भिक रंगमंचीय निर्देश बहुत बडे हैं। इनमें

कथा का प्रारम्भिक भाग दे दिया जाता है, जिससे एकांकी पढ़ने वाला कथानक के प्रारम्भिक भाग से परिचित हो जाय। एकांकी विकास-संघर्ष से प्रारम्भ होकर चरमोत्कर्ष की ओर तीव्रता से बढ़ते हैं। प्रारम्भ एकदम हो जाता है।

कुछ साहित्यकारों ने निर्देशों में प्रभाव व्यंजना के निमित्त काव्यात्मक रंगमंच निर्देश प्रयुक्त किये हैं। इनमें काव्य मधुरिमा फूटी है, उपमाओं का परिष्कृत प्रयोग है। इनका अभिप्राय यही है कि एकांकी पढ़ते समय भी पाठक रस और आनन्द ले सके। ये काव्यमय संकेत पात्रों की मुद्रा तथा रंगमंचीय परिस्थिति की कल्पना को सजीव और रंगीन बना देते हैं। इनका रंगमंच पर प्रदर्शन किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। नये रंगमंच पर स्टेज डाइरेक्टर के लिए लिखे ही जाते हैं। इस श्रेणी के एकांकीकारों में श्री भुवनेश्वर, डा० रामकुमार वर्मा और श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र प्रमुख हैं। ये एकांकियों को सुपाठ्य, मनोरंजक और रस परिपाक में सहायक बनाते हैं।

१०—हिन्दी में नवीन एकांकी साहित्य

युरोप में कृत्रिम भावुकता, व्योमविहार करने वाली कला की आराधना एवं सौन्दर्य की प्रतिष्ठा मर्यादा का अतिक्रमण ऐसे साहित्य की सृष्टि में लीन हो गयी जिसका सम्बन्ध जीवन से नगण्य सा रह गया था। इस सारहीन काल्पनिक कला आराधना के विरुद्ध यथार्थवाद की प्रतिक्रिया सहज स्वाभाविक थी। जनता को वह साहित्य रुचिकर प्रतीत हुआ, जिसमें उनके वास्तविक जीवन के घात-प्रतिघात, दुःख-वेदनायें या वर्तमान सामाजिक राजनैतिक अथवा आर्थिक संघर्ष से उत्पन्न नाना जटिलताओं को कल्पना या भावुकता से अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया गया था। इब्सन, मेटरलिंक तथा बर्नार्डशा इत्यादि से प्रभावित नाट्यकारों का विचार था कि अतीत या भविष्य चाहे

कितना भी आकर्षक क्यों न हो, वर्तमान जीवन तथा समाज की समस्याओं से पलायनकर व्योम-विहार करना व्यर्थ है।

नये एकांकीकारों का मूल स्वर यथातथ्यवाद है। वे समाज के स्वाभाविक यथार्थवादी स्वरूप चित्रितकर जनता का ध्यान जटिल विषमताओं की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। इन एकांकीकारों का विश्वास है कि समाज और राजनीति की विशेषताओं, आर्थिक शोषण, सामाजिक असमानता पर झूठी कल्पना या भावुकता की लीपापोती के स्थान पर उनका यथार्थवादी चित्रण कर दिया जाय; समस्या या विद्रूपता को इस प्रकार उभारा जाय कि जनता स्वयं उनपर विचार कर सके।

नवीन एकांकीकारों ने हिन्दी एकांकी को अनेक रूपों में ग्रहण किया है। पौराणिक ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक सभी दिशाओं में आधुनिक एकांकी विकास पथ पर अग्रसर हो रहा है। उनमें आज का उत्पीड़न, सामाजिक प्रतियोगिता, सेक्स, आर्थिक संकट, शोषण, मार्क्सवाद इत्यादि सभी का स्वर है। राष्ट्रीय नवनिर्माण सजग है यद्यपि साम्यवाद धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखा रहा है। टेकनिक की दृष्टि से इनमें पात्र कम हैं। कुछ एकांकीकार ऐसे एकांकियों की सृष्टि कर रहे हैं जिनमें स्त्री पात्र नहीं है। इनका संविधान रंगमञ्चीय है जिससे स्कूल, कालेज या विश्वविद्यालयों में इनका अभिनय हो सके। मुख्य पात्र स्वयं ही अपनी बातचीत में एक दूसरे का अपना तथा परिस्थिति का परिचय प्रदान करते हैं। रेडियो-एकांकी तेजी के साथ विकसित हो रहा है। ये एकांकीकार ऐसी स्वाभाविक पात्रों की वय, शिक्षा, वातावरण के अनुसार कर रहे हैं, जिससे नाटक वास्तविक जीवन के जीते जागते टुकड़े प्रतीत होते हैं। इनमें स्वगत कथन का प्रयोग नहीं है। अस्वाभाविकता से मुक्ति के लिये शेर, दोहे, या गानों का प्रयोग नहीं है। रंगमंच निर्देश की दृष्टि से नये एकांकीकार बहुत आगे बढ़े हैं। निर्देशों की सहायता से रंगमंच की रत्ती-रत्ती व्यवस्था (कभी-कभी चित्र द्वारा) स्पष्ट कर दी जाती है। कुछ ने प्रभाव व्यंजना के विभिन्न काव्यात्मक रंगमंच निर्देश प्रस्तुत किये हैं, जिनमें काव्य मधुरिमा, मुहावरों का प्रयोग,

चित्रोपमता, उपमाओं के कलात्मक प्रयोग हैं। संक्षेप में, पुरानी जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं का परित्यागकर नया एकांकी साहित्य पाश्चात्य शैली का उच्च-कोटि का साहित्य हमारे सामने आ रहा है।

नये हिंदी एकांकी साहित्य का अध्ययन हम निम्न वर्गों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

(१) सामाजिक व्यंग्यात्मक एकांकी, जिसमें समाज-सुधार, संस्थाओं, रूढ़ियों अथवा व्यक्ति, जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं को आलोचना का विषय बनाया गया है।

(२) राजनैतिक-राष्ट्रीय नवनिर्माण

(३) ऐतिहासिक आदर्शवाद।

नवीन एकाकी साहित्यका अन्तरंग दर्शन सामाजिक समस्या एकांकी—

इस धारा के अन्तर्गत भारतीय समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है। सामाजिक जीवन में जो-जो उथल-पुथल हुई है, उनका चित्रण उनमें हुआ है।

श्री चन्द्रकिशोर जैन के सामाजिक एकांकियों—"इंसाफ"; पहली भेंट"; "कानून"; "पूत की सगाई" "अस्पताल का कमरा", "रानी"; "बसेरा"; "विद्रोही" में राष्ट्र के नवनिर्माण के लिये उपयुक्त संकेत है। "विषकन्या" में नारी की विवशता और अजेय प्रतिहिंसा का अद्भुत चित्रण हुआ है। "पहली भेंट" में नारी के दैवी और आसुरी दोनों रूपों का चित्रण मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हुआ है। "हीरे का टुकड़ा" में मीर खां भारतीय-मूल-चरित्र का प्रतिनिधि होकर हमारे सामने आता है। "अस्पताल का कमरा" में नारी दैत्य है, नारी ही देवता है; नर के लिए आज नारी विलास की एक मैशीन मात्र है, इसकी यहां एक साथ तसवीर खींच दी गई है। "कानून" आज के समाज विधान का एक ऐसा चित्र हमारे सामने समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे प्रतीत होता है कि हमारे चारों ओर किस प्रकार नर्क

पर पालिश चढ़ी हुई है। गुलामी और गरीबी सभी का चित्रण इन नाटकों में है।

श्रीप्रेमनारायन टण्डन का "कन्वेसिंग" सार्वजनिक नेताओं के अनुभवहीन व्याख्यानों, मिथ्या दम्भ तथा कुटिलता का चित्रण करता है: "प्रेरणा" में ऐश्वर्य की लालसा। "प्रेम" में रोमांस की निराशा, "बचपन के साथी" में धोखेबाज नेताओं की प्रतिष्ठा के गुप्त रहस्य खोले गये हैं। आपके नाटकों की समस्यायें मध्यवर्ग के सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित हैं—सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं; म्युनिस्पैल्टी के प्रबन्धकों, तथा नेताओं का खोखलापन, मिथ्या प्रदर्शन, शरारतें चित्रित की हैं। सांकेतिक ढंग से और भी समस्यायें इनमें उभारी गई हैं। जैसे—"संकल्प" में विद्यार्थी जगत् की उच्छृंखलता, शृंगारप्रियता, सिनेमा का शौक आदि प्रत्येक नाटक किसी आदर्श तक पहुँचने के लिये समाज की आलोचना करता है।

श्री विष्णुप्रभाकर के अनेक सामाजिक नाटक प्रकाशित हुए हैं; जिनमें कुछ पारिवारिक हैं, तथा कुछ सार्वजनिक नेताओं के जीवन पर व्यंग्य करते हैं। आपके "मां"; "साहस" (गरीबी और वेश्यावृत्ति ; "पाप" (अविवाहित युवती का पाप); 'भाई'; 'भगवान्'; 'नया समाज'; 'बंटवारा' (पारिवारिक जायदाद के बटवारे का प्रश्न); "विचार और कर्म" 'संस्कार और भावना' (संक्रान्ति काल में एक हिंदू नारी का चित्र); "ब्रह्मलोक" (जच्चा-बच्चा अस्पताल का वातावरण); "माँ बाप" "प्रेयसि पहले" वहां दया पाप है (सौन्दर्य को लेकर पति पत्नी के वास्तविक सम्बन्ध); 'स्वर्ग और संसार' (दहेज के दुष्परिणाम); "श्वेत अन्धकार" (रिश्वतखोरी करने वाले वर्ग का परिचय), सामाजिक गुत्थियों के अध्ययन हैं। "वीरपूजा" प्रकृत चरित्र की उदात्ता पर आधारित है। "मुरब्बी"; "रहमान का बेटा" "मानव" चरित्रों के अध्ययन हैं। "संयम"; स्वतन्त्रता का अर्थ; "मजदूर और राष्ट्र चरित्र"; "सहिष्णुता," "शिक्षा" "नारी"; "अनुशासन";; नागरिक जीवन के नव निर्माण से सम्बन्धित हैं। विष्णु का दृष्टिकोण मानवता का विकास एवं परिपुष्टि है। वे जीवन के कल्याण के लिए आदर्शपेक्षी, गांधीवाद के शुद्ध सांस्कृतिक रूप से प्रभावित हैं।

श्री प्रभाकर माचवे ने समाज पर तीखी व्यंग्यात्मक अन्तर्दृष्टि डाली है। "ललित कला क्लब" में कला से कोसों दूर कला के नाम पर दिल्लगी करने, मन बहलाने, अपनी गुप्त इच्छायें पूर्ण करने वाले व्यक्तियों पर व्यंग्य है। "गुडबाई मिस्टर शर्मा" भद्दे और कुरुचिपूर्ण सस्ते और आदर्शहीन फिल्म निर्माताओं पर छींटाकशी करता है। 'गली के मोड़ पर' के तीन एकांकियों "लेटरबक्स"; "म्यूनिसपल लालटेन" "दीवाल" आदि में समाज का विस्तृत चित्रपट प्रस्तुत किया गया है, जिसमें मौजूदा समाज की राजनीति व्यवहार, आदर्श, प्रवृत्तियां, नैतिकता, खोखलापन, दुहरा व्यवहार, धर्म, संस्कृति आदि सामाजिक जीवन के अनेक चित्र प्रकाश में लाये गये हैं।

ऐतिहासिक आदर्शतम्—द्विवेदी युग से चलकर यह धारा इस काल में विशेष रूप से विकसित हुई है। इसका प्रधान कारण राष्ट्रीय जगत में आमूल परिवर्त्तन तथा सक्रिय क्रान्ति का उन्मेष है। इस धारा के अन्तर्गत दो प्रकार के ऐतिहासिक आदर्शवादी नाटक लिखे गये हैं—१) हिन्दू युग से सम्बन्धित नैतिक आदर्शवादी एकांकी, जिनमें अतीत भारतीय गौरव, राजस्व के आदर्शवादी विधान और चारित्रिक दृढ़ता चित्रित हैं। इसमें ऐसे हिन्दू नरेशों का चरित्र चित्रण है, जो अपनी चरित्र-निष्ठा, प्रजावत्सलता, सत्य तथा नैतिक आदर्शों के कारण भारतीय इतिहास के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय नवनिर्माण के हेतु भारतवासियों में उदात्त भावनायें, राष्ट्रीयता चरित्र की महानता, अतीत गौरव जागृत करना, इसका मूल अभिप्राय है।

द्वितीय श्रेणी में मुस्लिम युग की राजनैतिक स्थिति, विचारधारा और मुस्लिम सम्राटों के चरित्रों तथा तत्सम्बन्धी घटनाओं का चित्रण है। कुछ एकांकियों का सम्बन्ध मुस्लिम सम्राटों के व्यक्तिगत जीवन से भी है और अन्तर या बाह्य संघर्षों के कारण एकांकियों के विषय बन गये हैं। कुछ वे एकांकी हैं जो मुस्लिम युग मे पनपते हुये हिन्दू धर्म तथा राष्ट्रीयता से सम्बन्धित हैं।

हिन्दू युग का नैतिक आदर्शवाद—द्विवेदी युग मे इस विचार-धारा के अन्तर्गत डा० रामकुमार वर्मा ने मुख्य कार्य किया था। "शिवाजी";

"समुद्रगुप्त"; "विक्रमादित्य"; "चार्लमत्रा; "पृथ्वीराज की आंखें"; "कौमुदी महोत्सव"; "ध्रुवतारिका", आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। डा० वर्मा का कार्यक्षेत्र निरन्तर प्रगति पथ पर है। इस धारा में आपने कुछ नवीन ऐतिहासिक एकांकियां का निर्माण किया है जैसे—"स्वर्णश्री" (१९५०) 'कृपाण की धार" (१९५१); "कलंक रेखा", कादम्बपाचिप" इत्यादि। इनमें हिन्दू युग का गौरव, उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा, चरित्र गौरव आदि बड़े सजीव रूप में आया है। इनकी विशेषता एकांकियां की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है, जो ऐतिहास की कसौटी पर अक्षरशः सत्य है। वर्माजी के अन्य ऐतिहासिक नाटकों—"प्रतिशोध", "दुर्गावती", "कलक रेखा" इत्यादि रेडियो पर सफलता पूर्वक प्रसारित किये जा चुके हैं। कुछ विशेष रूप से रेडियो के लिये लिखे गये हैं। इनका सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में पात्रों के चरित्र को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित करने की दृष्टि रखी गई है। अन्तर्द्वन्द्व मानसिक प्रक्रिया, पात्रों के संस्कार तथा क्रमिक विकास हमें सभी एकांकियों में उपलब्ध हैं।

पं० उदयशंकर भट्ट ने प्राचीन बौद्ध-संस्कृत पर एक सुन्दर ऐतिहासिक रोमांस "शशिलेखा" (१९५१) की सृष्टि की है, जिसका अन्त आत्मप्रकाश तथा मन शांति में होता है श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने "कावेरी का कमल" (१९५१) में दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत के चोलवंश तथा भारत-रोम व्यापार, विदेशों से पारस्परिक सम्बन्ध, भारतीय सभ्यता, रोम का विलासी जीवन, चोल-प्रदेश का विदेशियों से व्यवहार, शिष्टाचार, न्याय-पद्धति, चोल नरेश के राजकुमार का रोम के एक श्रेष्ठी टाइटस की पुत्री रोम कन्या सोफ़ी से प्रेम-सम्बन्ध तथा विवाह को लेकर एक लम्बा एकांकी लिखा गया है इसकी पृष्ठभूमि में भारतीय तथा रोमन संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन है।

श्रीगणेशदत्त गौड़ "इन्द्र" अनेक ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है। आपने "गर्दभिल्लोन्मूलन" में दुश्चरित्र गर्दभिल्लका शहानुसाहि द्वारा वध तथा महाराज विक्रमादित्य का राजसिंहासन पर आरूढ़ होना चित्रित किया है। "परिमार्जन" में संसार विश्रुत धर्मप्रवर्तक महात्मा बुद्ध द्वारा नर-घातक डाकू अंगुलिमालिका बौद्ध-भिक्षुक बनना चित्रित है।

"नारी पाप है" में उपूलिका देश की राजकुमारी उर्वशी का मगध के राजकुमार पुष्पजीत को बचाने के लिये दासी बनकर दिखाया गया है। "मुकुटधारी भिक्षुक" में कौशलाधिपति के प्रेम और बलिदान द्वारा काशीराज की ईर्ष्या और हिंसा पर विजय दिखाई गई है। इन्द्रजी के ऐतिहासिक नाटकों की प्रवृत्ति आदर्शवादी की ओर है। श्री प्रभाकर माचवे का "पियदस्सिन" (१९४८) चारों वर्षों को संघ में प्रवेश करने के पक्ष में दलीलें उपस्थित करता है। इसमें दी हुई अशोक तथा बौद्धमत सम्बन्धी जानकरी प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों धम्मपद तथा जातकों से ली गई है।

श्री मदनमोहन राकेश का "कलिंग विजय" (१९४७) का सम्बन्ध अशोक के राज्याभिषेक के आठवें वर्ष तथा उसकी सेनाओं के कलिंग विजय तथा वैराग्य से है। इस एकांकी की विशेषता इसकी मनोवैज्ञानिक रीति से हृदय परिवर्तन तथा आन्तरिक द्वन्द का चित्रण है। "राकेश" जी अन्त तक पहुँचते-पहुँचते कुछ आध्यात्मिक से हो जाते हैं ; भावुकता के स्थान पर गूढ़ चिन्तन आ जाता है। अशोक और महारानी के चरित्र कुशलता से विनिर्मित किये गये हैं। इस एकांकी को हम युद्ध के विरुद्ध चेतावनी के रूप में भी ले सकते हैं। गत महायुद्ध के कुफल, भीषण रक्तपात, नरसंहारी आदि की ओर संकेत किया गया है।

श्रीमती सरस्वतीदेवी का पाणिग्राही का "कलिंग विजय" (१९३८) ने कलिंग विजय के दिन कलिंग के राजपुत्र जयपाल तथा अशोक की पुत्री संघमित्रा की प्रेमकथा से सम्बन्धित है। संघमित्रा वन्दी जयपाल को मुक्त करने की प्रार्थना करती है, किन्तु अपने स्वाभिमान की रक्षा में जयपाल आत्महत्या कर डालता है। कलिंग विजय की पृष्ठभूमि पर यह एक दुःखान्त नाटिका है।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने तीन सजीव हृदयस्पर्शी एकांकी सम्राट अशोक की तीन सन्तानों पर लिखे हैं। (१) "संघमित्रा" (२) "सिंहल विजय" तथा (३) "नेत्रदान"। ये क्रमशः संघमित्रा, महेन्द्र और कुणाल के चरित्र एवं कार्य का प्रतिपादन करती है। "कुणाल" के चरित्र को लेकर श्री गणेशदत्त

गिरि "इन्द्र" ने भी एक सुन्दर एकांकी लिखा है। श्री प्रशान्त का "द्वार-गीत" ईसवी २०० वर्ष पूर्व बौद्धधर्म से अनुप्राणित संस्कृत का चित्र है।

श्री लक्ष्मीनारायणलाल एम. ए. का "महाकाल मन्दिर" (१९५०) मगध के सम्राट पुष्पमित्र के शासन काल में नष्ट होते हुए मौर्य साम्राज्य के पतन का चित्र उपस्थित करता है। इसमें चित्रित किया गया है कि किस प्रकार मन्दिरों में धर्म के नाम पर विलासिता का प्रचार प्रारम्भ हो गया था, मन्दिरों में पुजारियों का शासन था, नर्तकियाँ स्वच्छन्द रूप से नृत्य करती थीं, मदिरा पान की जाती थी। अशोक का धर्मानुशासन समाप्त हो चुका था। मौर्य साम्राज्य घटाटोप अन्धकार में भटक रहा था। इस पृष्ठभूमि पर नाटककार ने नर्तकी चित्रा तथा वसुमित्र की प्रेम-कथा, धर्म पाखण्डियों का पर्दाफाश और मौर्य साम्राज्य को बचाने के लिये आत्म-बलिदान का एक चित्र खींचा है।

सिकन्दर महान् से सम्बन्धित कई सुन्दर एकांकी लिखे गये हैं। इनमें से सबसे उत्तम "गांधार पतन" है जिसमें श्री प्रेमनारायण टंडन ने ऐतिहासिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है। सिकन्दर के आक्रमण का समय है, आंभी ने उसे गांधार से जाने का मार्ग दे दिया है। देशवासी देशद्रोह से क्रुद्ध हैं। इस पर आंभी अपनी कूटनीति समझाता है। वह यह कि सिकन्दर भारत में आ जाय तो उसे चारों ओर से घेर लिया जाय। इसमें टण्डन जी के राष्ट्रीय विचार, स्वदेश-प्रेम, भारतीय गौरव विषयक विचार प्रकट होते हैं। स्वाधीनता से पूर्व भारत की आकांक्षायें निहित हैं।

श्री भुवनेश्वर प्रसाद का "सिकन्दर" (१९५०) भारतीय पण्डितों की श्रेष्ठता प्रदर्शित करता है। श्री छोटेलाल भारद्वाज का "वीरता की क़द्र" (१९४५) में सिकन्दर से पुरू का स्वाभिमान और आत्म-सम्मान की पवित्र झाँकी दी गई है। सम्राट पुरू मरने से नहीं डरता; अतः अपना स्वाभिमान भी नहीं त्याग सकता! सिकन्दर की प्रेयसि हेरा पुरू के समीप खड़ी होती है। और प्राण-दण्ड की इच्छा करती है। वीर का काम वीरता की क़द्र करता है। देश-द्रोहियों के मन की कर के मातृभूमि के गौरव के सच्चे उपासना को कुचल

देना डारा को सह्य नहीं है। पुरू के स्वाभिमान पर प्रसन्न होकर सिकन्दर उसे मुक्त कर देता है। भारतीय वीरता की उज्वल झाँकी इसमें दी गई है।

श्री सेठ गोविन्ददास—अपने आपमें एक संस्था है। चार बार के जेल-जीवन में सेठजी ने पूरे और एकांकी मिलाकर लगभग ५० नाटक लिखे हैं, जिनमें कई का सफल अभिनय हो चुका है, कुछ के फिल्म बन चुके हैं, "स्पर्द्धा", "सप्तरस", "पञ्चभूत", "एकादशी", "अष्टदल", "चतुष्पद" इत्यादि आपके एकांकी नाटक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। सामाजिक, ऐतिहासिक, एवं राजनैतिक प्रायः सभी प्रकार के नाटक आपने सफलता पूर्वक लिखे हैं, किन्तु आपका क्षेत्र राजनीति है, जिसमें आपका समस्त जीवन व्यतीत हुआ है।

वर्तमान राजनीति का परिचय एवं अनुभव प्राप्त कर आपने नाट्य-जगत् में प्रवेश किया है। अपने नाटकों में आपने वर्तमान राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र खींचा है। इसमें ऐसे व्यक्तियों पर व्यंग भी है, जहाँ स्वार्थी मिनिस्टर हैं, रंगे सियार काउन्सिल के मेम्बर हैं जो देश-भक्त और जन-सेवा का स्वाँगभर अपना उल्लू सीधा करते हैं, जिनकी दृष्टि में स्वार्थ और यशोलिप्सा के अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व का महत्त्व नहीं है। अपन राजनैतिक जीवन के समस्त अनुभव, भारतीय जीवन का बहुमुखी जीवन, समाज के सभी वर्गों, सभी समस्याओं, सभी आन्दोलनों के चित्र इनकी कृतियो में हैं। सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन पर उन्होंने स्वस्थ आलोचना की है।

उनकी कृतियों की पृष्ठभूमि में आदर्शवाद मिलता है। "राजनीतिक जीवन को भी उन्होंने मुख्यतः आदर्श की प्रेरणा से, सेवा के लिये ही ग्रहण किया है, वह उनके लिये एक नैतिक कार्य है।" सेठजी बापू के निकट सम्पर्क में रहे है। प्रस्तुत नाटक में आपने विनोबाजी सम्बन्धी एक मधुर संस्करण नाटक के रूप में लिखा है। विनोबाजी को अंग्रेजी शिक्षा की तीव्र इच्छा थी, किन्तु बापू के सम्पर्क में आकर उनकी अंग्रेजी शिक्षा की इच्छा समाप्त हो गई। उन्हें ज्ञान होता है कि वे अपनी हिन्दी की शिक्षा द्वारा ही मां-बाप, परिवार, तथा देश की सेवा कर सकते हैं। नाटक की शैली इतनी सजीव है कि

समग्र राजनैतिक जीवन हृदयपटल पर मूर्तिमान हो उठता है। इसमें पर्याप्त मौलिकता और रोचकता है। महात्मा गान्धी सम्बन्धी नाट्य-साहित्य में यह सर्वथा नवीन चीज़ है।

प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त के शब्दों में, "इनकी साहित्यिकता के अलावा इनका बड़ा गुण हम यह समझते हैं कि इनके नाटकों का जीवन रंगमंच पर भी हो सकता है; इनकी अपील वाचनालय तक ही सीमित नहीं। सफल अभिनय के लिये नाटक में गतिमान कथानक और जीवित कथोपकथन की विशेष आवश्यकता होती है। सेठजी के कथानक चलायमान होते हैं, इनका कथोपकथन सरल और स्वाभाविक है। उनके अनेक दृश्य स्मृति पर पत्थर की लकीर की तरह खिंच जाते हैं।

सेठजी का एक नया एकांकी संग्रह "कुछ आप बीती, कुछ जगबीती" प्रकाशित हो रहा है। आपके नाटकों का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भी हो चुका है।

विभाजन तथा तज्जनित रक्तपात—१५ अगस्त १९४७ के लिए एक राष्ट्रीय महापर्व था। किन्तु स्वतन्त्रता के साथ-साथ देश के बंटवारे से देश में जो भयकर रक्तपात, नरहत्या, साम्प्रदायिक खूंरेजी हुई, इसकी छाप एकांकी साहित्य पर पड़ी है। प्रो० बोरगांव के नाट्य साहित्य में १९४६ से १९४९ तक की समस्त राजनैतिक सिद्धान्तों और घटनाओं के चित्रण में व्यंग का सम्मिश्रण है।

श्री विष्णुकान्त मालवीय का '१५ अगस्त' तथा श्री खुशालसिंह का 'नमाज़ के वक्त' (१९४८), प्रो० बोरगांवकरके "१५ अगस्त" में देश का बंटवारा, मुसलिम लीग का धार्मिक पागलपन, कलकत्ता और नोआखाली की हत्यायें, हिन्दू संगठन में साम्प्रदायिकता की बीमारी, मनुष्य में प्रतिशोध की भावना, बर्बरता, लीगी तथा कांग्रेस दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है। आपके 'शरणार्थी' में उस भीषण परिस्थिति की झांकी दी गई है, जिसमें दो तीन महीनों के अन्दर ३०-४० लाख लोगों को इधर से ---- —न पड़ा था। '३० जनवरी' में महात्मा गांधी की हत्या का चित्रण

है। इसकी मूल भावना यह है, "दुष्टता का अनुच्छेदन सज्जनता से ही हो सकता है, प्रतिशोध से नहीं।" बँटवारे की अमानुषिक बर्बरता का चित्रण करते हुए श्री उदयशंकर-भट्ट ने "पिशाचों का नाच" श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'विषपान' (१६४७) 'देश के शत्रु' (१६ ७) और 'स्वर्ग में विप्लव' प्रो० बोगावकरका 'द-अगस्त' आदि प्रकाशित हुये हैं। श्री हरिवल्लभ ने 'प्रतिशोध' में साम्प्रदायिक मार काट में हिन्दू मुसलमानों की एकता का आदर्श चित्र प्रस्तुत किया है।

स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पश्चात कई और समस्यायें देश के सम्मुख आयीं— १—शरणार्थियों की समस्या २—अपहृता महिलाओं की समस्या ३—काश्मीर समस्या ४—कांग्रेस राज्य के गुण-दोष। इन सभी पर नाट्यकारों ने नाटकों का निर्माण किया।

शरणार्थी समस्या—इन सब पर पृथक से एकांकी नाटक प्रकाशित हुए हैं। शरणार्थी-समस्या पर श्री प्रताप मगनलाल का "शरणार्थी" (१६५०) श्री विष्णु के "चन्द्रकिरण", "मानव", "वीर पूजा", "प्रतिशोध", "प्रेम" इत्यादि; प्रो० बोरगावकर का "शरणार्थी" शरणार्थियों की कठिनाइयों, छोड़ी हुई सम्पत्ति की हानि, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, पुनःस्थान सम्बन्धित सैकड़ों तकलीफें, अन्य प्रान्तों वालों को उनके प्रति दुर्व्यवहार, कटकमय जीवन तथा अन्य समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं।

अपहृत महिलाएँ—अपहृता महिलाओं के सम्बन्ध में श्री विष्णु-प्रभाकर का "वीर पूजा", "चन्द्रकिरण", श्री हरिश्चन्द्र खन्ना का "मुक्ति के पथ पर", श्री नाथसिंह का "अपहृता", श्री चन्द्रशेखर नागर का "त्याग या ग्रहण" (१६४६), श्री आरसीप्रसादसिंह का "कलक मोचन" (१६५०), प्रो० बोरगाँवर का "शुद्धि" (१६४८) आदि नाटक प्रकाशित हुये हैं। परिस्थितिवश भ्रष्ट की हुई स्त्रियों को अपनाने के पक्ष का इनमें ज़ोरदार समर्थन है।

काश्मीर समस्या—काश्मीर समस्या पर श्री विष्णु प्रभाकर के "देवताओं की घाटी", "रक्त चन्दन", प्रो० वी० पी० खन्ना का "अभिशाप",

श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल "जल रहा है काश्मीर", श्री वृन्दावनलाल वर्मा का "काश्मीर का कांटा" आदि उत्तम नाटक है।

कांग्रेस का भ्रष्टाचार—कांग्रेस राज्य की निर्बलताएँ, भ्रष्टाचार, तथा त्रुटियों की आलोचना करते हुये निम्न एकांकी प्रकाशित हुये हैं—श्री विष्णु का "कांग्रेस मैन बनो", अवसरवादियों पर व्यंग करता है। श्री प्रतापनारायण श्री वास्तव का "स्वराज्य की तस्वीर" (१९५१) राष्ट्रीय-जीवन के अधःपतन का चित्र अंकित करता है। हमारे कार्यकर्त्ताओं तथा स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिकों में जो धन व पदलोलुपता प्रवेश कर गई है उनका नाट्यकार ने आकर्षक ढंग से मनोरम संवादों द्वारा चित्रण किया है। श्री वामन मल्हार जोशी एम० ए० का स्वराज्य साधना" (प्रहसन) चतुर्दिक संघर्ष और पीड़ा का चित्रण करता है श्री विश्वनाथ कालेका "कुछ पहलू" (१९४६) स्वराज्य के कुछ चिन्तनीय पहलुओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। श्री रामरतन द्विवेदी का "दस वर्ष बा." तमाम त्रुटियों से मुक्त अगले दस वर्षों का एक आदर्श चित्र अंकित करता है।

११—एकांकी नाटकों में सांस्कृतिक नैतिक चेतना

यद्यपि आधुनिक युग बुद्धिवादी है और विज्ञान का भौतिकवादी दृष्टिकोण हिन्दी नाट्यकारों के सम्मुख रहा है, तथापि आज भी अनेक साहित्यकार ऐसे एकांकी नाटकों की रचना कर रहे हैं, जिनका आधार पौराणिक है तथा उद्देश्य नैतिक। इन एकांकी नाटकों में भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रयत्न है। इनका कथानक धार्मिक है तथा भावना में नैतिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा है। इन एकांकी नाटकों में आज के सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक प्रश्नों का सीधा आरोप नहीं है। इनकी समस्यायें भारतीय संस्कृत की वे समस्यायें हैं, जो प्राचीनकाल से चली आई हैं। 'अतीत पर नीति की विजय दिलाना और कुछ अंशों में प्राचीन-गौरव को जाग्रत करना इन एकांकी नाटकों का उद्देश्य है।' इन नाटकों की प्राण संस्कृत-नाट्य-साहित्य से है। देश में आज जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान का आन्दोलन चल रहा है, उसका प्रतिबिम्ब हिन्दी एकांकियों में दीख पड़ता है। विज्ञान और भौतिकवाद के इस युग में अतीत भारतीय संस्कृति को जाग्रत करने की अतीव आवश्यकता है। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना जिन हिन्दी एकांकीकारों में व्यापक रूप से मिलती है, उनमें सर्वश्री उदयशंकर भट्ट, सद्गुरुशरण अवस्थी, रामकुमार वर्मा, प्रो० बृहस्पति, प्रभाकर माचवे, शम्भूदयाल सक्सेना, गणेशदत्त गौण 'इन्द्र', डा० सरनामसिंह अरुण इत्यादि प्रमुख हैं। इन एकांकीकारों ने अनेक सांस्कृतिक नैतिक प्रश्नों का विवेचन कर आदर्श उपस्थित किये हैं।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान का स्वर श्री उदयशंकर भट्ट के एकांकी नाटकों में सबसे ऊँचा है। भारतीय संस्कृति के अनेक युगचित्र आपके एकांकियों में

हैं। पुराणों तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों के आधार पर भट्टजी ने प्रागैतिहासिक काल की भौगोलिकता, आदिम स्त्री-पुरुष का सांस्कृतिक विकास, सभ्यता का निर्माण, मानव-मन में जिज्ञासा, तर्क, बुद्धि का विकास इत्यादि का विवेचन अपने 'आदिमयुग' संग्रह के एकांकियों में है।

'आदिमयुग' एकांकी हिन्दी-नाट्य-जगत् में अभूतपूर्व है। इस एकांकी में काल के बन्धन को तोड़ कर आदि पुरुष स्वायंभुव मनु एवं शतरूपा के द्वारा उस आदियुग की जीवन-झांकी देने का सफल प्रयत्न है। स्वायंभुव मनु और शतरूपा तथा उनके पुत्र-पुत्रियाँ सब वैदिक एवं पौराणिक पात्र हैं, किन्तु इन पात्रों का चारित्रिक विकास स्वाभाविक हुआ है। यदि पुराणों में मत्स्य, वराह, कच्छप अवतारों की कथा के द्वारा मनुष्यों के पूर्वजों का इतिहास है, तो कोई कारण नहीं कि स्वायंभुव मनु और शतरूपा का वर्णन अतिरंजित होते हुए भी मूलतः वास्तविक न हो। स्वायंभुव का अर्थ है अपने-आप उत्पन्न होने वाले का पुत्र। भट्टजी ने स्वायंभुव मनु और शतरूपा की सन्तान का वर्णन किया है। श्री मद्भागवत के आधार पर किया है। भाषा तथा भाव के अनुसार मानव-सृष्टि का क्रमिक विकास चित्रित करते हुए भट्टजी ने रूढ़ शब्दों का पात्रों द्वारा प्रयोग कराया है। फिर क्रमशः यौगरूढ़ि और यौगिक शब्द लिये हैं। सांस्कृतिक विकास की जिस शृंखला का निर्देश इस एकांकी में हुआ है; उसमें एकांकीकार सर्वथा मौलिक है।

द्वितीय एकांकी 'प्रथम विवाह' एक वैदिक कल्पना के आधार पर खड़ा किया गया है। प्रारम्भ में जब आर्य एक भ्रमणशील जाति थे, न उनमें कोई सामाजिक आचार-विचार था; न बन्धन। कदाचित् उस युग में वेदों की ऋचाओं का गायन प्रारम्भ नहीं हुआ था। आर्य पर्वतों से उतर कर भारत में पदार्पण कर रहे थे। 'प्रथम विवाह' उसी समय का एक चित्र है। काद्रवेय-काद्रवेयी का चित्रण संसार के सबसे भोले, निरीह; सच्चे मनुष्य का चित्रण है। वरुण पंचजन उस समय के परम विद्वान आर्य थे जिन्होंने समाज में मर्यादा की स्थापना की। एकांकी अभूतपूर्व है।

भट्टजी का तृतीय एकांकी है 'वरुवत मनु और मानव' जल-प्लावन के पश्चात आर्य-संस्कृति के विकास का एक चित्र प्रस्तुत करता है। जल-प्रलय के

पश्चात् जब मानव-सृष्टि समाप्त हो चली थी, उसके बहुत बाद का कथानक इस एकांकी में है। मनु—वैवस्वत मनु ही हमारे सृष्टि-नाटक की सामाजिक रंगभूमि के प्रधान पात्र हैं। पुराणों के अब तक की सारी सृष्टि को चौदह मन्वतरों में बांटा गया है। स्वायंभुव मनु से लेकर वैस्वत मनु तक का काल अब तक बीता है। पुराणों में विस्तार से इसका वर्णन है। श्री उदयशंकर भट्ट के अनुसार मनु नाम एक ऐसे व्यक्ति विशेष का है, जिसका प्रभाव उस युग पर पूर्णरूप से था। मनु-युग का अर्थ है—एक प्रकार के ज्ञान प्रसार, विशेष सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक व्यवस्था का प्रचलन। भट्टजी ने मनु के जन्म-संवत तथा पौराणिक बारीकियों में पड़कर एक कुशल चित्रकार की भाँति जल-प्लवन के पश्चात् आर्य-संस्कृति का चित्र उपस्थित किया है। उस काल में मानव जाति अज्ञान की रात्रि के ब्राह्ममुहूर्त में अँगड़ाइयाँ ले रही थी। गहन अंधकार को विदीर्ण कर भारत में आत्म चिंतन का प्रकाश उदित हुआ था। नाट्यकार ने इस एकांकी का कथानक शतपथब्राह्मण, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराण आदि सभी से मनु-सम्बन्धी सामग्री लेकर किया है। कथानक को प्रस्तुत करने में मौलिकता तथा प्रतिभा की छाप है।

'कुमारसंभव' में भट्टजी ने मध्यकालीन संस्कृति का एक चित्र खींचा है। इसमें कालिदास के जीवन सम्बन्धी एक छोटी सी घटना को कथानक के रूप में ले लिया है। पार्वती का शृंगार-वर्णन करने का कारण कालिदास को यह शाप मिला था कि वे उस काव्य को भी पूर्ण न कर पाएँगे। विद्वानों का विचार है कि चन्द्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त के उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में कवि ने इसकी रचना की थी तथा काव्य कुमार को भेंट किया था। इन्हीं सब आधारों का अध्ययन कर नाट्यकार ने इस एकांकी की पृष्ठभूमि का निर्माण किया है। प्रसंगवश कुछ देवताओं को भी पात्र बनाया गया है, किन्तु ये पात्र मानव की सहानुभूति तथा हृदय लेकर प्रस्तुत किये गये हैं।

चारों एकांकी भारत के तीन युगों की संस्कृतियों के, सभ्यता के विकास-स्तरों के चित्र हैं। बौद्धिक तत्त्व की प्रचुरता के बावजूद ये कौतूहलप्रद हैं। हिन्दी में इस ढंग के एकांकी का सूत्रपात करने का श्रेय भट्टजी को है। इनमें 'लोकल

कलर' बड़ी कुशलता से मिश्रित किया गया है। प्राणिविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान पुराण और प्रारम्भिक जीवन-दर्शन का सुन्दर समन्वय हुआ है।

भट्टजी के भाव-नाट्य (१) विश्वामित्र (१९२८), (२) मत्स्यगन्धा (१९-३५), (३) राधा (१९४१), (४) कालिदास, (५) मेघदूत, (६) विक्रमोर्वशी, (१९४०-४४) सांस्कृतिक दृष्टिकोण से लिखे गए हैं।

'विश्वामित्र' में हमारी संस्कृति में नर-नारी के पारस्परिक संघर्ष का संकेत है। इन्द्र की प्रेरणा से मेनका द्वारा विश्वामित्र का पतन नहीं दिखाया गया है। स्वच्छन्द रूप से वन में घूमती हुई उर्वशी और मेनका विश्वामित्र को तप करते हुए देखती हैं, उर्वशी को नर से घृणा है, वह सोचती है कि यदि ऋषि तप में सफल हो तो नारी को और भी नाच नचाएगा। वह मेनका को उकसाती है, जो विश्वामित्र का तप भंग कर दिखला देती है, किंतु जीवनोल्लास में वह इतना डूब जाती है कि अपनी पूर्व प्रतिज्ञा भूल जाती है कि 'निवृत्ति का प्रवृत्ति में परिवर्तन और प्रवृत्ति का पुनः निवृत्ति की ओर प्रत्यावर्त्तन ही 'विश्वामित्र' की कथावस्तु है।' इसके भाव, हलचल, गति, सजीवता मानों जीवन का एक ज़िंदा टुकड़ा हमारे सामने है।

'मत्स्यगन्धा' में नारी-जीवन की उस निर्बलता को चित्रित किया गया है, जो कि अन्तहीन यौवन और कलङ्कहीन रूप प्राप्त करने की लालसा में व्यक्त होती है। पराशर ऋषि का वरदान जीवन में सत्य बनकर उद्भासित होता है, किन्तु वैधव्य में यह वरदान उसके लिये अभिशाप बन जाता है। 'राधा' में राधा का परकीया नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। राधा का अपूर्व त्याग देखकर कृष्ण कह उठते है कि 'कृष्ण राधामय हुआ है, आज राधा कृष्णमय।'

'कालिदास' में कवि की रचनाओं के द्वारा उसके मानस के प्रत्यक्षीकरण की चेष्टा की गई है। कालिदास की रचनाओं के मर्मस्थलों की रूपकात्मक परिणति प्रस्तुत कर दी है। 'मेघदूत' में कालिदास के खण्डकाव्य 'मेघदूत' में का रूपान्तर है; 'विक्रमोर्वशी' कालिदास के इसी नाम का एकांकी है। इनके पद्यों में लाक्षणिक तथा प्रतीक-भावना से काम लिया गया है। उनके रूप में अनेक जीवन के रूपक क्रमशः उपस्थित हो गए हैं।

भट्टजी के भावनाट्य पौराणिक होते हुए भी अधुनिक बुद्धिवादी और मनोवैज्ञानिक ढग से जीवन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं। कला की दृष्टि से इनमें काव्य और नाटक का आनन्द आता है। इनकी पृष्ठिभूमि सांस्कृतिक है।

डा० रामकुमार वर्मा का 'अंधकार' (१६४२) दार्शनिक एकाकी है, जिसमें प्रेम तथा वासना का सापेक्ष सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है, प्रेम में दिव्यता है, प्रकाश है, वासना उसका अन्धकार है। अन्धकार ही स्वयं अपनी उपयोगिता है। वह स्वयं मनुष्य के लिए अनिवार्य है। उसका दमन, उसे दूर करने का प्रयत्न ही अवांछनीय है।' जीवन के इसी तत्व का यहाँ उद्घाटन हुआ है। राजरानी सीता' में भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत निष्ठा एव पतिव्रत, धर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। संसार में किसी देश की नारी में वह निष्ठा नहीं जो भारतीय नारी के पास है। इसी निष्ठा से भारतीय संस्कृति देदीप्यमान है। वर्माजी के रम्य रास में योगेश्वर कृष्ण की आंध्यात्मिक लीलाओं पर प्रकाश डाला गया है।

सद्गुरुशरण अवस्थी ने सांस्कृतिक क्षेत्र में उच्चचिंतन का प्रवेश किया है इनके अधिकांश एकांकी गूढ़ दार्शनिक विवादों तथा बौद्धिक तत्त्व से परिपूर्ण हैं। चिंतन का धरातल बहुत ऊँचा होने के कारण इनके नाटकत्व, अभिनेयता एव वाग-वैदग्ध्य की गति क्षीण हो गई है। 'मुद्रिका' में विविध मतां का व्यर्थ विभेद दिखाया गया है तो 'महाभिनिष्क्रमण' में दार्शनिक विचार-विनिमय है। 'बालिवध' में राम के आर्य-संस्कृति के सिद्धान्त की ऊँचाई चित्रित की गई है। 'कैकयी' में अप्रत्यक्ष रूप से राम का आदर्श, राजाओं का गौरव, जनता के नायक का चित्र खींचा गया है। 'शंबूक' में वर्ण-व्यवस्था तथा 'विभीषण' में डिक्टेटरशिप तथा सच्चे राजा के आदर्श का विवेचन है। 'शकुन्तला में आर्य गृहस्थ, गुरुजनों की आज्ञा का पालन और नियंत्रण पर विचार किया गया है। 'तुलसीदास' में अन्ध प्रेम की तुच्छता तथा लोक-मर्यादा का महत्त्व चित्रित है। 'अहिल्या' में त्याग और पतिव्रत की गरिमा, सयम की महत्ता, मर्यादा की सीमा उपस्थित की गई है। नारी-जगत् का मनो-

वैज्ञानिक एवं संस्कृति का भी विश्लेषण किया गया है। आज के युग में नारी-समाज सौंदर्य के पीछे पागल हो रहा है; किन्तु यह महापतन का एक कारण बन सकता है। इन्हीं सौंदर्य-साधकों पर व्यंग्य करते हुए नाट्यकार ने लिखा है—

'अहल्या—सुन्दरता के लिए मरनेवाली रमणियो! मेरे उदाहरण से सीखो। इस सुन्दरता ने मेरा नाश किया। महाराज इन्द्र को चोर बनाया। हमारा घर बिगाड़ा। पति को शत्रु बना दिया। उनके अनुपम प्यार को दम घोंटने वाले तिरस्कार में बदल दिया।'

'सती का अपराध' में भारत की महिलाओं की बेबसी मुखरित हो उठी है। 'त्रिशंकु' में जगत् की मृग-मरीचिका और तृष्णा की विवेचना है। 'बलि वामन' में अतिवाद, मानवता के झुकने की सीमा तथा अविवेकपूर्ण याचना को पूर्ण करने की मूर्खता दिखाई गई है। 'सुदामा' में मैत्री का आदर्श; 'ध्रुव' और 'प्रह्लाद' में भक्ति; 'एकलव्य' में सामाजिक परम्पराओं का चित्रण किया गया है। 'ईश्वर' में गहन दार्शनिक वाद-विवाद, ईश्वर और आत्म-सम्बन्धी ज्ञान का विवेचन है। अवस्थी जी का उद्देश्य प्राचीन वैदिक, पौराणिक, अर्द्ध ऐतिहासिक कथानकों तथा नायकों को नवीन दृष्टिकोण से देखना है। भारतीय संस्कृति की तर्कपूर्ण व्याख्या यहाँ उपलब्ध है।

पौराणिक नैतिक आदर्शवाद—राजनैतिक युग होने के कारण यह विचार-धारा अपेक्षाकृत क्षीण रही है, यद्यपि कुछ-न-कुछ पौराणिक नाटक भी प्रकाशित हुए हैं। इन नाटकों में नैतिक आदर्शवाद की उद्भावना है। देश की नाना हलचलों के मध्य परमार्थ तत्त्व तथा पौराणिक हिंदू-आदर्श का शुद्ध स्वरूप पूर्णरूपेण निरूपित नहीं हो सका है।

श्री रामचन्द्र तिवारी के "गंगावतरण" 'पसीने की पुत्री' और 'कृष्णार्जुन-युद्ध' में पुराने पौराणिक पात्रों को नए तरीके से प्रस्तुत किया गया है। आपके अनुसार स्वार्थ संयम संस्कृति का आरम्भ है और किसी भी समाज की सांस्कृतिक उच्चता उस समाज के व्यक्तियों तथा वर्गों के स्वार्थ-संयम के परिमाण से नापी जा सकती है। "पसीने की पुत्री" में विद्या तथा लक्ष्मी के

म्बन्ध को तथा कृष्णार्जुन युद्ध में गालव के व्यवहार को नई शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त मन्तव्यों के प्रकाश में चित्रित किया गया है, यद्यपि घटनायें पुरानी ही हैं।

श्री प्रभाकर माचवे ने पुराने पौराणिक पात्रों में आधुनिक समस्यायें तथा विभिन्न विचार-धाराएँ फिटकर सर्वथा नए प्रकार के नाटकों को जन्म दिया है। आपके 'पंचकन्या' क्रम के पाँच नाटक—'अहल्या'; 'द्रोपदी'; 'मंदोदरी' 'तारा', 'सीता'—के कथानकों को आधुनिक समस्याओं से परिवेष्टित कर दिया है। उनमें जो मानवो परिअद्भुत, न मानी जाने वाली बातें थीं, उन्हें निकालकर सम्भव और बुद्धिसंगत बनाने के लिए कल्पना का आश्रय ग्रहण किया गया है। इन पौराणिक नाटकों में आपने आधुनिक समस्याओं—तलाक, अपहृता नारियों की समस्या, आधुनिक संस्कृति, प्रेम-सम्बन्धी पाश्चात्य मनोविज्ञान आदि को भी मिश्रित कर दिया है। इनके अतिरिक्त प्रभाकर माचवे के 'उत्तर रामचरित', अमृतपत्रिका', 'कूर्माचल' आदि भी नवीन दृष्टिकोण से ओत-प्रोत हैं।

श्री लक्ष्मीनारायण लाल एम० ए० 'उर्वशी' भावात्मक शैली में 'कला कला के लिए' का आदर्श चित्रित करती है। इसमें प्रेम की उपेक्षा-भरी हृदय की कसक, वेदना और पुरुष का हृदय विजित करने के लिए विविध घात-प्रतिघात चित्रित किये गये हैं। 'उर्वशी में चरित्र तो महाभारत-काल के हैं। पर उनकी गठन बहुत अंशों में आधुनिक हो गई है। उर्वशी की ओर से असावधानी उस अर्जुन के लिए बहुत स्वाभाविक नहीं लगती, जिसका उद्देश्य उस समय दिव्यास्त्रों की प्राप्ति और महाभारत के भावी युद्ध में विजय प्राप्त करना है। उर्वशी अपना प्रणय निवेदन अर्जुन से जिन शब्दों में करती है—जितना खुलकर और जितने भावावेश में करती है—वह थोड़ा चिन्त्य हो उठा है।' इसमें भावावेश अधिक है।

श्री विष्णु प्रभाकर के कई सफल पौराणिक नाटक प्रकाशित हुए हैं, जिनमें नहुष का पतन (नहुष की प्रसिद्ध कथा के आधार पर), श्रद्धा और विवेक (राम-हनुमान युद्ध की कथा), शिवरात्रि (व्याघ्र और हिरनी की

कथा) तथा 'भगवान के दस अवतारों का वैज्ञानिक विवेचन विशेष उल्लेखनीय है।

श्री गणेशदत्त गौड़ इन्द्र ने अनेक पौराणिक कथानकों को उभारा है तथा 'मीठा जहर' 'लीला-चमत्कार', 'भक्तराज-नन्द', 'जित देखो तित वही वही है' 'जय बोलती हड्डी', देवलोक में दीपोत्सव' आदि धार्मिक नाटकों की रचना की है। नाटकों की घटनायें साधारण हैं; आंतरिक भावों तथा नैतिकता से स्पष्टीकरण का प्रयास किया गया है। इनके सम्वादों में गद्य-पद्य का प्रयोग है। जीवन की अनुभूतियों को भावपूर्ण कथोपकथनों में व्यक्त किया गया है।

श्रीराम शर्मा राम का 'जलदान' (१९४९) दानवीर कर्ण तथा उसकी माता कुन्ती की भेंट पर आधारित है। मा की ममता तथा पुत्र के उपालम्भक सजीव-हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है। कर्ण का वध हो जाता है। श्मशान में माता कुन्ती चुपचाप खड़ी रहती है। वह पाण्डवों की माता तनक दीनता की सरकार मूर्ति दिखाई गई है। इसका अन्त सशक्त और प्रभावशाली है।

श्री प्रशांत के 'सती सुभद्रा' और 'खोये हुए भगवान' धार्मिक नाटक हैं। 'खोए हुये भगवान' उस समय से सम्बद्ध हैं जब भगवान राम और जानकी स्नान करके चित्रकूट में वापस आ रहे हैं। भगवान के साथ अगस्त्य ऋषि का शिष्य सुतीक्ष्ण भी है। शिष्य शालग्राम से जामुन तोड़ता है, पत्थर के शालग्राम खो जाते हैं तो उनके स्थान पर एक जामुन रख देता है। अगस्त्य ऋषि उसे यह कहकर निकाल देते हैं कि यदि मेरे पास आना है, तो भगवान को साथ लाना। इस नाटक का अन्त तब होता है जब भगवान् राम आश्रम में पहुँच जाते हैं। नाटक में नवीनता तो है ही, मृदु हास्य भी है। पौराणिक जीवन के विनोद की एक झांकी मिलती है।

'सती सुभद्रा' (१९३६) चित्रसेन, कृष्ण, गालव, अर्जुन, नारद इत्यादि पात्रों के बल पर खड़ा होता है। इसमें गालव ऋषि का चित्रण कुशल करों से हुआ है। चित्रसेन, के अभयदान में महात्माजी की अहिंसा का कुछ स्वर है। सुभद्रा के उज्ज्वल चरित्र की स्मृति रेखा मन पर खिंच

जाती है। 'गुरुदक्षिणा' (१९४४) का कथानक पौराणिक है, किन्तु इसमें वृद्ध-विवाह की समस्या का चित्रण है। मधुव्रत कुलपति वृद्ध होने पर भी पुनः विवाह करना चाहता है। आधुनिक शिक्षित समाज में ऊँची आयु में विवाह करने की दुष्ट-वृत्ति की आलोचना का शिकार बनाया गया है।

श्री भारतभूषण अग्रवाल का 'महाभारत की सांझ' में महाभारत-काल का सुन्दर वातावरण उपस्थित किया गया है। श्री रामवृक्ष वेनीपुरी का 'सीता की माँ' (१९५०) स्वोक्तिरूपक की कल्पना का आनन्द, भाषा का सौंदर्य और नाटकीयता की दृष्टि से सर्वथा नवीन प्रयोग है।

डा० सरनामसिंह शर्मा अरुण के अनेक पौराणिक धार्मिक नाटक प्रकाशित हुए हैं जैसे—'नन्दीग्राम का तपस्वी', 'स्वर्णमृग', 'साधना' 'परित्याग' इत्यादि। इनकी विशेषता मनोवैज्ञानिक का आधार है। नाट्यकार की दृष्टि अन्तर्जगत् के भावों को समझने तथा उनकी अभिव्यंजना में विशेष रूप से रही है। रस और वातावरण की दृष्टियों से ये पूर्ण हैं। आपका 'जयमाला' नल-दमयन्ती के स्वयंवर को लेकर विरचित उसी शैली का एकांकी नाटक है। 'प्रसाद' के अनुकरण पर इसमें हास्य-विनोद लाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें दृश्यों की अधिकता है। 'साधना' उद्धव तथा गोपियों का कृष्ण के सम्बन्ध में सुन्दर पौराणिक नाटक है, जिसमें ज्ञान तथा भक्ति का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। आपके पौराणिक एकांकियों में सर्वोत्कृष्ट 'नन्दीग्राम का तपस्वी' है, जिसमें भरत का चित्रण गौरवपूर्ण ढंग से प्रदर्शित किया गया है।

दार्शनिक विवेचना प्रधान एकांकी—अध्यात्म से संबद्ध कुछ गम्भीर एकांकी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें गूढ़ तात्त्विक विवेचन के साथ गम्भीर विचार धारा का प्रतिपादन है जो अन्तर्जगत् के भावों और चिंतन की उद्भावना करती है। इस वर्ग में प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी का 'पादरी' (१९४६) 'ईश्वर' (१९४७); प्रो० पुरुषोत्तम डबराल शास्त्री एम० ए० का 'ज्ञान की तलवार' (१९४४); अज्ञात का 'कुन्ती और युधिष्ठिर' (१९४९); श्री कृष्णचन्द्र मुदगल का 'अन्त' (१९५१); श्री प्रेम का 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'

तथा 'आत्मा की खोज' (१९५०) दार्शनिक विवेचना प्रस्तुत करते हैं। बुद्धितत्त्व की प्रधानता होने के कारण इन नाटकों में जनरुचि-रंजन के तत्त्व कम हैं। सरदार मोहनसिंह का 'नई गीता' (१९२४) उपास्य तथा उपासक की अभिन्नता प्रेम और ज्ञान की एकता का प्रतिपादन करता है। मध्य में वर्त्तमान परिस्थितियों पर भी मार्मिक टिप्पणियां हैं। 'खुदा और शैतान' (१९२४) में पाप और धर्म, सत्य और असत्य, खुदा और शैतान का दार्शनिक निरूपण है। स्वामी सत्यभक्त का 'ईश्वर की उत्पत्ति' (१९३३); श्री सरनामसिंह शर्मा अरुण का 'क्रोध-विजय' उत्कृष्ट कोटि के आध्यात्मिक नाटक हैं।

डा० सरनामसिंह शर्मा का 'क्रोध-विजय' विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें क्रोध और क्षमा पात्र हैं तथा धर्मराज के सामने अपना अभियोग ले जाते हैं; तर्क-वितर्क चलता है और अन्त में न्यायाधीश क्रोधित हो उठते हैं। अन्त में क्रोध अपनी विजय उद्घोषित करता है।

डा० रामकुमार वर्मा के 'अन्धकार' और 'उत्सर्ग' आध्यात्मिक नाटक हैं। 'अन्धकार' में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेम आवश्यक है, वह बिना वासना के नहीं हो सकता; उसे अनुशासित करने का परिणाम कभी शुभ नहीं, यह अन्धकार रहेगा ही। इससे यह भी स्पष्ट है कि 'धर्म जीवन के लिए विष है, धर्म से मनुष्य का जीवन अन्धकार से भर उठता है; धर्म और प्रेम में विरोध है।' 'उत्सर्ग' में बुद्धिवादी और बुद्धिजीवी के ऊपर हृदय की विजय की कल्पना है।

प्रो० इन्दुशेखर के नाट्यरूपक 'जीवन' में आनन्द और विश्वास का वास्तविक संबंध क्या है, आनन्द को विश्वास की विशेष आवश्यकता है या नहीं; कला, आशा, सन्तोष के सम्बन्ध क्या हैं, ऐसे अनेक दार्शनिक प्रश्नों की मीमांसा की गई है।

डा० रामकुमार वर्मा के नवीनतम पौराणिक नाटक 'भरत का भाग्य' (१९५२ ई०) में भरत के चरित्र की निस्पृहता, वैराग्य, भ्रातृस्नेह तथा श्रद्धा पर प्रकाश डाला गया है। कुछ भाव देखिये—'यदि स्वर्ग का राज्य

भी मेरे अधिकार की परिधि से बाहर है तो वह भी मेरे लिए नरक के समान कष्टदायक है' 'मेरी श्रद्धा जिनके चरणों में है, उन्हें संसार मुझसे दूर हटाता है। यह संसार जीवन की अनुभूतियों को असम दर्पण से देखता है' 'मेरे प्रभु! तुम्हारे वियोग के क्षण मुझे शत्रुओं के बाणों की भाति लगते हैं। तुम्हारे हाथ कब उन बाणों को मेरे शरीर से दूर करेंगे?"—भरत के इस निष्कपट, निश्छल प्रेम, सत्य और न्याय के पथ से वस्तुवादी ससार की विषमता दूर हो सकती है।

प्रो० बृहस्पति का संपूर्ण एकांकी-साहित्य पौराणिक पुनरुत्थान से सम्बद्ध है। आपका 'सागर-मथन' उस घटना से सम्बद्ध है जब देवों तथा असुरों में युद्ध चलता था। देवताओं की ही पराजय होती थी; कारण, राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य की विद्या से राक्षस पुनः जीवित हो उठते थे। समस्या यह थी कि शुक्राचार्य-से संजीवनी विद्या मिले। देवताओं के गुरु बृहस्पति अपने पुत्र कच को उनके समीप भेजते हैं। कच गुरु के पास जाता है, गुरु की पुत्री देवयानी उससे प्रेम करने लगती है; पर कर्त्तव्य से बंधा हुआ कच गुरु-कन्या से विवाह नहीं करता। वह देवयानी से शापित होकर लौटता है। भगवान ब्रह्मा की सम्मति से देवताओं ने समुद्र को मथकर अमृत प्राप्त करने का आयोजन किया। इस एकांकी में शुक्राचार्य से कच के द्वारा सजीवनी प्राप्त किये जाने का कारण कल्पित है और पुराण-वर्णित स्थिति से सर्वथा भिन्न है। शुक्र को महाकवि कहा गया है। कच के काव्य से प्रभावित होकर नीतिज्ञ शुक्राचार्य कुछ क्षणों के लिए सहृदय बन जाते हैं, और कच को अभीप्सित वर का वचन दे देते हैं, और इस प्रकार इस रूपक के कच को शुक्राचार्य से संजीवनी सीखने का अवसर अकस्मात् और अनायास रूप में मिल जाता है।

'विश्वामित्र' में वशिष्ठ से बदला लेने के लिए क्रोधी विश्वामित्र की तपस्या, भग करने के लिए इन्द्र का मेनका को भेजना, शकुन्तला का जन्म, त्रिशंकु का यज्ञ और विश्वामित्र की उसमें सहायता, अन्त में गुण-कर्म के अनुसार फलसिद्धि का मर्म प्रकट होना चित्रित है।

'महापण्डित' में सस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध महाकवि माघ का चरित्र गौरव प्रकट किया गया है। यह वैदिक धर्म के उत्कर्ष का चित्र है। बौद्धों

तथा 'आत्मा की खोज' (१९५०) दार्शनिक विवेचना प्रस्तुत करते हैं। बुद्धितत्त्व की प्रधानता होने के कारण इन नाटकों में जनरुचि-रंजन के तत्त्व कम हैं। सरदार मोहनसिंह का 'नई गीता' (१९२४) उपास्य तथा उपासक की अभिन्नता प्रेम और ज्ञान की एकता का प्रतिपादन करता है। मध्य में वर्त्तमान परिस्थितियों पर भी मार्मिक टिप्पणियां हैं। 'खुदा और शैतान' (१९२४) में पाप और धर्म, सत्य और असत्य, खुदा और शैतान का दार्शनिक निरूपण है। स्वामी सत्यभक्त का 'ईश्वर की उत्पत्ति' (१९३३); श्री सरनामसिंह शर्मा अरुण का 'क्रोध-विजय' उत्कृष्ट कोटि के आध्यात्मिक नाटक हैं।

डा० सरनामसिंह शर्मा का 'क्रोध-विजय' विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें क्रोध और क्षमा पात्र हैं तथा धर्मराज के सामने अपना अभियोग ले जाते हैं; तर्क-वितर्क चलता है और अन्त में न्यायाधीश क्रोधित हो उठते हैं। अन्त में क्रोध अपनी विजय उद्घोषित करता है।

डा० रामकुमार वर्मा के 'अन्धकार' और 'उत्सर्ग' आध्यात्मिक नाटक हैं। 'अन्धकार' में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेम आवश्यक है, वह बिना वासना के नहीं हो सकता; उसे अनुशासित करने का परिणाम कभी शुभ नहीं, यह अन्धकार रहेगा ही। इससे यह भी स्पष्ट है कि 'धर्म जीवन के लिए विष है, धर्म से मनुष्य का जीवन अन्धकार से भर उठता है; धर्म और प्रेम में विरोध है।' 'उत्सर्ग' में बुद्धिवादी और बुद्धिजीवी के ऊपर हृदय की विजय की कल्पना है।

प्रो० इन्दुशेखर के नाट्यरूपक 'जीवन' में आनन्द और विश्वास का वास्तविक संबंध क्या है, आनन्द को विश्वास की विशेष आवश्यकता है या नहीं; कला, आशा, सन्तोष के सम्बन्ध क्या हैं, ऐसे अनेक दार्शनिक प्रश्नों की मीमांसा की गई है।

डा० रामकुमार वर्मा के नवीनतम पौराणिक नाटक 'भरत का भाग्य' (१९५२ ई०) में भरत के चरित्र की निस्पृहता, वैराग्य, भ्रातृस्नेह तथा श्रद्धा पर प्रकाश डाला गया है। कल्ल भाव देखिये—'शक्ति [illegible]

भी मेरे अधिकार की परिधि-से बाहर है तो वह भी मेरे लिए नरक के समान कष्टदायक है' 'मेरी श्रद्धा जिनके चरणों में है, उन्हें संसार मुझसे दूर हटाता है। यह संसार जीवन की अनुभूतियों को असम दर्पण से देखता है' 'मेरे प्रभु ! तुम्हारे वियोग के क्षण मुझे शत्रुओं के बाणों की भांति लगते हैं। तुम्हारे हाथ कब उन बाणों को मेरे शरीर से दूर करेंगे ?''—भरत के इस निष्कपट, निश्छल प्रेम, सत्य और न्याय के पथ से वस्तुवादी ससार की विषमता दूर हो सकती है।

प्रो० बृहस्पति का संपूर्ण एकांकी-साहित्य पौराणिक पुनरुत्थान से सम्बद्ध है। आपका 'सागर-मथन' उस घटना से सम्बद्ध है जब देवों तथा असुरों में युद्ध चलता था। देवताओं की ही पराजय होती थी; कारण, राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य की विद्या से राक्षस पुनः जीवित हो उठते थे। समस्या यह थी कि शुक्राचार्य-से संजीवनी विद्या मिले। देवताओं के गुरु बृहस्पति अपने पुत्र कच को उनके समीप भेजते हैं। कच गुरु के पास जाता है, गुरु की पुत्री देवयानी उससे प्रेम करने लगती है; पर कर्त्तव्य से बंधा हुआ कच गुरु-कन्या से विवाह नहीं करता। वह देवयानी से शापित होकर लौटता है। भगवान ब्रह्मा की सम्मति से देवताओं ने समुद्र को मथकर अमृत प्राप्त करने का आयोजन किया। इस एकांकी में शुक्राचार्य से कच के द्वारा सजीवनी प्राप्त किये जाने का कारण कल्पित है और पुराण-वर्णित स्थिति से सर्वथा भिन्न है। शुक्र को महाकवि कहा गया है। कच के काव्य से प्रभावित होकर नीतिज्ञ शुक्राचार्य कुछ क्षणों के लिए सहृदय बन जाते हैं, और कच को अभीप्सित वर का वचन दे देते हैं, और इस प्रकार इस रूपक के कच को शुक्राचार्य से सजीवनी सीखने का अवसर अकस्मात् और अनायास रूप में मिल जाता है।

'विश्वामित्र' में वशिष्ठ से बदला लेने के लिए क्रोधी विश्वामित्र की तपस्या, भंग करने के लिए इन्द्र का मेनका को भेजना, शकुन्तला का जन्म, त्रिशंकु का यज्ञ और विश्वामित्र की उसमें सहायता, अन्त में गुण-कर्म के अनुसार फलसिद्धि का मर्म प्रकट होना चित्रित है।

'महापण्डित' में सस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध महाकवि माघ का चरित्र गौरव प्रकट किया गया है। यह वैदिक धर्म के उत्कर्ष का चित्र है। बौद्धों

का प्रभाव उनकी अराष्ट्रीयता के कारण नष्ट हो चुका था। भास निरन्तर काव्य-रचना में संलग्न रहे। अन्त में उनके द्वार से भर्ती होकर लौटते और छात्र विद्वान होकर देश देशान्तर में फैलते गए। महाकवि इन भाव का यश दिग्दिगन्त में फैल गया। इसमें किंवदन्तियों का आश्रय लिया गया है और कुंडल-वाली मुख्य घटना की भी कल्पना की गई है। भोज, माघ एवं भाव पन्नों के अतिरिक्त इसके अवशिष्ट सब पात्र कल्पित हैं।

'मेघ का कवि' में महाकवि कालिदास के कवि-जीवन की कल्पित कहानी भी है। उन दिनों कवि ने अपने नवप्रणीत नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में महाराज अग्निमित्र एवं उनकी नई महारानी मालविका की प्रणयलीला का चित्रण किया गया था। उस दिन इस नाटक का सफल अभिनय भी हुआ था। इसी नाटक के सम्बन्ध में एक विवाद उपस्थित होता है, जिसमें कालिदास की पत्नी विद्योत्तमा मध्यस्थ बनती हैं। उनके निष्पक्ष निर्णय से महाकवि कालिदास प्रभावित हुए और उनके स्वभाव में विचित्र परिवर्तन आ गया। उनके शरीर में कुष्ठ रोग प्रकट हो गया; वह 'कुमारसम्भव' में वर्णित महादेव की शृंगार-लीलाओं के दण्डस्वरूप था। कालिदास के अन्य महाकाव्यों का निर्माण किस प्रकार हुआ—यह चित्रित करते हुए एकांकी तत्संबंधी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हमारे सामने लाता है। मेघ के कवि कालिदास ने संस्कृत में दूत-काव्य शैली का प्रवर्तन किया।

'स्वर्ग में क्रांति' में ब्रह्मलोक में निर्वाचन के रोग को फैलते हुए दिखाया गया है। स्वर्ग में लोगों को यह आपत्ति है कि ब्रह्मा का कार्यालय क्यों नहीं समाप्त होता, निर्वाचन होना चाहिए। पुराने वातावरण में नए विचार रख कर हास्य की सृष्टि की गई है। 'अतीत' में उस समय का चित्र है जब आचार्य कुमारिल भट्ट ने मीमांसा शास्त्र का प्रवर्तन करके नास्तिकों के दांत खट्टे कर दिए थे और देश-देशांतरों से अनेक विद्यार्थी आकर ज्ञानामृत लाभ करते थे, उस अतीत के गुरुकुलों के अनुशासनपूर्ण जीवन की एक झलक दी गई है। ये सभी एकांकी आदर्शवाद की विवेचना करते हैं।

डा० रामकुमार वर्मा—

आधुनिक हिन्दी एकांकी-साहित्य में युगान्तर करने वाले नाट्यकारों में डा० रामकुमार वर्मा प्रमुख हैं। इनके, पाश्चात्य टेकनीक तथा विचारों से प्रभावित, नये ढग के एकांकियों द्वारा हिन्दी में नये युग का प्रारम्भ होता है। डा० वर्मा के अनेक सामाजिक, समस्या-प्रधान, पौराणिक, मौतिक हास्य-व्यंग्यमय तथा भावात्मक एकांकी प्रस्तुत करके नाट्यक्षेत्र में विविधता का सचार किया है। किन्तु ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में इनकी प्रतिभा सबसे अधिक प्रकाशित हुई है। ऐतिहासिक नाट्यकारों में ये सबसे बड़े टेक-नाशियन हैं।

इनके बारह ऐतिहासिक नाटक प्रकाशित हो चुके हैं:—'शिवाजी', 'समुद्रगुप्त', 'विक्रमादित्य', 'चारुमित्रा', 'पृथ्वीराज की आंखें', 'औरंगजेब की आखिरी रात', 'कौमुदी महोत्सव', 'तैमूर की हार', 'प्रतिशोध', 'ध्रुवतारिका' 'कलक रेखा', और 'स्वर्णश्री'।

उन्होंने प्राचीन ऐतिहासिक घटनायें लेकर ऐतिहासिक पात्रों में नवजीवन तथा उसी आवेगमय स्फूर्ति का संचार किया है। जो उनके काल में रही होगी। उन्होंने न केवल अपने ऐतिहासिक पात्रों को प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक अनुसंधानों के अनुसार ही प्रस्तुत कर उनके सही व्यक्तित्व की रक्षा की है, प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति, दृष्टि-कोण और परिस्थिति को स्पष्ट और पूरे तर्क से अपनी बात कहने का अवसर प्रदान किया है, तथा तत्कालीन ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक पृष्ठ-भूमि में पात्रों के भावों के अनुसार कथोपककथन, भाषा तथा शिष्टाचार स्थिर किया है। अपने पात्रों और ऐतिहासिक परिस्थिति की प्रामाणिकता में रामकुमार वर्मा अंग्रेजी के सर वाल्टर स्कॉट के समकक्ष आ खड़े होते हैं। इनमें इतिहास हँसता है, खेलता है, दण्ड देता है तथा अपना जीवन एक बार पुनः जीता है। "इनमें उन्होंने ऐसे आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है, जो जीवन की व्यवहारिकता से ओत-प्रोत होकर नैतिक दृष्टि से जनता के लिये कल्याणकारी है। सांस्कृतिक

दृष्टिकोण से वे अपने क्षेत्र में 'प्रसाद' और प्रेमचन्द के समकक्ष रखे जा सकते हैं, क्योंकि उन्होंने भारतीय इतिहास के चरित्रों का विश्लेषण कर उनमें ऐसी प्राण-प्रतिष्ठा की है जो ऐतिहासिक सत्य से ओत-प्रोत होते हुए भी जीवन के स्पन्दन से सजीव है।

ऐतिहासिक एकांकियों का निर्माण-क्रम एवं विशेषताएँ—

इनके ऐतिहासिक नाटकों का निर्माण किस क्रम से, किस व्यवस्था के अनुसार होता है? सर्वप्रथम ये भारतीय इतिहास से किसी हृदयस्पर्शी घटना को चुनते हैं। यह घटना प्रायः ऐसी होती है, जो हमारे जीवन से दूर न रहे, प्रत्युत ऐतिहासिक होते हुए भी मानव तथा समाज की स्वाभाविकता में प्रविष्ट होकर गति, प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान कर सके।

द्वितीय तत्त्व, तत्कालीन परिस्थिति, देश, समाज और संस्कृति की पृष्ठ-भूमि का ऐतिहासिक अध्ययन है। डा० वर्मा का यह अध्ययन बड़ा पूर्ण होता है, तथा इनके लिए प्रामाणिक ग्रन्थों की सहायता ली जाती है। 'कौमुदी महोत्सव' में नाटकार का आदर्श चन्द्रगुप्त और चाणक्य का चरित्र-चित्रण है। इसके सम्बन्ध में जितनी खोज हुई है तथा इतिहास के विद्वानों ने जो लिखा है, या नाटककारों से जैसा चित्रित किया है, उस सभी सामग्री का अध्ययन कर लिया गया है। डा० वेनीप्रसाद, डा० ताराचन्द, 'प्रसाद', द्विजेन्द्रलाल राय आदि के दृष्टिकोणों का अध्ययन करने के बाद डा० वर्मा ने स्वयं अपने मत का प्रतिपादन 'कौमुदी महोत्सव' में किया है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य के चरित्र बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रन्थों, मेगस्थनीज़ और तत्कालीन इतिहास से सम्बन्धित समस्त ग्रन्थों के अनुशीलन पर खड़े किये गये हैं। नाटककारों की दृष्टि इन चरित्रों पर ही नहीं, प्रत्युत तत्कालीन वातावरण पर भी है। इसका कथानक 'मुद्रा-राक्षस' की कथा वस्तु के अनुसार है, पाटलिपुत्र का भौगोलिक ज्ञान मेगस्थनीज तथा 'भारत की प्राचीन सभ्यता' से लिया गया है, और सजावट आदि का वर्णन कल्पना के बल पर है। चन्द्रगुप्त के इतिहास से उसका जो व्यक्तित्व मिला है, उसे मनोवैज्ञानिक ढंग से सुसज्जित किया गया है। चन्द्रगुप्त द्वारा प्रयुक्त उपमाएँ भी वीर रस से पूर्ण हैं। उसकी बातचीत

राजसी प्रवृत्ति का प्रतीक है। नाटक की पृष्ठ-भूमि के छोटे-छोटे संकेत भी ऐतिहासिक बल पर खड़े किये गये हैं।

डा० वर्मा की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि बड़ी सच्ची रहती है। 'चारुमित्रा' में अशोक-युग की संस्कृति का चित्रण है, तो 'औरंगजेब की आखिरी रात' में मुगल-काल को मूर्तिमान कर दिया गया है। राजमहल का चित्रण, सुराहियाँ, हकीम, शमा की रोशनी, शहंशाह के समीप आने, बोलने बैठने के राजसी ढंग, पोशाकें, भाषा इत्यादि सब मुगल-काल के सांस्कृतिक चित्र प्रस्तुत करने में सहायता करते हैं। इसी प्रकार 'ध्रुवतारिका' १६७६ ई० की मारवाड़ की संस्कृति उपस्थित करता है। शाहजादा अकबर की पुत्री सफीयतउन्निसा राठौर वीर दुर्गादास के संरक्षण तथा राजपूत संस्कृति में रहते-रहते हिन्दुत्व के गुणों से परिपूरित चित्रित की गयी है। इसी प्रकार 'तैमूर की हार' में नैतिक धरातल पर एक लड़के के द्वारा तैमूर को पराजित दिखाया गया है। लेकिन तैमूर के साथ जुड़ा रहने वाला तूफान और उसकी खूँरेजी प्रामाणिक हैं। 'कलंक-रेखा' में राजपूती जीवन की जीती जागती तस्वीर है।

तृतीय, तत्त्व, उस चुनी हुई ऐतिहासिक घटना या अन्तिम प्रभाव (Final Impression) के उपयुक्त परिस्थित (Set-up) का चुनाव है। परिस्थिति को चुनने में डा० वर्मा इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि संकलन-त्रय (Three Unities) का पूर्ण निर्वाह रहे। सभी बड़े नाटकों की कथा-वस्तु को आप इस सफलता से सजाते हैं कि घटनाएँ केन्द्रित होकर [illegible] दृश्य में सिमट आती हैं। 'दुर्गादास', 'कृष्णा का बलिदान', 'अशोक' या 'चन्द्रगुप्त' इन सभी की बड़ी-बड़ी घटनाओं को ऐसा गुम्फित किया गया है कि स्थान, काल तथा कथानक का कोई भी संकलन टूट नहीं पाता है।

घटना का विस्तार उसकी पूर्व-निश्चित सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि को सामने रखकर किया जाता है। इस कार्य में भावुकता का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है। [illegible] की संघटनाएँ प्रायः घटना का विस्तार निर्धारित करती हैं। [illegible] पात्रों की सृष्टि कर ली जाती है, जिनके द्वारा प्रमुख पात्र [illegible] मानसिक विशेषताओं और आवेगों का स्पष्टीकरण हो सके।

डा० वर्मा इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि पात्र तथा घटनाओं का चित्रण परिस्थिति के अनुसार सत्य हो।

पात्रों का नियोजन घटनाओं के प्रवाह में होता है। प्रमुख पात्र का मनोविज्ञान ही इसमें सबसे महत्वपूर्ण है। वर्माजी ने जो महान् ऐतिहासिक व्यक्ति अशोक, चन्द्रगुप्त, राठौर, दुर्गादास, शिवाजी, समुद्रगुप्त, तैमूर या औरंगजेब चित्रित किये हैं, उनके साथ सम्बद्ध छोटी-बड़ी घटनायें अथवा विभिन्न नाटकीय परिस्थितियां भले ही काल्पनिक हों, इनमें प्रमुख पात्र की चरित्र-गत विशेषताएं या दुर्बलताएं सदैव ऐतिहासिक सत्यता लिए होती हैं। किसी भी प्रामाणिक इतिहास में हमें वे गुण मिल जाएँगे, जो वर्माजी के औरंगजेब, तैमूर, अशोक या शिवाजी में चित्रित किये गये हैं।

ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता लाने के लिये ये प्रायः एक सूची उन सम्भावनाओं की बनाते हैं जो उन पात्रों से, सामाजिक, राजनैतिक या सांस्कृतिक क्षेत्रों में हो सकती हैं। कोई पात्र किस गुण के कारण उस दिशा में वहाँ तक जा सकता है? उसकी चारित्रिक विशेषतायें या दुर्गुण देखते हुए उससे क्या-क्या आशायें की जा सकती हैं? उसके स्वभाव में किस-किस दुर्गुण या गुण से किन-किन स्वाभाविक उच्चताओं या दुर्बलताओं की आशा की जा सकती है?—ऐसी सभी सम्भावनाओं की सूची तैयार कर ली जाती है। इन गुणों को 'सक्रिय' बनाने के निमित्त गौण चरित्रों की आवश्यकता होती है, जो प्रमुख पात्रों की विशेषताओं अथवा दुर्बलताओं को उभार देते हैं। ये गौण पात्र अपनी पृथक विशेषताएँ रखते हैं। उदाहरणार्थ 'स्वर्णश्री' में देवला, नामदत्त और बृहद्रथ पुष्यमित्र के चरित्र को उभारते हैं। 'औरंगजेब की आखिरी रात' में स्वयं औरंगजेब के व्यक्तित्व के दो भाग हो जाते हैं—औरंगजेब, एक मनुष्य के रूप में; औरंगजेब, एक शाहंशाह। इन दोनों व्यक्तियों में पारस्परिक द्वन्द्व तथा संघर्ष चलता रहता है और औरंगजेब मनुष्य के रूप में अपने आप को उभारता है, स्वयं अपने पूर्व कृत्यों पर विक्षोभ के अश्रु बहाता है। गौण पात्र और भी कार्य करते हैं। यह है, ऐतिहासिक घटनाओं के रिक्त अंशों को सांस्कृतिक अध्ययन के सहारे पूर्ण करना, शृंखला की कड़ियों को जोड़ते चलना। ये छोटी-छोटी बातें (Details) स्था-

मनोरंजन का कारण बनती हैं, स्वाभाविकता की रक्षा करती हैं और कार्य-व्यापार की शृंखला को सुविबद्ध बनाती हैं।

इनके नाटकों की मूल चेतना ऐतिहासिक तथ्यों की अनुवर्तिनी रहती है। ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से 'तैमूर की हार' 'औरंगजेब की आखिरी रात' सफल रचनायें हैं। औरंगजेब मरते समय जो पत्र अपने पुत्रों को लिखता है, वे ऐतिहासिक सत्यता रखते हैं। अपने नाटकों को ऐतिहासिक कसौटी पर खरा उतारने के लिए नाट्यकार ने कुशलता से ऐसी नाटकीय स्थितियों का निर्माण किया है कि पात्रों के इतिहास-प्रसिद्ध गुण उभर कर स्पष्ट हो सकें। 'तैमूर की हार' में ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि बिलकुल यथार्थ है। इसकी सामग्री लेनपूल के इतिहास से ली गई है।

आदर्शवाद की प्रतिष्ठा—जिस प्रवृत्ति का चित्रण इन ग्यारह ऐतिहासिक नाटकों में सामान्य रूप से मिलता है, वह नैतिक आदर्शवाद है। प्रायः सभी में मध्ययुगीन इतिहास को पृष्ठ-भूमि के रूप में चुना गया है। दो-तीन में मुगल-काल का अध्ययन है। हिन्दू-युग से सम्बन्धित 'समुद्रगुप्त', 'विक्रमादित्य', 'कौमुदी-महोत्सव', 'ध्रुवतारिका', आदि नाटकों में भारतीय चरित्र की उच्चता, पवित्रता, सत्यनिष्ठा तथा प्राचीन सांस्कृतिक गौरव का चित्रण है। वर्माजी ने हिन्दू-सम्राटों को भारतीय चरित्र का प्रतीक Symbol माना है। इनमें शौर्य, देश-भक्ति, स्वाभिमान, स्वातंत्र्य-प्रेम आदि गुणों का चित्रण किया गया है।

'शिवाजी' में शिवाजी की नैतिक दृढ़ता, शौर्य, वैयक्तिक चरित्र की निर्मलता, वीरता, मरहठों का सांस्कृतिक गौरव, मातृ-भक्ति, स्वदेशानुराग, शत्रु पक्ष की स्त्री के साथ सभ्य व्यवहार इत्यादि चित्रित किए गये हैं। शिवाजी युवा होते हुए भी सौंदर्य की प्रतिमा गौहर बानू पर वासना-पूर्ण दृष्टि नहीं डालते, वरन् उन्हें उसके सौन्दर्य में अपनी माँ जीजाबाई का मुख दीख पड़ता है। अपनी माँ की पवित्रता का दर्शन करने वाला वह वीर गौहर के बोलने में जीजाबाई का आशीर्वाद सुनता है। वह माँ के रूप में उसे प्रणाम करता है। अपनी सरकार तथा नौकरों के कसूर के लिए स्वयं को

जिम्मेदार समझता है। आभा जी समझते थे कि सुन्दरी गौहर पर शिवाजी आसक्त हो जायंगे। आभाजी का शिवाजी को यह उत्तर देखिये, भारतीय-संस्कृति का कितना जीता-जागता चित्र है:—

'आभा जी, तुम जानते हो कि सेना के आक्रमण में मेरा आदेश है कि शत्रुओं के देश की स्त्रियों का किसी तरह भी अपमान नहीं होना चाहिये। उन्हें माँ- बहिनों के समान आदरणीय और पूज्य समझ कर उनकी इज्जत करनी चाहिए। बच्चों का भी उनके माता-पिता से जुदा मत करो, गाय मत पकड़ो और ब्राह्मणों के ऊपर अत्याचार मत करो—कुरान की उतनी ही इज्जत करो जितनी भवानी की या समर्थ गुरु रामदास की वाणी की। मसजिद का दरवाजा उतना ही पवित्र है, जितना तुम्हारे मन्दिर का कलश। शिवा को इस्लाम-धर्म उतना ही पूज्य है, जितना हिन्दू धर्म। जमीन पर गिरा हुआ कुरान का एक-एक पन्ना शिवा ने अपनी तलवार से उठाकर मौलवियों के सिर पर रक्खा है। मेरे लिये धर्म के ख्याल से हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं......

'मेरे सेनापति होकर तुमने मेरे सिद्धान्तों के विरुद्ध क्यों ऐसा किया? क्या तुमने मुझे सदाचार की कसौटी पर कसना चाहा था या मेरी परीक्षा ली या अपने स्वार्थ-साधन का रास्ता तैयार करना चाहा? तुमने समझा होगा कि गौहरबानू के सौन्दर्य के सामने शिवाजी का सिद्धान्त पानी हो जाएगा, किंतु भवानी का भक्त शिवाजी भवानी का भक्त होने की योग्यता भी रखता है। जीजाबाई का पुत्र शिवाजी शत्रु की स्त्री में भी जीजाबाई की तसवीर देखता है।"

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से पहिले पूर्व की दिशा में लालिमा फैल जाती है, उसी प्रकार शिवाजी के मंच पर अवतरित होने से पहिले उसके गौरव की भूमिका में ही हमें उसके चरित्र का भव्य प्रकाश दिखाई देने लगता है। कथानक का निर्माण इस ढंग से किया गया है कि वह भारतीय संस्कृति के अनुकूल रहे। लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक संस्कृति, वेश-भूषा आदि का यथातथ्य चित्रण किया है।

'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' ४२० विक्रम सम्वत् के भारतीय इतिहास की पृष्ठ-भूमि पर महाराज समुद्रगुप्त की न्याय-प्रियता और अनुपम प्रतिभा की झाँकी प्रस्तुत करता है। अपनी बुद्धिमत्ता एवं गान-विद्या के प्रयोग से समुद्रगुप्त अपराधी को खोज निकालते हैं। महाराज का गान-विद्या के प्रति अगाध प्रेम भारतीय परम्परा में संगीत के प्रति आदर का प्रतीक है। यह दुःखान्त जीवन की कल्याणमयी संवेदना की भूमिका है। समुद्रगुप्त न्याय का समर्थक है और उस न्याय की प्रतिष्ठा में वह मरण को भी पर्व मानता है। समुद्रगुप्त में राजनैतिक अन्तरदृष्टि के साथ ही साथ कलात्मकता अपनी चरम सीमा तक पहुंचती है। इसलिए उसका दृष्टिकोण साधारण जन के दृष्टिकोण से भिन्न है।

'विक्रमादित्य' सन् ५७ ई० पूर्व की उज्जयिनी की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर विचरित है। इसमें सम्राट विक्रमादित्य के न्याय, तर्क, तीव्र बुद्धि, अन्तर्दृष्टि, मनोविज्ञान, आर्य धर्म के प्रति श्रद्धा, गो-ब्राह्मण-प्रतिपालन तथा उदात्त चरित्रबल स्पष्ट किया गया है। पुष्प का एक आदर्श कर्त्तव्यशीला भारतीय नारी के रूप में चित्रित की गई हैं। आदर्श आचरण के कारण उसका अपराध क्षमा किया जाता है। प्राचीन गौरवमय इतिहास का यह भव्य चित्र वर्तमान समाज की अनैतिकता, छल-छद्म, मायाचार, असत्य और पतन के साथ वैषम्य दिखाने के लिये प्रस्तुत किया गया है।

विक्रमादित्य के सांस्कृतिक ऐश्वर्य पर यह एक छोटी-सी समीक्षा है, जो इतिहास में सुविदित घटनाओं पर आधारित है। कथानक का निर्माण ही कुतूहल में हुआ है। अन्तर्दृष्टि हमारे प्राचीन शासकों का विशेष गुण था।

'नागमित्रा' में नाट्यकार का प्रमुख लक्ष्य स्वामिभक्ति तथा बलिदान के आदर्श उपस्थित करना है। स्त्री पात्रों में दया, सहानुभूति, करुणा, तथा अशोक में रौद्र, वीर तथा क्षोभ के भावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। इतिहास का उतना ही अंश यहां प्रदर्शित किया गया है, जितना अशोक के आदर्शवादी व्यक्तित्व तक पहुंचने के लिए सहायक था। अशोक के मानसिक परिवर्तन की भूमिका काफी लम्बी है। इस परिवर्तन का मनोविज्ञान धीरे-धीरे निम्न घटनाओं के रूप में विकसित हुआ है—१. निरीह शिशु की हत्या, २. तिष्यरक्षिता

का शांति के लिए बार-बार आग्रह, ३. शिशु की माता की मृत्यु, ४. चारुमित्रा की अपूर्व देशभक्ति और स्वामि-भक्ति। तीन प्रहारों से ठोकी गई कील अन्तिम और जबरदस्त प्रहार से अपने स्थान पर ठीक बैठ जाती है।

'कौमुदी महोत्सव' की रचना सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य तथा चाणक्य के व्यक्तित्वों का चित्रण करने के लिए हुई है। इस नाटक की सबसे बड़ी सुन्दरता चन्द्रगुप्त का चरित्र ही है, जो एक वीर, साहसी मर्यादा-प्रिय और धीरोदात्त नायक है। भारतीय इतिहास में सम्राट् चन्द्रगुप्त का जो व्यक्तित्व उपलब्ध है, उसे मनोविज्ञान की पृष्ठि-भूमि पर चित्रित किया गया है। राष्ट्रीयता के उन्मेष की दृष्टि से यह नाटक लेखक की सब से गम्भीर और सुष्ठु रचना है, इसमें काव्य का आनन्द भी आता है। उदाहरणार्थ अलका द्वारा गाया हुआ गीत—

आज मधुमय कुसुमों के द्वार-द्वार पर है अलि का गुञ्जन!

ध्रुवतारिका' में त्याग, राष्ट्र-धर्म तथा भाई-बहिन के प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। भारतीय गौरव के लिए राजस्थान की रक्षा के निमित्त एक मुसलमान कुमारी भी बड़े से बड़े बलिदान के लिए तैयार हो जाती है। मारवाड़ के यशस्वी सेनापति राठौर दुर्गादास राजपूती गौरव, राजपूत रक्त की पवित्रता, और भारत की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अजीतसिह से संघर्ष करते हैं। उधर अजीतसिंह शाहजादा अकबर की पुत्री सफ़ीयत-उन्निसा से प्रेम करता है, प्रेम को अपनी व्यक्तिगत रुचि का प्रश्न समझता है। वह दुर्गादास को द्वन्द्व-युद्ध का निमन्त्रण देता है और उन्हें अपने राज्य से निर्वासित कर देता है। इस पर दुर्गादास का उत्तर बड़ा तर्कपूर्ण और भारतीय मर्यादा के अनुकूल है:—

'मैं नहीं, राज्य-परिषद् तुम्हें निर्वासित करेगी, राजकुमार! मारवाड़-भूमि के रजकणों से निर्मित राज्य-वंश के खिलौने! तुम्हें इस राज्य-वंश की मर्यादा का इतना भी ध्यान न आया कि तुम इस प्रसंग पर मौन रह जाते? क्या तुम्हारे लिये वीर राजपूतों का जो रक्त बहा है, वह बालकों की क्रीड़ा थी? आज फिर राजस्थान में पारस्परिक विद्रोह की ज्वाला धधके, जिसमें सारी मर्यादा और समस्त गौरव फिर भस्म हो जाय!'

१९३० से १९३६ तक की रचनाओं में 'कुमार' का कवि निज आत्माभिव्यक्ति करने को प्रस्तुत है। "कवि रामकुमार ने 'निशीथ' (१९३१) से 'रूपराशि' होते हुए 'चित्ररेखा' (१९३५) तथा 'चन्द्रकिरण' (१९३७) तक की लीक पर चलकर यात्रा की है।" ÷ इस मनः स्थिति का प्रभाव 'बादल की मृत्यु' एकांकी पर है। "इसमें काव्य का अन्श अभिनय-तत्त्व की अपेक्षा अधिक है। कुछ आलोचकों का विचार है कि 'बादल की मृत्यु' नाटक के रूप में कविता ही है।"※ इसमें बादल के मनोवेगों को सुन्दरता से अंकित किया गया है। इसका बाह्य रूप नाटक सा है, यद्यपि काव्य का प्रभाव अधिक है।

प्राचीनकाल में जो भावात्मक मानवीकरण के रूप हैं, उन्हीं के अन्तर्गत यह हिन्दी-साहित्य में प्रथम साहित्यिक प्रयोग था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी 'भारत दुर्दशा' में मनुष्य के विविध भावों का मानवीयकरण किया है। डा० वर्मा ने उसी शैली में मनोवैज्ञान और संघर्ष को जोड़ कर मानव-जीवन के महान् सत्यं को अत्यन्त संक्षिप्त पर ज्वलत्व रूप में उपस्थित किया है। अपने ढग का यह सर्वप्रथम मौलिक एकांकी है—अपने रूप में अत्यन्त संक्षिप्त, परन्तु सन्देश में महान्! इतना संक्षिप्त और सम्पूर्ण एकांकी हिन्दी में किसी नाट्यकार की लेखनी से प्रसूत नहीं हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी इसका विशेष महत्त्व है।

वर्माजी के परीक्षा, अठारह जुलाई की शाम, एक तोले अफीम, उत्सर्ग आदि सामाजिक एकांकी स्त्री-मनोवैज्ञान से सम्बन्धित हैं। 'परीक्षा' में उनका परीक्षा-केन्द्र एक ऐसी स्त्री का हृदय है, जो २० वर्ष की ग्रेजुएट होते हुए भी ५० वर्ष के एक प्रोफेसर से विवाह करती है। इसमें आपने यह चित्रित किया है कि प्रेम के लिए आयु का अन्तर यथार्थ अन्तर नहीं; ऊँचे धरातल के द्वारा स्त्री की मनःस्थिति का सच्चा चित्र यहाँ है। '१८ जुलाई की शाम' में

÷ डा० नगेन्द्र।

※ प्रोफेसर प्रकाशचन्द्र गुप्त—"हिन्दी एकांकी विशेषांक" —[illegible]

अपने पति का यथार्थ महत्व और चरित्र स्पष्ट किया है। यह परिवर्तन का अध्ययन है। 'एक तोले अफीम' में दो प्रेमियों के सच्चे प्रेम की कहानी है। संयोग से दोनों व्यक्ति मिल जाते हैं। इन नाटकों में वर्माजी ने जीवन के स्वाभाविक गति-प्रवाह को बल देकर आदर्शवाद की ओर झुकाया है। रत्ना, उषा, विश्वमोहिनी इत्यादि इन नाटकों के पात्र अपने चरित्रों में सजीव आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

"चम्पक" में एकांकीकार की कला परिष्कार के पथ पर है। इसमें कवि की सहृदयता का नहीं, कवि के चरित्र का चित्रण किया गया है। कवि किशोर (या 'कुमार' ?) का आदर्श उपेक्षित तथा दुःखियों की सहायता करना है। चम्पक नामक कुत्ते को घायल देखकर वह उठा लाया है और धीरे-धीरे उसे अपनी सुश्रूषा से स्वस्थ कर लिया है। परिस्थितिवश वह उसे बेच देता है, किंतु मोह में दुखी रहता है। संयोगवश उसके द्वार पर वही भिखारी आता है, जिसने उसे चोट पहुँचाई है। कारण यह था कुत्ते का मालिक कुत्ते की बहुत खातिर करता था, जब कि उसका पड़ौसी यह भिखारी भूखों मरता था। वह अपनी ईर्ष्या के कारण पश्चाताप की अग्नि में जलता है। कवि किशोर अपराधी के प्रति उदार है। वह उस भिखारी की सेवा भी करता है। प्रायश्चित्, अपराध और ममता का बड़ा सजीव चित्रण वर्माजी ने इस सामाजिक नाटक में प्रस्तुत किया है।

समालोचक गण यदि इस नाटक को 'बिशप्स कैन्डिलस्टिक्स' से मिला कर पढ़ें, तो ज्ञात होगा कि अंग्रेजी नाटक केवल धार्मिक क्षमाशीलता के आधार पर खड़ा किया गया है। 'चम्पक' में समस्त मानव जीवन की करुणा और सद्भावना ने मनुष्यता को एक ज्योति प्रदान करने की चेष्टा की है।

"एक्ट्रेस" हिन्दू विवाहित जीवन का ऐक अध्ययन है। प्रभातकुमारी का पति उसे नापसन्द कर त्याग देता है। हिन्दू परिवारों में त्यागी हुई पत्नियों की जो दुर्दशा होती है, वह सर्वविदित है। उसे नाटकीय जीवन-यापन करना पड़ता है, जिसमें सास-ननद इत्यादि के ताने, व्यंग्य इत्यादि की बौछार निरन्तर उसके ऊपर पड़ती रहती है। उपेक्षिता प्रभातकुमारी निराश न होकर

सिनेमा अभिनेत्री बन जाती है, किन्तु उसका भारतीय हृदय पतिपरायण बना रहता है। स्त्री के अन्तरसौन्दर्य तथा साहस का अच्छा चित्र उपस्थित किया गया है। अभिनय और काव्य का यह मिश्रण, जीवन की अनन्त सहानुभूति को अपने साथ लिये हुये है। विषम परिस्थितियों से मनोविज्ञान किन-किन दिशाओं में प्रगतिशील होता है, यह नाटक उसका सफल उदाहरण है। अन्त में भविष्य रक्षा के लिये प्रभा मंदार निर्झर में डूबकर प्राण त्याग कर देती है। यह करुणा जीवन की अन्तर्वासिनी सम्वेदना है।

"उत्सर्ग" (१६४२) पुनर्जन्म तथा प्रेतात्माओं की पृष्ठभूमि पर प्रेम तथा कर्त्तव्य के संघर्ष की कहानी पर आधारित है। एक वैज्ञानिक डाक्टर अपने मृत मित्र की पत्नी तथा पुत्री की सेवा करने के कारण अपनी प्रेमिका के प्रति उदासीन हो जाता है। मृत्यु के उपरान्त भी प्रेमिका छायादेवी की आत्मा डा० शेखर के प्रति आकर्षित रहती है। मित्र की पुत्री की रक्षा के लिए डाक्टर को अपने अनुसन्धानयंत्र को तोड़-फोड़ डालना पड़ता है।

इस नाटक में डा० वर्मा की कला जीवन के यथार्थ से उद्भूत होकर सजीव आदर्श की सृष्टि में प्रगतिशील है। जीवन के स्वाभाविक गति-प्रवाह को एक बल देना अथवा उसकी दिशा में झुकाव ला देना उनका प्रमुख उद्देश्य है। "उत्सर्ग" में डा० शेखर अपने वैज्ञानिक अनुसन्धानों में सच्चे नारीत्व का तिरस्कार करते हैं तथा निज दोषों को ढकने के हेतु नारी-सेवा का अहम् उपस्थित करते हैं। वर्माजी ने ऐसे व्यक्ति का बड़ा उपहासजनक चित्र इस नाटक में प्रस्तुत किया है। इस नाटक के वैज्ञानिक डा० शेखर को उन्होंने जीवन के इस उपहास की बड़ी सख्त सजा दी है। उदाहरण के लिए "उत्सर्ग" का एक अवतरण लीजिए, जिसमें डा० शेखर के जीवन की एक आलोचना है:—

"शेखर—मैं क्या कहता छाया, मिलने के दूसरे दिन मेरे मित्र के मरने का समाचार मिला, मैं अपने मित्र को अपने से अधिक प्यार करता था और मित्र की विधवा पत्नी और लड़की मंजुल के पोषण का भार मैंने अपने कंधों पर लिया……

छाया—लेकिन तुमने मेरे संसार में आग लगा दी। डाक्टर, तुमने कभी स्त्री के हृदय की थाह नहीं ली कि प्रेम करते समय समुद्र से भी अधिक गहरी और गम्भीर हो जाती है और निराश होने पर आग की लपट से भी अधिक भयानक; जिसकी एक-एक चिनगारी से सारा जीवन जल-जलकर बुझता है, जिसमें उसे बार-बार जलना पड़े ....फिर भी मैं मौन रही, हँसती रही; लेकिन तुमने यह न समझा कि छाया इसी लिए बढ़ रही है कि उसके जीवन का सूर्य ढल रहा है। मेरे जीवन के वे दिन मौन रहने में अँधेरे के समय भयानक हो रहे थे। डाक्टर.. मैं अधिक दिन तक जिंदा न रह सकी।

शेखर—उन पुरानी बातों को भूल जाओ, छाया।

छाया—अब तो कुछ भी शेष नहीं है। वे बातें स्वप्न जैसी मालूम होती हैं....जिस तरह नदी के उतर जाने से किनारे की मिट्टी धुलकर टेढ़ी-मेढ़ी हो जाय; टूट-फूट जाय, ऐसी मेरी भावना रह गई है .....''

इस प्रकार इस नाटक में डा० वर्मा ने प्रकृति में जीवन की समरसता उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। डा० शेखर यदि चाहता, तो अपनी वैज्ञानिक खोज की सुरक्षा के लिए मंजुल की मृत्यु से भयभीत न होता; क्योंकि उसके सामने जीवन तथा मृत्यु में विशेष अन्तर नहीं था। वह मृतक मंजुल से उसी प्रकार बात कर सकता था, जिस प्रकार उसने अपने यन्त्रों की सहायता से छायादेवी से बातें की थीं; किन्तु जिस प्रमुख भावना ने उसे यन्त्र तोड़ देने के लिए बाध्य किया, वह स्वयं उससे ही सम्बन्ध नहीं रखती थी, वरन् मंजुल की माता से भी सम्बन्ध रखती है, जिसके लिए उसे अपना विवाह नहीं किया था। शेखर ने यहाँ वैज्ञानिक होकर मानव संवेदनाओं का परिचय दिया है। व्यक्तिगत कर्त्तव्य तथा सामाजिक कर्त्तव्य के मध्य जो हलकी रेखा है, उसी में डाक्टर शेखर ने रंग भर दिया है।

"सही रास्ते" में वर्माजी ने सचाई और ईमानदारी का मार्ग प्रशस्त किया है। इसमें समाज के उन व्यक्तियों पर व्यंग्य है, जो बाहर से कुछ है और अन्दर से खोखले तथा बेईमान। संत, महात्मा से लेकर वकील, प्रोफेसर,

कवि, सेठ, अफसरों तक की पोल खोली है। इसमें समाज के सभ्य और शिक्षित व्यक्तियों की कमजोरियों पर भारी व्यंग्य किया गया है। सत्यप्रकाश के पत्रों के कुछ अंश देखिए, कितने तीखे हैं—

"दुनिया में आकर मैंने देखा कि दुनियाँ में सचाई और ईमानदारी दोनों ही नहीं हैं। खुशी के बजाय दर्दोगम है और ईमानदारी की जगह बेईमानी .... "

सेठ गिरधारीमल को भेंट स्वरूप एक खून से भरी बोतल दी जाती है, जिसके साथ पत्र में लिखा है—"इस खून से मैं आपकी सहायता करना चाहता हूं। आपकी मिलें तेल नहीं पीतीं, वे पीती हैं गरीब मजदूरों का खून। खाना न मिलने की वजह से बेचारे मजदूरों में कितना खून रह गया होगा, यह आप भी जानते हैं.... आपकी मिलों में खून की कमी होने पर यह खून काम में लाइएगा.. थोड़ा ही सही, कुछ काम तो चलेगा।"

प्रोफेसर महेन्द्रकुमार को दस चश्मे भेंट में दिये जाते हैं। पत्र में लिखा है, "आप समझते हैं कि दुनियाँ से आंख बन्द करके किताबों को आँखें फाड़ फाड़ कर पढ़ने से लियाकत आती है। पैदा कीजिये ऐसी लियाकत आप दुनिया की दुनियां से अनजान रहकर मेरी तरफ से आप लाखों किताबें

: गोविन्ददास तथा उनकी एकांकी कला

सेठ गोविन्ददास ने स्वदेश विदेश के नाट्य शास्त्रों का अध्ययन कर, 'शा तथा ओ' नील आदि पाश्चात्य एकांकीकारों के अनुसरण पर पर्याप्त मौलिकता के साथ पाश्चात्य विचारधाराओं तथा नये टेक्निक के प्रवाह को पकड़ कर रंगमंचीय समस्या नाटकों की सृष्टि की है, जिनमें अतीत गौरव के चित्रण के अतिरिक्त वर्तमान समाज के नाना वर्गों, समस्याओं, तथा आन्दोलनों के सजीव चित्र हैं। जहां एक ओर आर्य-संस्कृति पर निर्भर ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों में आप सांस्कृतिक उपासक के रूप में प्रकट हुए हैं, वहां सामाजिक-राजनीतिक नाटकों में सन् १९२० से अब तक के तीन वर्षों के अनुभवों पर आधारित भारतीय समाज तथा बहुमुखी मानव जीवन की आदर्शोन्मुख व्याख्या की है। सेठजी युग की आत्मा लेकर नाट्य साहित्य में आये हैं।

वर्तमान राजनीति के उथल-पुथल से पूर्ण अनुभव प्राप्त कर अपने नाट्य-क्षेत्र में प्रवेश किया है; अतः आपके एकांकियों में वर्तमान सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का सच्चा चित्रण है। आपके अधिकांश एकांकियों का निर्माण जेल-यात्राओं में हुआ है। उनमें गांधीयुग की राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याओं का चित्रण, ऐतिहासिक कथावस्तुओं में नैतिक बल तथा आधुनिक जीवन का प्रतिपादन है। सेठजी प्रसाद के आर्य-संस्कृति के चित्रण से प्रभावित हुए तथा आधुनिक युग में उनका प्रतिपादन किया है। प्रसाद और सेठजी आर्य-संस्कृति पर निर्भर एकांकीकार हैं, अन्तर यह है कि सेठजी ने प्रसाद की गहनता तथा साहित्यिकता से बचकर रंगमंच की अपूर्णता का परिहार किया है। सार्वजनिक जीवन में, जेल तथा राजनैतिक आन्दोलनों में,

उनके सम्पर्क में नाना पात्र, दृश्य, परिस्थितियाँ चरित्र आये हैं, यही नाटकों में प्रकट हुए हैं । अपने कटु अनुभवों के चित्रण में उनके आदर्शवादी हृदय को यथार्थवादी भी हो जाना पड़ा है। वर्तमान राजनैतिक और सामाजिक जीवन का यथार्थ खाका इनके नाटकों में खींचा गया है।

भाषा समयानुकूलता का उन्हें सदैव ध्यान रहा है। दुरूह, सांकेतिक, साहित्यिक और रहस्यमयी भाषा-शैली को छोड़कर सेठजी ने दैनिक जीवन के प्रयोग में आने वाली हिन्दुस्थानी का प्रयोग किया है ; पौराणिक-ऐतिहासिक नाटकों में उनकी भाषा सांस्कृतिक हिन्दी हो गयी है; आपका प्रत्येक नाटक किसी महत्त्वपूर्ण विचार को लेकर लिखा गया है। 'उपक्रम' तथा 'उपसंहार' का प्रयोग, जो कि सर्वथा सेठजी की मौलिक धारणा है, बहुत अच्छे ढंग से हुआ है।

सेठजी के एकांकी एक सुनिश्चित पद्धति पर लिखे गये हैं। उन्होंने एकांकी की उत्कृष्टता के सम्बन्ध में लिखा है, "जिस एकांकी में जितना बड़ा विचार होगा, उस विचार के विकास के लिए जितना स्पष्ट और तीव्र संघर्ष होगा, उस विचार और संघर्ष के लिए जितनी स्पष्ट और मनोरंजक कथा होगी, जितने कम चरित्र और उन चरित्रों का जितना स्पष्ट और विशद चरित्र चित्रण होगा, तथा जितनी स्वाभाविक कृति एवं कथोपकथन होंगे, वह उतना ही सफल होगा। खेलने के समय इनका उपयोग एक विवाद ग्रस्त प्रश्न हो सकता है, परन्तु मेरे मत से खेलते समय भी उपर्युक्त पद्धति से इनका उपयोग किया जा सकता है।" सेठजी ने संकलन-त्रय को आवश्यक माना है। उन्होंने विस्तृत रंगसंकेत देकर वातावरण की सृष्टि के साथ-साथ पात्रों के चरित्र-चित्रण पर भी विशेष प्रकाश डाला है। यथार्थवाद की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। सेठजी में इन्हीं आधार तत्त्वों पर अपने एकांकियों की रचना की है।

आपके सम्पूर्ण एकांकी साहित्य का अध्ययन निम्न वर्गों के अन्तर्गत किया जा सकता है —

सामाजिक:—(१) धोखेबाज (२) ईद की होली (३) मानव-मन (४) महाराज (५) व्यवहार (६) बूढ़े की जीभ (७) जाति उत्थान (८) फांसी

(६) विटैमिन् (१०) वह मरा क्यों ? (११) अधिकार लिप्सा (१२) स्पर्धा (१३) प्रलय और सृष्टि (१४) अलबेला (१५) शाप और वर (१६) सच्चासुख (१७) चालीस घण्टे (१८) हार्सपावर।

ऐतिहासिक व पौराणिक—१ कंगाल नहीं २. जालौक और भिखारिणी ३ चन्द्रपीड़ और चर्मकार ४. शिवाजी का सच्चा स्वरूप ५. निर्दोष की रक्षा ६. कृष्णाकुमारी ७. सहित या रहित ८ प्रायश्चित ९. भय का भूत १० अजीबो गरीब मुलाकात ११. बाजीराव की तस्वीर १२. सच्ची पूजा १३. कृषियज्ञ १४. अठानवें किस्से ?

राजनैतिकः—१. यू० नो० २. आई० सी० ३. भूख-हड़ताल ४. सुदामा के तन्दुल।

प्रहसनः—१. "हार्स पावर" २. "चौबीस घण्टे" ३. वह मरा क्यों ? ४. "कुछ आप बीती कुछ जग बीती" (एकाकी संग्रह) !

अपने सामाजिक नाटकों में सेठजी ने हमारे समाज में फैली हुई नाना समस्याओं पर विचार प्रकट किए हैं। कहीं आपका दृष्टिकोण व्यंग्यात्मक है, तो कहीं हास्योक्तियां से परिपूर्ण है। व्यापार क्षेत्रों से लेकर सरकारी अफसरों की अनुभवहीनता, धनी रईसो की अधिकार इच्छा; हिन्दू मुस्लिम मेल, राजवशों की दुर्दशा, अंग्रेज दम्पतियो का भारतीय नवाबों को प्रसन्न करने का उपहास, ब्राह्मणों की पतितावस्था, गरीब किसान मजदूरों का शोषण, बूढ़ों की स्वाद-लोलुपता, जातिगत ऊंच नीच की सारहीनता, मध्य वर्ग के रोमास, मिनिस्टरों के चुनाव, उद्दत चरित्र गर्व और नाज़ नखरे, कवियों की कल्पना का खोखलापन, भूख हड़तालों का दुरुपयोग, स्वास्थ्य सिद्धान्तों, वैज्ञानिक चिकित्सकों की बेवकूफियों, हिंसा-अहिंसा; बलिदान; प्रायश्चित आदि का विवेचन; धर्म और सत्य की व्याख्या; न्याय का सच्चा स्वरूप, राजाओं के विविध चरित्र; अस्पृश्यता की समस्या; किसान जमीदारों का संघर्ष; तथा कांग्रेसी मन्त्री मण्डल काल के विविध मनोभाव उपस्थित किए हैं। इनके अतिरिक्त आदर्शों से अधिक पैसे की प्रतिष्ठा; नारी और पुरुष के विवाहोत्तर सम्बन्ध और निर्वाचनों में परस्पर त्याग की भावना आदि पर भी विचार

त्याग तथा बलिदान का खेल है। इस सेवा के क्षेत्र में कोई अनुचित लाभ नहीं उठा सकता। महात्माजी के आदर्शों को विस्तृत कर किस प्रकार अवसरवाद, मिथ्यावाद, ढोंग इस राजनैतिक दल में प्रविष्ट हो गए हैं, इसका सुन्दर चित्रण सेठजी कर देते हैं। बन्दीखाने कि यथार्थ अवसादमय स्थिति निर्माण कर नाट्यकार ने जेल जीवन की अच्छी झांकी दिखाई है। "सेवा-पथ" में वर्तमान युग के राजनैतिक वादों का संघर्ष चित्रित किया गया है। विशेषकर समाजवाद का उभयपक्षीय चित्रण बड़ा व्यंग्यात्मक है। रईसों की मनोवृत्ति और वातावरण निर्माण बहुत सफल बन पड़ा है। हास्यरस क आलम्बन एक मारवाड़ी सेठ को बनाया गया है। कथावस्तु तथा राजनैतिक परिस्थितियों, व्यक्तियों तथा सिद्धान्तों के चित्रण में सेठजी यथार्थवादी हैं किन्तु प्रेरणा में आदर्शवादी ही कहे जायंगे। व्यवहारिक आदर्शवाद ह

है। आपके ऐतिहासिक नाटक पढ़ कर यह धारणा सत्य हो जाती है कि सेठजी हृदय से आदर्शवादी नाट्यकार हैं। जहां अपने सामाजिक एकांकियों में आपने व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण से समाज के नाना वर्गों तथा चरित्रों की कमजोरियों पर प्रकाश डाला है, वहां अपने ऐतिहासिक एकांकियो में हमारा ध्यान प्राचीन भारतीय गौरव, चरित्र की दृढ़ता, उत्कर्ष और महानता की ओर आकृष्ट किया है। यदि हम राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करना चाहते हैं, तो हमें उत्तमोत्तम मानवी भावों का मूर्त स्वरूप अपने इतिहास में ही उपलब्ध हो सकेगा। अपने ऐतिहासिक एकांकियों की कथावस्तु का चुनाव आपने जालौक, चन्द्रपीड़, शिवाजी, कृष्णाकुमारी, काश्मीर के राजा यशस्कर, रामशास्त्री, हर्ष इत्यादि महापुरुषों की जीवनगाथाओं से किया है। कुछ व्यंग्यात्मक ढंग की शैली में भी लिखे गये हैं, जैसे "अर्ज़ोगरीब मुलाकात" "निर्दोष की रक्षा"। इनकी कथावस्तु का निर्माण प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा किंवदन्तियों से हुआ है। "जालौक और भिखारिणी" तथा "चन्द्रापीड़ और चर्मकार" की कथावस्तु संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ "राज तरंगिणी से; "शिवाजी का सच्चा स्वरूप" सर यदुनाथ सरकार के प्रसिद्ध ग्रन्थ "शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स" निर्दोष की रक्षा" अरविन के अंग्रेजी के प्रसिद्ध ग्रन्थ "लेटर मुगलस" से, "कृष्णा कुमारी" कर्नल टाड की प्रसिद्ध पुस्तक तथा डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के "राजपूताने का इतिहास" से ली गई है। किसी समय या व्यक्ति विशेष के चरित्र को नाटकों में उतारने के पूर्व आप तत्कालीन जीवन, समाज संस्कृति का अध्ययन करते हैं तथा वही वातावरण अपने नाटकों में उपस्थित करने का प्रयत्न करते हैं।

× × ×

सेठजी के मनोड्रामा हिन्दी साहित्य में सर्वथा नूतन प्रयोग हैं। स्वीडन के प्रसिद्ध नाट्यकार स्ट्रेन्डवर्ग तथा अमेरिका के 'ओ' नील की शैली पर पाश्चात्य टेकनीक का अनुसरण करते हुए आपने चार मोनोड्रामे लिखे हैं—

१—"प्रलय और सृष्टि" २—"अलबेला" ३—"शाप और वर" ४—"सच्चा जीवन"। इन सबका विषय तथा प्रतिपादन भिन्न-भिन्न प्रकार का है। "प्रलय और सृष्टि" का नायक चश्मा, नोटबुक, कलम, लाइट

हाउस, टावर, घण्टा, चिमनी, बादल, धरती, इत्यादि को सम्बोधन कर समाज और आधुनिक जनता की मनोवृत्तियां की आलोचना की गई है। "अलबेला" में एक व्यक्ति घोड़े को सम्बोधन करके साहूकारों, ज़मीदारों, तथा शोषकों के विरुद्ध विचार प्रकट करता है। यह समाजवादी ढंग की चीज़ है 'शाप और वर' दो भागों में एक सताई हुई स्त्री मृत्यु से पूर्व अपने पति को सम्बोधन कर विगत जीवन की दु:खद स्मृतियां को प्रकट करती है। 'सच्चा जीवन' आकाश भाशित मोनोड्रामा है। एक युवक के मन में सच्चे जीवन के सम्बन्ध में नाना शंकाएँ विचार संघर्ष उठते हैं वह सोचता विचारता है। अन्त में इस निष्कर्श पर आ जाता है—"ठीक रास्ते पर चलना, बिना विघ्न-बाधाओं की परवाह किए चलना, अथक चलना, निष्काम चलना ही सच्चा जीवन है।" यह विचार और गूढ़ आध्यात्मिक चिन्तन-प्रधान मोनोड्रामा है।

आपके मोनोड्रामा ने चरित्र-चित्रण की आन्तरिक गुत्थियों का विश्लेषण करते हैं। एक ही पात्र के चरित्र के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते और मूलभाव के अनुकूल वातावरण की सृष्टि करते हैं। विचार पक्ष में चिन्तनशील होते हुए भी सेठजी आदर्शवादी हैं। क्या सामाजिक और क्या ऐतिहासिक नाटक सर्वत्र उनका आदर्शवाद झाँकता है। सामाजिक एकांकियों में व्यंग्य के साथ किसी न किसी रूप में एक स्वस्थ आदर्श की सृष्टि की गई है। ऐतिहासिक एकांकियों में आपका आदर्श अधिक स्पष्ट हो गया है। आपके कुछ पात्र जैसे शिवाजी, हर्ष, रामशास्त्री, चन्द्रपीड़ कृष्णा कुमारी, यशस्कर, बाजीराव, इत्यादि आदर्शमय होकर पूजा-योग्य तथा अनुकरणीय हो गए हैं। जिस प्रकार प्रेमचन्द ने निम्न किसान वर्ग को अपने उपन्यास कहानियों में मूर्तिमान कर दिया था, सेठजी ने उच्चमध्य वर्ग के सृष्टि समाज के जीवन का सजीव और सफल चित्रण किया है। सामाजिक नाटक ही आपके क्षेत्र हैं। 'प्रसाद' ने अपने नाटकों द्वारा अतीत इतिहास को देखा था, सेठजी ने मुख्यतः वर्तमान जीवन को देख और आधुनिक समस्याओं पर नाटकों की सृष्टि की है। इनकी पृष्ठभूमि में वैभव का वातावरण है; वैभव से झलमलाते हुए दृश्य; जिनमें रंग रस के साथ सूक्ष्म चित्रण भी है।

टेकनीक की दृष्टि से सेठजी युगान्तरकारी वर्ग के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। अपनी मौलिक प्रतिभा एवं नाटकीय कौशल द्वारा अपने हिन्दी एकांकी में पाश्चात्य टेकनीक का प्रयोग; विशेषतः अपने मोनोड्रामा में; बड़ी कुशलता पूर्वक किया है। साहित्यिकता तथा सूक्ष्म अनुवीक्षण के अतिरिक्त आपका सबसे बड़ा गुण नाटकों का रंगमंचीय विधान है। सफल अभिनय के लिए इनमें सतत गतिमान कथानक और जीवित कथोपकथन है। नाटकीय क्षण को पकड़ने की सहज बुद्धि इनमें प्रचुरता से है। प्रत्येक एकांकी में एक ऐसे क्षण या जीवन के एक ऐसे पहलू का चित्रण है, जिसमें आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार का संघर्ष है। चरम सीमा पर आकर सम्भाषणों का प्रवाह इसी उद्दीप्त क्षण पर केन्द्रित हो जाता है सेठजी के कथानक चलायमान होते हैं और उनका कथोपकथन तरल और स्वाभाविक। ज्यों-ज्यों कथावस्तु चरम स्थिति के क्षण पर पहुंचती है, त्यों-त्यों कौतुहल की वृद्धि होती जाती है, प्रत्येक गति उत्सुकता की अभिवृद्धि करती है और नाटक केन्द्रबिन्दु पर आकर रोचकता में सबसे अधिक खिल उठता है। नाटक के मूलभाव को दर्शकों पर ठीक तरह डालने के लिए सेठजी निर्देशन के प्रति सजग रहते हैं; इसी कारण आप पाश्चात्य शैली की विस्तृत रंग सूचनाएं प्रदान करते हैं। 'शा' का प्रभाव रंग सूचनाओं पर स्पष्ट है। ये व्यापक, चित्रमय तथा सर्वांग पूर्ण हैं, जिनका उपयोग विशेषतः सही प्रभाव तथा उसे उद्दीप्त करने के लिए किया जाता है। पात्रों के रंगरूप, आयु, साहस, वस्त्र, आभूषण, वेशभूषा, रंगमंच की व्यवस्था का वर्णन बड़ी सतर्कता से किया जाता है। आपके दो एकांकियों 'धोखेबाज, तथा 'कृष्णाकुमारी' में आरम्भिक संकेत दो दो पृष्ठों का है। इनमें केवल रंगभूमि के सम्बन्ध में लम्बी योजना ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक एकांकी की घटना के आरंभ होने से पूर्व का इतिहास भी निर्देश कर दिया जाता है। तत्सम्बन्धी आवश्यक सभी सूचनाएँ मौजूद रहती हैं। निर्देशों में वातावरण की सृष्टि के साथ पात्रों के चरित्र पर भी विशेष प्रकाश डाला जाता है।

"उपक्रम" तथा "उपसंहार" के प्रयोग आपकी महत्त्वपूर्ण देन है। 'उपक्रम' एक प्रकार का प्रवेश है, जिसमें पात्रों का परिचय करा दिया जाता है, वस्तुस्थिति एवं पूर्वकथा का समावेश इसी में रहता है; भविष्य के घटनाक्रम की

एक अस्पष्ट सी कल्पना दर्शक (या पाठक) के मन में उदित होती है। नाटक के अन्त में 'उपसंहार' की योजना है जो मुख्य दृश्यों के परिणामों को स्पष्ट करता है। सेठजी स्थल सकलन को इतना आवश्यक नहीं मानते जितना काल-संकलन को मानते हैं। जब ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो जाती है कि घटनाओं के मध्य में अधिक काल व्यतीत हो, तो आप एक ही समय में होने वाली घटना को बाग्न के दृश्यों में रख कर मुख्य घटना के पूर्व वाली घटना को 'उपक्रम' तथा बाद की घटनाओं को "उपसंहार" में रख देते हैं। इससे काल सकलन का निर्वाह हो जाता है। आपका मत है कि इन दोनों के प्रयोग से एकांकी की सौन्दर्यवृद्धि हो जाती है, पर इस प्रकार का उपयोग अनिवार्य नहीं है। सेठजी ने काल-संकलन के निर्वाह के लिए जो उपाय काम में लिया, वह उनकी मौलिक सूझ का परिणाम है। खेद है आगे आनेवाले हिंन्दी एकांकीकारों ने इन दोनों साधनों का प्रयोग नहीं किया है। रेडियो में उपक्रम या उपसंहार की सूचना सूत्रधार द्वारा दी जा सकती है, पर रंगमंच पर यह कृत्रिम प्रतीत होती है। ऐसा प्रयोग अन्य भारतीय या पश्चिमी नाटकों में नहीं हुआ है।

आधुनिक जीवन का यथार्थवादी चित्रकार—

श्री उदयशङ्कर भट्ट

हिन्दी एकांकियों के लिखने की प्राचीन शैली को तोड़ते हुए, नवीन शैली का पाश्चात्य उपयोग करने वालों में मानव-जीवन और समाज का सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को स्पष्ट और सजीव बनाकर उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित कराने वाले युग प्रवर्त्तक एकांकीकारों में उदयशंकर भट्ट का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एकांकी साहित्य के उन्नायकों में श्री उदयशंकर भट्ट की प्रतिभा बहुमुखी है। वे एक कुशल नाट्यकार अथवा एकांकीकार ही नहीं, अपितु उदात्त और शक्तिशाली भावनाओं के कवि, आलोचक एवं प्राचीन संस्कृति के उद्भावक भी हैं। दुःखपूर्ण ट्रेजिडी लिखने के प्रारम्भिक प्रयोग आपके द्वारा सम्पन्न हुए थे। आपके एकांकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पौराणिक और सामाजिक प्राचीन टेकनिक के विरुद्ध जीवन और आधुनिक समाज के यथार्थवादी चित्र हैं। एक ओर जहां आपने आदिम सभ्यता के विकास तथा वैवस्वत मनु द्वारा आर्यों की यश सभ्यता के विकास की अभिव्यंजना की है, वहां दूसरी ओर आधुनिक सामाजिक समस्याओं पर व्यंग्यात्मक रूप से विद्युत्प्रकाश डाला है। हिन्दी एकांकी साहित्य को भट्टजी की सबसे बड़ी देन उनके भावनाट्य हैं 'प्रसाद' के पश्चात् भावनाट्य की परम्परा में आपका स्थान सर्वोच्च है।

भट्टजी मूलतः यथार्थवादी दृष्टिकोण लिए हुए हैं। आदर्श अन्ततः मानते है; आदर्श उसी सीमा तक है, जब तक वह उच्च जीवन की ओर उन्मुख करे। जनजीवन को मुखरित करने में आप प्रयत्नशील हैं। आपका साहित्य समाज को समुन्नत करने का एक प्रयोग है। आपकी कला, कला के लिए नहीं, वरन् जीवन परिष्कार के हेतु है। उसमें आलोचना और

व्यंग्य द्वारा समाज और व्यक्ति का परिष्कार हुआ है। संकेत, जो आधा छिपा हुआ, आधा प्रकट रहता है, ही आपकी कला है। करुणा का सौंदर्य आपने देखा और प्रकट किया है। पं० बदरीनाथ भट्ट की परम्परा को चालू रखते हुए आपने अपनी नाटक सम्बन्धी धारणाएं सन् १९१७ में प्रकाशित की थीं। आपका विश्वास है कि हमारा देश में समाज से रूढ़ियों, दुराग्रही तथा मूढ़ताओं का उन्मूलन करने का साधन रंगमंच ही होगा।

भट्टजी की कला का विकास—यों तो आपने सन् १९२२-२३ में ही एकांकी-सृजन प्रारम्भ कर दिया था और सन् १९२३ के आसपास के एकांकियों—"असहयोग और स्वराज्य" तथा "चितरंजनदास" प्रस्तुत किये थे, पर वे केवल अभिनय की दृष्टि से प्रसूत हुए थे। दूसरे नाटक 'चितरंजनदास' में स्वयं भट्टजी ने प्रमुख पात्र का अभिनय किया था। इन दोनों प्रारम्भिक रचनाओं में एकांकीकार की राष्ट्रीयता कांग्रेस के आदर्शों के प्रति सहानुभूति तथा असहयोग आन्दोलन में दिलचस्पी की वृत्तिया प्रकट होती हैं। स्वतन्त्रता के नवप्रभात का सन्देश आपने हिन्दी जनता को सुनाया था। गति में आतुरता और विचारों में क्रान्ति मौजूद थी। १९२४ से १९३६ तक नाट्यकार राजनीति में खो गया। इस काल में कुछ कविताओं की रचना हुई थी। १९३६ में हिन्दू मुसलिम समस्या; पारस्परिक घृणा और संघर्ष तथा क्वेटा भूकम्प से प्रभावित होकर आपने गांधीवादी विचारधारा से आच्छादित एक घटना प्रधान एकांकी 'एक ही कब्र में' (हंस, दिसम्बर १९३६) में लिखा था। 'दस हजार' (हंस के एकांकी विशेषांक में मई १९३८) में प्रकाशित हुआ था। १९३५ से १९४० तक के मध्य पांच सामाजिक एकांकियों की रचना हुई थी—(१) 'दुर्गा' (२) 'नेता' (३) उन्नीस सौ पैंतीस (४) 'वर निर्वाचन' (५) सेठ लाभचन्द। इनमें से अधिकांश रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। सन् १९४० से १९४२ के मध्य में 'स्त्री का हृदय' नकली और असली; बड़े आदमी की मृत्यु; विष की पुड़िया; जवानी (नाट्य रूपक); मुंशी अनोखेलाल' आदि छः एकांकी लिखे गये। १९४२—४५ तक के मध्य भट्टजी की महत्वपूर्ण प्रौढ़ रचनाओं की सृष्टि हुई है (१) 'आदिम युग' (प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति का चित्र)। (२) 'प्रथम विवाह'। (प्रारम्भिक आर्य

संस्कृति का चित्र)। (३) 'मनु और मानव' (जल प्लावन के पश्चात् आर्य संस्कृति के विकास का एक चित्र; (४) 'कुमार सम्भव' (मध्यकालीन संस्कृति का चित्र)। ये चारों नाटक सभ्यता के विकास में क्रम और परिस्थितियों के भिन्न चित्र हैं। इस प्रकार की टेकनिक के प्रयोग में ये चारों नाटक सर्वथा नूतन और नये आदर्श प्रस्तुत करने वाले हैं। जहां और नाटकों में संस्कृति के विकास पथ का चित्रण है, 'कुमार सम्भव' में कलावाद का पक्ष प्रबल किया गया है और कालिदास की महत्ता का सभी परवर्ती कवियों द्वारा बड़े कौशल से स्वीकार कराया गया है। नाटककार ने कालिदास को सुरा सेवी दिखाकर इसे कविता के प्रेरक शक्ति के रूप में दिखाया है। नैतिक दृष्टि से यह मान्य न हो किन्तु कलावाद का जो पक्ष प्रस्तुत किया गया है उसमें इसकी अवहेलना की जा सकती।

१९४५-४८ तक के मध्य कुछ सामाजिक एकाकी लिखे गये थे। ये (१) "समस्या का अन्त" (२) 'भरत विचारें' (१९ वीं सदी का एक चित्र) (३) 'पिशाचों का नाच' (४) बीमार का इलाज' (५) 'आत्मदान' (६) 'जीवन' (प्रतीक रूपक) (७) 'वापसी' (८) 'मदि के द्वारपर' (९) 'दो अथिति (व्यंग्य प्रहसन) है। इन एकांकियों में मनुष्य के नौ प्रकार की विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों का चित्रण है। इन प्रवृत्तियों का वास्तव और अवास्तव रूप में प्रस्फुटन हुआ है। इनमें कुछ नाट्यसुधारवादी और समस्यामूलक दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। प्रत्येक नाटक एक समस्या का समाधान करते हुये विषमता का कलात्मकता प्रदान करता है।

सन् १९४९ में छः नये सामाजिक नाटकों का निर्माण हुआ है—(१) 'अघटित' (२) 'अन्धकार, और (३) नये मेहमान' (४) 'नया नाटक' (५) 'विस्फोट' (६) 'धूमशिखा'। इन पर रेडियो टेकनिक की छाप है। केवल विस्फोट को छोड़कर शेष रेडियो पर प्रसारित हो चुके है। इन नाटकों में लेखकों ने अनुभूति के द्वार खटखटा कर निकलने की चेष्टा की है। वे अपने पात्रों के रूप में भी कुछ नये अभिष्ट चित्र उपस्थित कर सके हैं।

इनके अतिरिक्त 'नवभारत' एकांकियों के अन्तर्गत आलइण्डिया रेडियो दिल्ली से 'गांधी का रामराज्य' 'धर्म परम्परा' 'एकला चलो रे, 'अमर प्रार्थना'

'विक्रमोर्वशी', 'कालिदास', 'मालती माधव', (अनुकूलन) 'मेघदूत', उत्तर-रामचरित (अनुकूलन) 'हिमालय के शिखर से' 'वन-महोत्सव' आदि प्रसारित हो चुके हैं।

जैसा ऊपर निर्देश किया जा चुका है, भट्टजी की सबसे बड़ी विशेषता उनके भाव-नाट्य हैं। आपके (१) 'विश्वामित्र' (२) 'मत्स्यगंधा' (३) 'राधा' काव्यमय क्षणों के नाटकीय चित्र हैं। कुल मिलाकर भट्टजी के तीस एकांकी, आठ रूपक तथा तीन भाव नाट्य इस क्षेत्र में आ चुके हैं।

भट्टजी के एकांकी साहित्य के चार उत्थान—

प्रथम उत्थान (१९३५-४०) में भट्टजी गांधीवादी विचारधारा और सुधारवाद दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। आपके प्रथम एकांकी एक ही कब्र में हिन्दू मुसलिम समस्या पर खड़ा होता है। मुसलिम लीग के मुसलमानों को हिन्दुओं से पृथक करने के सिद्धान्त को आलोचना का विषय बनाया गया है। नाटककार ने यह चित्रित करने का प्रयत्न किया है कि हिन्दू मुसलमानों में कोई भेद नहीं है। 'दुर्गा' में सामन्ती युग की विकृतियों पर व्यंग है, 'नेता' दिखावटी समाज सुधारकों पर व्यंग्य है, । प्रयत्न में प्रतिक्रियावादों पर व्यंग से प्रगतिपूर्ण। 'उन्नीस सौ पैंतीस' में शिक्षित युवकों का अवसादमय चित्र खींचा गया है। 'वर निर्वाचन' आधुनिक शिक्षित युवतियों का उपहास है ये सभी एकांकी तत्कालीन समाज और व्यक्तियों पर व्यंग्य है; कल्पना के चरम छोर पाने की सतत चेष्टा जीवन की भेदाभेद पहचानने का भी प्रयत्न है चमत्कार को जीवन के साथ घटा कर यथार्थ मानों को लाने की चेष्टा का नाटक के सौन्दर्य वाद के साथ वस्तु की अभिनव-ग्रथना को नाटक का उत्[illegible] चलन का यत्न है, लेखक ने विस्मयात्मक अन्त तथा संवाद प्रभावना पर जोर दिया है। भट्टजी के पात्र परिस्थिति में पलते है, परिस्थितियों से लोहा लेकर उन्हें परिवर्तन करने वाले नहीं। लेखक परिस्थितिवादी प्रतीत होता है। इस वर्ग के एकांकियों में जीवन-संघर्ष की [illegible] नहीं मिलती। हास्यव्यंगात्मक मनोरंजन अवश्य प्राप्त होता [illegible] के चरित्र-चित्रण की कुशलता उत्तरोत्तर विकास-पथ पर है। अ

गुलाम, एक राजपूत आधुनिक वाग्वीर नेता, वेकार ग्रेजुएट, नासमझ पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीय लड़कियों का अंकन सफलता से हुआ है। इसमें जो त्रुटियाँ हमें जो ए टकती हैं वे ये हैं। कथोपकथन लम्बे, तर्क बोझिल हो गए हैं, बातचीत में अस्वाभाविकता आगई है, एकांकी घटना प्रधान है। सामाजिक समस्या और गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित हैं किन्तु ये भावी विकास की ओर इंगित करते हैं। इनमें कपोल-कल्पना नहीं। गहरा यथार्थवाद है।

द्वितीय उत्थान (१९४०–४२) में भट्टजी यथार्थवाद की ओर और भी अधिक झुके हैं। इस काल के सर्वोत्तम नाट्य रूपक 'जवानी' के अतिरिक्त शेष नाटक यथार्थवादी हैं। इनमें गिरी हुई मानवता के प्रति नाट्यकार की सहानुभूति प्रगट हुई है 'स्त्री का हृदय'; 'नकली और असली'; तथा 'विष की पुड़िया' में पीड़ित और परिस्थितियों के बीच में फसी हुई मानवता के प्रति लेखक की सहानुभूति प्रगट हुई है। रुपये पैसे जैसी कृत्रिम वस्तु ने मानव समाज में कैसा तुमुल द्वन्द्व उत्पन्न कर दिया है, उसका चित्रण लेखक ने 'दस हजार'; 'बड़े आदमी की मृत्यु'; 'नकली और असली'; तथा 'स्त्री का हृदय' में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया है। आदर्श की ओर थोड़ा-सा संकेत करते हुए नाट्यकार प्रगति और उत्थान की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। इन नाटकों में विचार और प्रतिपादन की प्रौढ़ता आगई है। कुछ नाटकों में पूँजीवाद तथा उसके सस्कारों पर प्रहार किया गया है। 'स्त्री का हृदय' अर्थ और नैतिक आचरण की समस्या को स्पर्श करता है। 'बड़े आदमी की मृत्यु' आज की पूंजीवादी कृत्रिमता के मुँह पर एक तमाचा है। इस काल के एकांकियों में मनुष्य के विभिन्न कृत्रिम रूपों पर व्यंग्य है। "अनुभूति ने उन चित्रों को प्रौढ से प्रौढतर बना दिया है।" इस कृत्रिमता की ओर संकेत ही नाट्यकार के यथार्थवाद का साधन है, साध्य नहीं है। हम अपने आपको पूंजीवाद के हाथों बेचकर अपना कल्याण नहीं कर सकते, यही उनकी अन्तर्ध्वनि है।

तृतीय उत्थान (१९४२–४६) तक आते आते भट्टजी समाज के तीव्र अन्वेषक; कटु आलोचक और पक्के यथार्थवादी बन गये हैं। इस उत्थान के

नौ नाटक को में नौ विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों का चित्रण आलोचक के नेत्रों से प्रस्तुत किया गया है। इनमें बौद्धिक तत्त्व हमें विशेष रूप से आकृष्ट करता है। जीवन के द्वार पर खड़े होकर नाट्यकार समाज की आलोचनाएँ करता है। पात्रों मे यथार्थ एवं वस्तुवादी सामग्री का ठोस एकत्रीकरण है। संस्कृति, परम्परा रूढ़ि एवं विश्वासों को युग के नए मापदण्डों से वह परीक्षा करता हुआ प्रतीत होता है। इनमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भी भारतीय जीवन के उत्तरोत्तर परिष्कार और सुधार की आवश्यकता की ओर संकेत है। उन्होंने ये यथार्थवादी चित्र इस खूबी से प्रस्तुत किये हैं कि हमारे सामाजिक राजनैतिक और नैतिक जीवन की कमजोरियों की ओर निर्देश हो जाता है। इनमें विकृत 'अहं' की उत्पत्ति तथा उसके द्वारा समाज में फैलाये हुए संघर्ष का भी चित्रण है। यह 'अहं' ही विकसित होकर युद्धों के रूप में फूट पड़ता है। उसकी उत्पत्ति विकृत शिक्षा तथा रूढ़ि संस्कारों से होती है। 'समस्या का अन्त' नाटक में मानविक का बलिदान तथा उसके साथ ही कामरथ और भद्रकाम का पारस्परिक द्वेष कटुता और पटुता का अन्त होना 'विकृति अहं' का द्योतक है। 'गिरती दीवारें' में पुरानी रूढ़ियों का चोगा पहनने वाले १६ वीं सदी के एक रूढ़िवादी राव साहब की परम्परा पर व्यंग्य है। 'पिशाचों का नाच' में मानव की क्रूरता पाशविकता, धर्म की आड़ में उन्माद, बदमाशी, पशुता का ताण्डव है। 'बीमारी का इलाज' में भिन्न भिन्न प्रकार के चिकित्सकों पर जनता की आस्था, दृष्टिकोणों का संघर्ष देश की अज्ञानता पुरातन पंथीपन झाड़फूंक इत्यादि पर व्यंग्य है। 'आत्मदान' में आधुनिक शिक्षित नारी के स्वच्छन्द प्रेम, स्वतन्त्रता और उत्सुकता पर प्रहार है पुरातन भारतीय आदर्शों का पोषण है। आज का मनुष्य रुपये के मोह में मानवता का महत्त्व विस्मृत कर बैठा है। सच्चा प्रेम, त्याग सेवा भावना लुप्त हो चुका है, यह भाव 'वापसी' में चित्रित किया गया है। 'मन्दिर के द्वारपर' हिन्दुओं में वर्णभेद, संकीर्णता, छुआछूत, मन्दिरों के अत्याचारों की झांकी है। 'दो अतिथि' आर्य समाज के महाशय टाइप उपदेशकों के खाऊपन पर व्यंग्यात्मक प्रहसन है। इन नाटकों का यथार्थवाद इस कलात्मक ढंग से प्रस्तुत है कि समाज अथवा [illegible] की कमजोरी की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

ये नाटक जितने यथार्थ हैं, उतने ही प्रभावशाली भी हैं। 'जवानी' प्रतीक रूपक गम्भीर तथा संकेत वाली प्रणाली पर लिखा गया है। संकेत बौद्धिक होते हुए भी अर्थों में चमत्कारपूर्ण है। 'पिशाचों का नाच' 'वापसी' 'गिरती दीवारें' तथा 'समस्या का अन्त' समस्या-मूलक यथार्थवादी जीवन के चित्र हैं? 'आत्मदान'; 'मंदिर के द्वार पर' 'दो अतिथि'; और 'बीमार का इलाज' सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। इन सभी में उद्देश्य के प्रति घटनाओं में तीक्ष्णता है लेखक नाटककार के प्रति सजग है। एक नाटक में वह स्वयं विकृत अहं का शिकार हो गया है। इनकी टेकनीक पर रेडियो का प्रभाव है। इनमें कुछ रेडियो के लिए ध्वनिप्रधान बनाये गये हैं तथा उनका विशेष गुण वाचिक नर्तकता है। 'आत्मदान', 'गिरती दीवारें'; इत्यादि नाटकों में आंगिक अभिव्यक्ति को कम करके वाचिक अभिव्यक्ति की वृद्धि की गई है। प्रायः सभी नाटकों का दृष्टिकोण सृजनात्मक, सुधारवादी एवं प्रगतिशील है। इतने पर भी रंगमंच की दृष्टि से इनमें कोई त्रुटि नहीं है।

अपने चतुर्थ उत्थान (१९४६-१९५२) में नाट्य क्रम अपने विकास की सर्वोच्च सीमा पर पहुंचा है। इनमें (१) 'धूमशिखा' (२) विस्फोट (३) नया नाटक (४) नये मेहमान (५) अन्धकार और (६) 'अपराजित' (७) मनुष्य के रूप (८) शशिलेखा (९) क्रांतिकारी विश्वामित्र आदि एकांकियों की सृष्टि हुई है। इनमें एक निष्पक्ष एवं तटस्थ अनुवीक्षक की दृष्टि से कलाकार ने समाज और साहित्य को देखने का प्रयास किया है। वह किसी वर्ग, या समाज की मान्यताओं से नहीं बंधा है। साहित्यिक प्रोपेगेण्डा से दूर वह साहित्यिक जीवन प्रगति विगति का निष्पक्ष विचारक है। जैसे वह सबका होते हुए भी तटस्थ रहकर भी मानवसमाज की प्रकृति विकृति के आलोचक हैं, वैसे ही वह किसी भी वाद से बचकर अपने रूप को खो भी नहीं देता। उनके हृदय में मानव के प्रति सद्भावना का तीव्र स्पन्द ही उसके अस्तित्व को कुंठित करता है। उस कुण्ठा में वह जीवित रहकर बड़े साहित्य की पूर्ति में लगा रहता है। इसलिए न वह मार्क्सवादी है, न मोरालिस्ट न रोमांटिस्ट। उसका अपना वाद है और वह है विवेकपूर्ण मानवतावाद, जिसके लिए उसने

लेखनी उठाई है और जीवन के विकृत अंगों पर तीक्ष्ण प्रहार करने का सदुद्देश्य ग्रहण किया है। इसी दृष्टि से जब वह सरकार का समर्थक है, वहां जनता की उद्दंडता के विरोधी भी हैं! दोनों में एक दूसरे के द्वारा परस्पर हित के लिए किये गए प्रयत्नों की स्थाई समता का केन्द्रबिन्दु होकर आपने कृतित्व को सार्थक करता है। वह जीवन योग्य तत्वों की खोजकर मानव के सामने रखता है। इसी लोक में सबके लिए स्वर्ग बना देने की प्रबल आकांक्षा उसके मन में है। (देखिये "धूमशिखा" पृष्ठ छ आमुख) इन नाटकों में मनोविज्ञान का उपयोग हुआ है तथा नाट्यकार अन्तर्मुखी हो गया है। 'धूमशिखा' अन्धकार और ... 'नया नाटक में पात्रों का मनोविज्ञान हमें विशेष रूप से आकृष्ट करता है। इनकी समस्यायें नवीनतम, संघर्षपूर्ण और यथार्थवादी हैं। बीसवीं सदी का सामाजिक, पारवारिक और राजनैतिक जीवन इनमें चित्रित है। मन्दाकिनी, महेन्द्र और ललित के रूप में उसने कुछ पात्रों से नये रूप उपस्थित किये हैं। एक व्यापक दृष्टिकोण से भट्टजी समाज, व्यक्ति और साहित्य को विनाशकारी कीटाणुओं से मुक्त करना चाहते हैं। उनका सन्देश है—'चलो अन्धानुकरण' मत करो, सोचो और प्रयोग करो। वे निष्पक्ष भविष्य द्रष्टा हैं। अनुभूतियों के सहारे खड़े होने के कारण ये नाट्य समस्याओं की दृष्टि से तो नये हैं ही, पात्रों के रूप में भी कुछ नवीन चित्र उपस्थित कर सके हैं। भाषा में काव्य सुषमा है और है मार्मिक सुगमता। रंगसूचनाएँ भुवनेश्वर और 'शा' की तरह सूक्ष्मता, प्रभाव योजना और कलात्मकता की दृष्टि से लिखी गयी है।

भट्टजी की मूल प्रवृत्तियाँ—भट्टजी ने समाज की प्रवृत्तियों की सूक्ष्मता से देखा है। आपका एकांकी साहित्य मूलतः समाज की आलोचना तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान से सम्बन्धित है। यद्यपि आपके प्रारम्भिक एकांकी राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित थे, तथापि आगे के नाटकों में आपने सामाजिक आचार-विचार, रूढ़िवादी रीति-रिवाजों का खण्डन, समाज की कृत्रिम रहन-सहन का उथलापन, जीर्ण-शीर्ण सामाजिक नियम, दकियानूसी बन्धन, समाज के दुराग्रह, मूढ़तायें तथा रूढ़ियों को अपने एकांकियों का विषय बनाया है। आपके [illegible] का इलाज, बड़े आदमी की मृत्यु, दो अतिथि 'वापसी'

'विस्फोट' तथा 'नये मेहमान' आदि में आपकी उग्रता विशेष रूप से प्रकट हुई है। प्रतीक एकांकियों में लक्षितार्थ और व्यंग्यार्थ की गम्भीरता है। कुछ एकांकियों (जैसे "पिशाचों का नाच') में नाट्यकार स्वयं विकृत अर्थ का शिकार हो गया है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भट्टजी ने विशेष अध्ययन कर नये प्रकार के गवेषणात्मक एकांकियों को जन्म दिया है। इनमें प्रारम्भिक आर्य-संस्कृति प्रागैतिहासिक काल, महामानव मनु के काल की संस्कृति, वैदिककालीन भारतीय संस्कृति, मध्यकालीन संस्कृति चित्रित है। इनके अतिरिक्त आपने आधुनिक जीवन तथा समाज की उथल-पुथल सामाजिक समस्याएँ और आकुल अभिव्यक्तियां भी चित्रित की हैं। इनके अन्तर्गत आपने समाज धर्म राजनीति साहित्य के साथ मानव—मन की दुर्बलता, रूढ़ियों तथा दुराग्रहों के चित्र प्रस्तुत किए हैं।

भट्टजी की अनूठी देन : भाव-नाट्य—हिन्दी एकांकी साहित्य को भट्टजी की अनूठी देन उनके भाव नाट्य ('विश्वामित्र') (१९२८); मत्स्य गंधा' 'राधा' (१९४१) है। अन्य एकांकियों में जहां तर्क और बुद्धिवाद की प्रचुरता होती है, वहां इनमें भावों की प्रधानता के साथ अन्तर्जगत में उठने वाले नाना घात प्रतिघातों को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। अन्तर्द्वन्द्वों को चित्रित करने में भट्टजी को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इनमें न घटनाओं की प्रधानता है, न कथा की; प्रत्युत अन्तर्जगत के भावों तथा संघर्ष की प्रधानता है। एकांकी नाटकों की आत्मा अन्तर्जगत के भावों की उथल-पुथल अथवा संघर्ष यहाँ सजग है; गतियाँ उनके भावों को सुन्दर तथा आकर्षक बनाने का प्रयत्न करती है; शारीरिक प्रदर्शन के स्थान पर मानसिक भावना की प्रधानता है। प्राकृतिक दृश्यों का उपयोग उद्दीपन के लिए किया गया है। 'विश्वामित्र' एक प्रकार का रूपक है जिसमें हमारी संस्कृति में नर-नारी के पारस्परिक संघर्ष का संकेत है। जहाँ नर-नारी आदि काल में अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए विकास ने नए-नए तरीके अख्तियार किये हैं, वहाँ नारी ने केवल अपने सौंदर्य, आकर्षक, प्रेम और विश्वास से अपनी रक्षा की है। 'यह कलात्मक सृष्टि है जिसके भाव, हलचल, गति,

सजीवता मानो जीवन और समस्याओं का एक कटा हुआ टुकड़ा है। पिछले दिनों दिल्ली में सफलतापूर्वक प्रसारित हो चुके हैं। 'मत्स्यगंधा' छै दृश्यों में महाभारत की सत्यवती के प्रेमाख्यान पर आधारित चरित्र प्रधान एकांकी है। इसमें सफल एकांकी के अनेक तत्व मौजूद हैं मनोरम शृंगार प्रधान वातावरण में प्रारम्भ, अनंगके कार्यकलाप में आश्चर्य, भावी घटनाओं के प्रति कौतूहल, मत्स्यगधा की विवेकबुद्धि और ऋषि की वासना में संघर्ष उसके रानी बनने में चरम सीमा फिर आजीवन यौवन के ताप में दग्धता। 'राधा' चार दृश्यों का गीतनाट्य है, जिसमें राधा का विरह अधिक खिला है। दार्शनिक दृष्टि से राधा में पुष्टि मार्ग का निरूपण किया गया है; भ्रमरगीत की इस पर छाप है। प्राकृतिक पृष्ठभूमि का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया गया है। राधा का प्रथम दर्शन में हम प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न युवती के रूप में देखते हैं। तृतीय दृश्य में नाटककार ने आपकी विवाह-प्रणाली पर विचार व्यक्त किए हैं। धर्म के विषय में कृष्ण की कुछ उक्तियां बड़ी सारपूर्ण हैं। भाव तथा रस की दृष्टियों से तीनों भाव-नाट्य अत्युत्तम हैं। इनमें शृंगार रस का कलात्मक विवेचन तो है ही। शोक, चिन्ता, आकुलता स्मृति आदि अन्तर्जगत् के भावों के संघर्ष का अच्छा चित्रण किया गया है। यद्यपि स्थल संकलन का पालन नहीं हो सका है तथापि मृदु गीत इन एकांकियों में प्राण प्रदान कर देते हैं। सभी नाटकों में स्त्री-पात्रों की प्रधानता है; पुरुष पात्र गौण हैं तथा निर्बलताओं से परिपूर्ण हैं; केवल योगिराज कृष्ण ही अपने पुरातन स्वरूप में प्रकट हुए हैं। तीनों भावनाओं में शृंगार रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है। 'मत्स्यगधा' के कुछ पद्यों में पूर्णतः संलक्षणक तथा प्रतीक भावना से काम लिया गया है। उसके रूप में अनेकों जीवन के रूपक क्रमशः उपस्थित हो गये हैं। छायावाद का वह प्रभाव भट्टजी के एकांकियों पर है, जो युग की भावना के संघर्ष से स्पष्ट हुआ है।

उनके एकांकियों का संविधान—भट्टजी के एकांकियों का संविधान रंगमंचीय है तथा उन्हें सरलता से अभिनीत किया जा सकता है। सामाजिक एकांकियों के लिए तो आडम्बर विहीन साधारण से रंगमंच से काम चल सकता है। कुछ को छोड़कर प्रायः सभी एकांकी एक लम्बे दृश्य में ही

पूर्ण हो जाते हैं। कुछ में पूर्व कथा दी हुई है तथा प्रारंभिक विकास संघर्ष को पार कर वे तीव्रता से चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ते हैं। पात्रों का परिचय नाट्यकार द्वारा प्रदान किया जाता है। कुछ नाटक रेडियो—टेकनिक पर लिखे गये हैं, जिसका अच्छा अनुभव एकांकीकार के पास है। इनके पात्रों में यथार्थ एवं ठोस वस्तुवादी सामग्री का एकत्रीकरण है। कुछ पात्र वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जैसे 'गिरती दीवारें में रायसाहब प्राचीन रूढ़िवादिता का और प्रद्युम्नकुमार नई रोशनी का; 'आत्मदान' में सरला स्वच्छन्दताप्रिय आधुनिक नारी का तथा सुषमा प्राचीन विचारधारा की पतिव्रता नारी का प्रायः सभी पात्र सजीव के सन्निकट हैं। ये हमारे समाज की नाना समस्याओं से लिपटे हुए हैं। सांस्कृतिक नाटकों में प्रेम-वश कुछ पात्र देवता बन गए हैं किन्तु उनकी महानता को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया गया है। स्वायंभुव मनु शतरूपा सृष्टि के आदिम स्त्री-पुरुष थे। इन पात्रों का निर्माण प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर हुआ है। सरस्वती, शिव, पार्वती, गणेश इत्यादि देवताओं की सृष्टि कल्पनाप्रसूत न होकर ठोस पौराणिक आधारों पर है। ऐतिहासिक पात्र सम्राट चन्द्रगुप्त, कालिदास, धन्वंतरि आदि इतिहास के अध्ययन पर आधारित है। प्रतीकात्मक सांकेतिक नाटकों में काम, जरा, वासना, यौवन आगन्तुक (विचारक) स्त्री (स्मृति) युवती (जवानी) सब काल्पनिक प्रतीक हैं। नाट्यकार ने सबसे अधिक रचना—चातुर्य इन्हीं पात्रों के निर्माण में प्रदर्शित किया है।

भट्टजी के रंगनिर्देश लम्बा तथा व्यापक है। धूमशिखा के एकांकियों के संकेतों में स्थान वातावरण एवं पात्र सम्बन्धी सभी ज्ञातव्य बातें सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व, कार्यकलाप, बैठने की स्थिति तक दी जाती है। पाश्चात्य टेकनिक का प्रत्यक्ष अनुकरण यहाँ है। रंगनिर्देशों में ही पात्रों का चित्रण संक्षिप्त किन्तु अपने आप में पूर्ण होता है। कुछ रंगमंच निर्देश केवल प्रभाव व्यंजना के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं, जैसे—

..... दिखाई देता है प्यालों की चाय में नगश के पत्र की प्रत्येक पंक्ति और सम्पादक का विश्लेषण धुएँ के साथ प्रत्येक सदस्य के मस्तिष्क के रूढ़िवादी कीड़ों को सतर्क कर रहा है (धूमशिखा)

सामाजिक एवं समयात्मक नाटकों की भाषा सरल, स्वाभाविक एवं पात्रां नुकूल है। स्त्रियों की बातचीत में उनके चरित्र को औरतों तथा तकिया ाम को प्रकट करने वाली भाषा का उपयोग किया गया है। सांस्कृतिक झांकियों में विविध प्रकार की भाषा के प्रयोग चारित्रिक विकास को दृष्टि-त रखकर किए गए हैं। 'कुमार संभव' में शुद्ध साहित्यक संस्कृत मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है। इसके गीत भाव पूर्ण एवं मृदु हैं। भट्टजी ने स्वगत का प्रयोग किया है। भाव नाट्यों की भाषा माधुर्य से ओतप्रोत है। 'राधा' में नारद द्वारा गीत-गोविन्द के कुछ पद कहलवाये हैं, जो मार्मिक विशद और अवसरानुकूल हैं।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

मिश्रजी के एकांकियों में पाश्चात्य प्रभाव अपेक्षाकृत जल्दी ही प्रकट हो चुका था, किन्तु उसका मूल स्रोत अंग्रेजी साहित्य न होकर संस्कृत नाट्य साहित्य है। आपका अशोक १९२५ पुरानी पद्धति पर विचरित है; किन्तु 'सन्यासी' १९२७ प्रसादजी की कृत्रिम भावुकता, अतिरंजन और शैक्सपीयर वाली काव्यमयी पद्धति के विरुद्ध एक क्रान्तिकारी प्रयास था। प्रसाद के चरित्र निर्माण में जो मनोवैज्ञानिक भूलें हैं, उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप सन्यासी की सृष्टि हुई थी। मिश्रजी का जीवन दर्शन निजी है। ऊपरी आकार-प्रकार भाषा, सम्वाद, व्यंग्य आदि पर अवश्य ही थोड़ा प्रभाव इब्सन और उसके [illegible] के नाटककारों का उन पर पड़ा है, पर भीतरी भावलोक भारतीय है

कालिदास और भास की परम्परा में है।१. प्रसाद के नाटकों की काव्यमयी कृत्रिमता, मनोवैज्ञानिक प्रभाव और संघर्ष या द्वन्द की आंधी के विरुद्ध मिश्रजी के नाटकों में स्वाभाविकता, सांस्कृतिक का अनुभव, मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि और बुद्धिवाद का प्रयोग कर हिन्दी एकाकी को पाश्चात्य एकाकी के समक्ष ला खड़ा किया है। अतिरंजित और काल्पनिक साहित्य न लिखकर मिश्रजी ने जीवन के स्वर में यथार्थवादी साहित्य का निर्माण किया है।

मिश्रजी बुद्धिवादी हैं, इसलिए उनका नाट्य-साहित्य विवेक, तर्क, मनोविज्ञान का साहित्य है, अन्धविश्वास या परम्परा निर्वाह का नहीं। वे जीवन की ऊपरी सतह को उठाकर स्त्री-पुरुष, धर्म, सदाचार, जीवन, और मृत्यु का चिरन्तन स्वरूप हमारे सामने उपस्थित करते हैं।२

मिश्रजी के "राक्षस का मन्दिर" और "मुक्ति का रहस्य" १९३० में प्रकाशित हुए थे। "राजयोग" तथा "सिन्दूर की होली" (१९३२) में लिखे गए थे। एकांकियों में आपके १. शोकधन (संग्रह) २.प्रलय के पंख पर (संग्रह) ३. एक दिन ४ कावेरी में कमल (१९५१) ५. बलहीन (१९५२) (६) नारी का रंग (७) स्वर्ग में विप्लव (१९४७) इत्यादि विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक और सामाजिक सभी प्रकार की सम

१—इब्सन ने पश्चिम के नाटक साहित्य में जो नई बातें पैदा की थीं, और जिस पर सभी पश्चिमी नाटककार अभी तक चलते आ रहे हैं, वह यूरप के लिए नई थी, पर भास के नाटक चक्र का पता जिन्हें है, वे जानते हैं कि इस देश के साहित्य में, भरतमुनि ने लोकवृत्ति के अनुकरण का जो सिद्धान्त अपने नाट्य-शास्त्र में रखा था, उसी पर यहाँ के कवि और नाटककार चलते रहे हैं ·· लक्ष्मीनारायण मिश्र ··· मुक्ति का रहस्य भूमिका से

२—'सन्यासी' और 'राक्षस का मन्दिर' लिख चुकने के बाद मैं इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि मेरी प्रकृति बुद्धिवाद की ओर चली है ·· 'मुक्ति का रहस्य' भूमिका प्रथम संस्करण।

स्याओं को बुद्धिवादी मनोवैज्ञानिक विवेचना का विषय बनाया गया है। ये न केवल मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक हैं, प्रत्युत अभिनीत भी किए जाने योग्य हैं। कथोपकथन प्रभावपूर्ण एवं मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से परिपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त विदेशी साहित्य का बुद्धिवाद, यथातथ्यवाद, चिरन्तन नारीत्व की समस्या प्रकृति की ओर प्रतिवर्त्तन का अनुरोध, जीवन के भौतिक सत्यों की निभ्रान्त स्वीकृति आदि संकुल प्रवृत्तियां उनके मन में काम कर रही हैं। भारत की अपनी समस्याएं, यहाँ की आध्यात्मिकता का भी उन पर प्रभाव है।

मिश्रजी के एकांकियों पर नवीन प्रभाव दो प्रकार से दृष्टिगोचर होता है।

अन्तरंग तथा बहिरंग में परिवर्त्तन। बहिरंग में कृत्रिमता के सब साधन जैसे कृत्रिम भाषा, स्वगत, संगीत, भरत वाक्य, वर्णनात्मकता को बहिष्कृत किया गया है। अन्तरंग में, मनोवैज्ञानिक पृष्ठ भूमि, मूक अभिनय, अनुभाव चित्रण, भारतजीवन दर्शन के अनुरूप परिस्थितियों तथा व्यापारों के गठन का प्रचलन किया गया है। आपकी नाट्य-कला में भारतीयता को लिए हुए प्राचीनता से प्रेरणा है, साथ ही पाश्चात्य प्रभाव को लिए हुए नवीनता की ओर चेतना।

इसके पाश्चात कितने ही एकांककार आपके यथार्थवादी मार्ग पर चले। अब तो समस्या एकांकी का बाहुल्य है, किन्तु मिश्रजी के पाश्चात्य साहित्यकारों के दृष्टिकोण मात्र को ही अपनाया और अपनी मौलिक प्रतिभा से हिन्दी में समस्या एकांकी का सूत्रपात किया था। आपके एकांकी में आपका निजी व्यक्तित्व, तथा भारतीयता पूर्णरूप से रक्षित है।

मिश्रजी में नवीन युग की स्वाभाविकता, बुद्धिवाद तथा मनोवैज्ञानिक चेतना विकसित हुई है। देश की वर्तमान तथा अतीत की समस्याओं के विषय में वे गहनता से विचार करते हैं और समस्या के हल के रूप में अपने नाटक प्रस्तुत करते हैं। सर्वत्र हमें उनका नया रूप, नई व्याख्या और नया दृष्टिकोण उपलब्ध है। एक ओर देश की राजनैतिक, सामाजिक या रूढ़िगत सांस्कृतिक समस्या को उठा कर उस पर प्रकाश फेंकते हैं और निजी सुलझाव

उपस्थिति करते हैं, तो दूसरी ओर पौराणिक कथानक को उठा कर उसमें नवीन समस्याओं का समावेश कर देते हैं। नूतन सामयिक ढंग से पुराना मान्यताओं की व्याख्या आप ही कर सकते हैं। कल्पना से कोई नया दृश्य वे बना सकते हैं। किन्तु उसमें भी वहां बुद्धिवाद तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मुखरित होता है। पलायनवाद कृत्रिम भावुकता, अतिरंजित आवेश के वे विरोधी हैं।

इब्सन के समस्या नाटकों में राजनैतिक एव सामाजिक समस्याओं ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है। व्यक्ति की समस्या, सैक्स, की मूल समस्या के साथ अनेक गौण समस्यायें भी अपनं ली हैं जैसे—उन्मुक्त प्रेम, वैश्या-सुधार, ऐशियाई सघ, इलैक्शन, खद्दर, समाजवाद के व्यवहारिक पक्ष का विवेचन, गांधीवाद की व्याख्या, सुधारवाद का दंभ, नारी की चेतना, सिद्धांत और आदर्श का खोखलापन अव्यवहारिकता, अतीत संस्कृति का इतिहास। आपकी दो समस्यायें 'शा' से प्रभावित हैं, प्रेम और नारीत्व। आपको निष्फल प्रेम मान्य नहीं है। प्रेम और नारीत्व की समस्याएँ उठाकर आप उनके चित्रण में नैसर्गिकता और स्वाभाविकता तो ला ही सके हैं, प्रेम में वासनावृत्ति की तुच्छता, भी दिखा सके हैं, पर कोई निश्चित आदर्श प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। सर्वत्र एक तटस्थता वर्तमान है। आपकी एकांकियों में भावावेश का स्थान जीवन की अनुभूति और भावनाओं का नैसर्गिक विवेक, बुद्धि, तर्क और संतुलन ने ले लिया है। कृत्रिम क्षणिक भावुकता, सौन्दर्य वासना के चक्र मे वे नहीं पड़े हैं, बुद्धिमान का उनमें विशेष योग है।

कुछ आलोचकों का विचार है कि मिश्रजी द्वारा प्रतिपादित सैक्स समस्या पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों पर आधारित है। मिश्रजी का विचार है फ्रायड से बहुत पहले वात्सायन रति भाव को जान चुके थे। रसराज के रूप में संस्कृत के समूचे साहित्य में शृंगार का वर्णन, यहाँ तक कि महा कवि कालिदास द्वारा शंकर पार्वती की रति, क्रीड़ा का चित्रण फ्रायड को कुछ ऐसी स्थिति में नहीं छोड़ता, जो हमारे देश के किसी मौलिक साहित्यकार

१. डा॰ नगेन्द्र।

अश्क के एकाकी कल्पना के व्योम में विहार करने वाले रोमानी कवि की स्वप्निल पृष्ठ भूमि पर विनिर्मित नहीं हुए हैं, प्रत्युत उनमें यथार्थवाद की ठोस अनुभूतियाँ मानसिक भावों का सूक्ष्म विश्लेषण तथा अन्तर्द्वन्द का पर्याप्त निदर्शन है। द्विवेदी युग के एकांकीकारों में अपने नाटकों का विषय केवल समाज की विद्रूपताओं को ही बनाया था और पात्रों के अन्तंभावों तथा अनुभूतियों की उद्भावना नहीं के बराबर की थी। अश्क ने सभी कृत्रिमताओं से बचते हुए जर्जरित भारतीय समाज के चित्र खींचे हैं। रूढ़िवादिता तथा प्राचीन जीर्ण-शीर्ण परम्परा से हताश मध्यवर्ग के क्रन्दन, प्रेम, घृणा, आनंद विषाद संयोग वियोग के अनेक पहलू अंकित किये हैं। आपके एकांकी गिरती हुई सामाजिक सामन्तशाही के भग्नावेष हैं।

अश्क की वृत्ति अन्तंमुखी है। वे अपनी मनोवैज्ञानिक अन्तंदृष्टि के सहारे आगे बढ़े हैं। किसी प्रसिद्ध नाटक का अनुवाद करने, विचार ग्रहण करने या उसी की शैली का अनुकरण करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। पात्र उनके जाने पहिचाने व्यक्ति हैं। उन्होंने जीवन में विभिन्नता का आभास पाया है। असंख्य सुखद और दुःखद अनुभव उनके मस्तिष्क में सुरक्षित हैं। ये पात्र घटनाएं तथा परिस्थितियाँ किसी व्यक्तिगत चोट से उद्भूत होकर उनके आधार भूत विचारों से संयुक्त हो जाते हैं, उस पर उनकी प्रतिभा का रंग और काव्य सौष्ठव का माधुर्य छा जाता है तथा एकांकी का निर्माण हो जाता है। कई बार दैनिक जीवन के कई पात्र सम्मिलित रूप से एक नवीन पात्र के सृजन में सहायक होते हैं, किन्तु ये नये पात्र नाटक में अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व ले कर आते हैं।

अश्क ने सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, व्यंग्यात्मक, प्रहसन और सांकेतिक प्रायः सभी प्रकार के एकांकियों के प्रयोग किए हैं। जिनमें विषय तथा कलागत वैचित्र्य है। प्रयोग से यह तात्पर्य नहीं कि अश्क ने प्रयोगवाद के दृष्टिकोण से प्रयोग किये हैं अर्थात् प्रचलित शैलियों अथवा साहित्य के रूपों या फार्मों से ऊब कर नई फार्म्स निकाली हैं। अश्क विश्वास दूर की कौड़ी लाने में नहीं है। सब लोग पैरों पर खड़े हों, तो वहां सहसा सिर के बल खड़े हो जाना कि देखने वाले चौंक जायें, अश्क को पसंद नहीं है

किसी घटना अथवा अनुभूति को लेकर जब वे उसे व्यक्त करते हैं, तो यह प्रय न करते हैं कि एकांकी का वह प्रकार फार्म अपनायें, जिसमें वह भावना या संकेत पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो जाये। इस प्रयास में यदि कोई सर्वथा नवीन फार्म आ जाय, अथवा नया प्रयोग हो जाय, तो उन्हें इसमें भी आपत्ति नहीं है, उनकी दृष्टि उस अनुभूति के सुचारु और सर्वांगीण व्यक्तिकरण पर रहती है, प्रयोग मात्र पर नहीं।

अश्क का दृष्टिकोण एक आलोचक का है। वे 'समाज' तथा मानव जीवन के आलोचक हैं। घरों, परिवारों, मनुष्यों के मनों तथा समाज के अन्तराल में जो विद्रूपताए प्रविष्ट हो गई हैं, जिनसे समाज पतन के मार्ग पर जा रहा है। और आगे नहीं बढ़ पा रहा है, अश्क उन्हें उभार कर हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। वे न तो कोई समस्या देना चाहते हैं, न उपदेशक बन कर कोई आदर्श ही उपस्थिति करते हैं। वे तो समाज की आलोचना कर रहे हैं, समाज तथा मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों के भीतरी पर्तों को उखेड़ रहे हैं। उनमें समाज के प्रति एक तीखा व्यंग्य और हल्की सी नैराश्यमयी वेदना अन्तर्निहित है।

अश्क की सबसे बड़ी विशेषता सामाजिक जीवन का अनुवीक्षण तथा नाटकीय स्थिति की पकड़ है। आपका प्रत्येक एकाकी किसी मूल सामाजिक समस्या को लेकर जीवन या समाज की किसी गूढ़ गुत्थी की ओर संकेत करता है, या मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में पूर्ण होकर हृदय के अन्तस्थल को स्पर्श करता है। पात्रों का चरित्र-चित्रण जैसे मनोवैज्ञानिक शैली से किया जाता है, वह अश्क का निजी है।

अश्क मध्यवर्ग के समाज की कमजोरियों, रूढ़ियों तथा जीर्ण शीर्ण परम्पराओं की ओर अनवरत ध्यान दिलाते हैं। वे उपदेश देने में विश्वास नहीं करते, समाज व्यक्ति अथवा संस्थाओं के खोखलेपन, युगों की कवड़ाहट, रूढ़ियों की कमजोरियों का चित्रण इस व्यग्यात्मक शैली से करते हैं कि एकांकी समाप्त करते करते दर्शक का मन उसके प्रति विद्रोह से परिपूर्ण हो उठता है। अधिकार का रक्षक, लक्ष्मी का स्वागत, तूफान से पहले आदि अनेक एकांकी उनकी कला की उपयोगिता के उदाहरण हैं।

अश्क की सांकेतिक पद्धति थॉर्लिकेएट डाउन से उच्च स्तर की है। आपके चरवाहे नमूना, चुम्बक, चिलमन, चमत्कार, खिड़की, सूखी डाली आदि सांकेतिक प्रतीकात्मक एकांकी अंग्रेजी एकांकियों से कहीं अधिक तीखे बन पड़े हैं। इनके पात्र चिर अपरिचित लगने पर भी कुछ विचित्र से अजनबीपन का आवरण ओढ़े दिखाई पड़ते हैं। तथा कई बार तो वे पात्र, पात्र न रह कर स्वयं प्रतीक अथवा संकेत बन जाते है। हिन्दी एकांकी में प्रथम बार अश्क द्वारा सकेतों तथा प्रतीकों द्वारा मार्मिक रहस्य व्यक्त करने की शैली का प्रारंभ हुआ। इन नाटकों में प्रोक्ष प्रतीकों अथवा सकेतों के पर्दे में विषय वस्तु का ताना वाना उलझता सुलझता रहता है। ये प्रतीक जड़ हो अथवा जंगम, प्रायः रंगमंच पर आते हैं लेकिन कई बार प्रोक्ष में रह कर एकांकी पर भारी प्रभाव डालते हैं।

उदाहरण स्वरूप चरवाहे में चरवाहे को चिन्ता रहित जीवन का निश्चयात्मक प्रतीक माना गया है। चिलमन उस दुःख भरे दीपक की प्रतीक है जो हलकी हलकी लेकिन अनश्वर जलन लिये हुए हैं। जीवन के लिये किरण की छटपटाहट अश्क ने लाक्षणिक ढंग पर व्यक्त की है। इस एकांकी में शशि स्टेज पर नहीं आती। किन्तु उसका रूप स्पष्ट सा सामने आता है। यही अश्क के संकेतों की विशेषता है। चमत्कार में संकेतों की गाढ़ तेहरी हो गई है। मृत मीन भ्रष्ट जीवन का, गठवाली गोलियां साधारण लोगों के विश्वास का तथा सेवन टाड़ी वाला सर्ववेत्ता लेखक का प्रतीक है। मैमूना में का वर्तमान पति शरशाद एक प्रकार से मैमूना का ही प्रौढ़ प्रतीक है। चुम्बक में लोहचून के दो कणों, सूखी डाली में वट आइना और सूखी डाली, और खिड़की में प्रतीक्षा करने वाले प्रेमी के संकेत और प्रतीक कलात्मक हैं। १

अश्क ने इसी संकेतात्मक शैली में अन्धी गली एकांकी माला लिखी है। एक गली को ले लिया है, उसके विभिन्न घरों में जो कुछ हो रहा है, उसे भिन्न-भिन्न एकांकियों में चित्रित किया है। यह एकांकी विभिन्न-२ होकर भी

१—श्रीमती अश्क चरवाहे एक अध्ययन में

२—अश्क की स्थापत्य शैली रूमानी परिपाटी के असर में नहीं है। यह कहीं अधिक आधुनिक कहीं अधिक प्रश्नानुकूल है।—श्री जगदीशचन्द्र माथुर

एक ही है तथा हमारा समाज एक अन्धी गली के सदृश्य है, यह संकेत उसमें कलात्मक ढंग से दिखाया गया है। प्रकट रूप में अन्धी गली चाहे किसी बड़े नगर की बीसियों गलियों में से एक गली है, पर परोक्ष में यह ऐसे समाज का प्रतीक है, रूढ़ियां, संकीर्णताओं और वर्जनाओं की दीवारें जिसका मार्ग अवरुद्ध किए हैं और जिनमें एक बार घुसने पर आगे बढ़ने का मार्ग नहीं मिलता।

स्वभाव से गम्भीर तथा संवेदनशील होने के कारण आपके सबसे सफल एकांकी वे हैं, जिनमें मनोविज्ञान तथा दुखान्त कथानक को आधार बनाया गया है, या जिनमें दो विरोधी तत्वों को लेकर आन्तरिक पक्ष का तीव्र संघर्ष उत्पन्न किया गया है। पात्रों में, स्त्री पात्र, विशेष सुचारुता और सचाई से अंकित किये गये हैं जिनमें बेबस पीड़ित, परित्यकता, शोषिता, और यौन विकृति से पीड़ित नारिएँ हैं। इनकी भिन्न-भिन्न मनः स्थितियों में नाना मानसिक जटिलताएं तथा अनुभूतियां हैं। पुरुष पात्रों का मनोविज्ञान उतनी सफलता से चित्रित नहीं हुआ है।

टेकनीक के दृष्टिकोण से अश्क के नाटक मुख्यतः रंगमंच के लिए लिखे गये हैं, यद्यपि वे सुपाठ्य भी हैं। रेडियो एकांकी वे विशेष रूप से तैयार करते हैं और रेडियो पर वे सफलता से प्रसारित हुए हैं। अश्क के नाटकों में एक और भी विशेषता है, जिसे स्थापत्य, संतुलन, कह सकते हैं। एक इमारत जिसके सभी अंग भली भाँति संवार कर शिल्पी ने बनाये हों, जिसकी एक निगाह से देखने पर सम्पूर्णता का आभास हो। ऐसे एकांकी का निर्माण साहित्यिक वस्तुकला का ही करतब कहा जा सकता है। और तृतीय विशेषता जो अश्क के नाटकों में ही नहीं, अन्य रचनाओं में भी है, वह है उनकी ईमानदार अभिव्यंजना। यह अभिव्यक्ति का खरापन अश्क के व्यक्तित्व की परिपक्वता को घोषित करता है।'

कालक्रम के अनुसार अश्क के साहित्य का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं

१—<u>प्रारम्भिक कृत्तियां</u> १६३६ से लेकर १६३६, सामाजिक व्यंग्य:
१. पापी १६३७, २. लक्ष्मी का स्वागत, १६३८, ३. मोहब्बत १६३८, ४.

फ्रासवर्ड पहेली १९३६, ५. अधिकार का रक्षक १९३८, ६. आपस का समझौता १९३९, ७. स्वर्ग की झलक १९३९, ८. विवाह के दिन १९३९, ९. जोंक प्रहसन १९३९,

२—द्वितीय उत्थान: १९४० से १९४३ सांकेतिक और प्रतीकात्मक १. चरवाहे, २. चिलमन १९४२, ३. खिड़की १९४२, ४. चुम्बक व्यंग्य, ५. मैमूना १९४२, ६. देवताओं की छाया में १९४०, ७. छटा बेटा, फैन्टेसी ८. चमत्कार १९४३ ९. सूखी डाली १९४३।

३—तृतीय उत्थान १९४४ से १९५२ मनोवैज्ञानिक एकांकी तथा प्रहसन : १. आदि मार्ग १९४७ २. अंगोदीदी ३. भंवर १९४४, प्रहसन, ४. कैसा साथ कैसी आया ५. अन्धी गली १९५२, ६. पर्दा उठाओ और पर्दा गिराओ १९५१. ७. बतासिया १९५२, ८. सयाना मालिक, ९. कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन १०. मस्केबाजों का स्वर्ग १९५२ ११. जीवन साथी १९५२।

प्रथम वर्ग में अश्क के प्रारम्भिक सामाजिक व्यंग्य हैं। जिनमें समाज की परम्परायों के प्रति क्रांतिकारी रूप प्रकट हुआ है। 'पापी' में सास का बहू पर अत्याचार, समाज में स्त्रियों की निम्न स्थिति, मध्यवर्गीय पतनोन्मुख समाज के शिकजे में जकड़ी हुई नारी का हाहाकार मय चित्रण है। "देवताओं की छाया" में एक भ्रम वयस्त सामाजिक चक्की में पिसने वाली मुस्लिम युवती की जीवन झांकी है। "जोंक" में आधुनिक अतिथियों पर व्यंग्य है। अधिकार का रक्षक में उन सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का खाका खींचा गया है जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। विवाह के दिन में पुरानी वैवाहिक पद्धति पर एक व्यंग्य है। पहेली आधुनिक शिक्षित युवकों के काम से पलायन की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है. आपस का समझौता में डाक्टरों की चालबाजियाँ, धोखा, झूठ, कपट, और ठगने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है। तूफान से पहले में साम्प्रदायिक झगड़ों का सजीव चित्र खींचा गया है। वेश्या प्रेम में अपमान के प्रतिशोध ईर्ष्या, प्रतिक्रिया का अध्ययन है। तौलिये में तकल्लुफ और बाह्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति पर आघात है, पक्का गाना में साहित्यिक वैराइटी है, जिसमें भारती [illegible] तथा [illegible] जगत की आलोचना की गई है।

द्वितीय उत्थान में अश्क के संकेतात्मक प्रतीकात्मक एकांकी आते हैं। चरवाहे, मैमूना, चुम्बक, चिलमन, खिड़की, चमत्कार, सूखी डाली, इत्यादि का महत्त्व उनके संकेतों या प्रतीकों में है जो हिन्दी एकांकी में सर्वथा नवीन प्रयोग है और जिसका सू पात अश्क ने किया है। ये सभी सामाजिक व्यंग्य हैं और समाज की कमजोरियों पर अंगुली रख देते हैं। भाव तथा प्रतिपादन दोनों में अश्क का प्रचुर विकास हुआ है और वे चौकन्ने सूक्ष्म दृष्टा और अन्तर्मुखी बन गए हैं। पृष्ठभूमि में संगीत की सहायता से वातावरण के निर्माण में सहायता ली गई है।

तृतीय उत्थान में अश्क की प्रवृत्ति निरन्तर अन्तर्मुखी होती चली गई है। बाह्य जगत की अपेक्षा आपके अध्ययन का मूल केन्द्र आन्तरिक जगत का रहस्योद्घाटन रहा है। अश्क ने मानव चरित्र का गहन अध्ययन किया है। और पात्रों के मनोविज्ञान पर आपकी दृष्टि अधिक रही है। आदि मार्ग, भवर इत्यादि एकांकियों में मनोवैज्ञानिक गहराई दर्शनीय है। चरित्रगत जटिलताओं, पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं, त्रुटिओं, चरित्र की गुत्थियों, भावनाओं तथा मनोवेशों का कुशल मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है।

प्रहसनों में अश्क की अतिरंजना शैली का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके पात्र कार्टून नहीं हैं। उनके मजाक स्थूल नहीं हैं, उनकी परिस्थितियां सरकस की कलाबाजियां नहीं हैं उनकी पैनी दृष्टि दैनिक जीवन में ही अट्टहास की सामग्री खोज निकालती हैं और चित्र पट पर हू बहू उतार देती हैं। अश्क की विनोद भावना वार्त्तालाप के विद्रूप या पात्रों के भोंडे व्यवहार के रूप में प्रकट नहीं होती, बल्कि चरित्र और कार्य सम्पादन की पृष्ठ भूमि के रूप में। अश्क के नाटकों में व्यंग्य की प्रतीति एक महीन वातावरण के रूप में होती हैं, जिसके साधन हैं हल्की सी फब्तियां, सांकेतिक कार्य सम्पादन, और पात्रों की अनजान कमजोरियां का थोड़ा बहुत उभार। ये प्रहसन सूक्ष्म, सयत और मार्मिक हैं। ॐ

श्री जगदीशचन्द्र माथुर

श्री जगदीशचन्द्र माथुर का रचना काल १९३६ से प्रारम्भ होता है इनके प्रथम एकांकी 'मेरी बांसुरी' १९३६ में प्रकाशित हुआ था। आपक सबसे बड़ी विशेषता रंगमंच की टेकनीक पर उनका पूर्ण अधिकार है।

बचपन से ही आपको अभिनय के प्रति रुचि रही है। प्रारम्भिक नाट 'बालसखा' में प्रहसन के रूप में प्रकाशित हुये। चौदह पन्द्रह वर्ष की आयु आपने शिवाजी पर द्विजेन्द्रलाल राय की शैली में एक एकांकी लिखा था जिसका प्रारम्भिक अंश सेवा में सन् १९३० में प्रकाशित हुआ था। तत्पश्चा १९३६ में म्योर होस्टल के रंगमंच के निमित्त मेरी बांसुरी नामक ए आधुनिक एकांकी लिखा जो दूसरे वर्ष सरस्वती में प्रकाशित हुआ था। यद्य इसमें टेकनीक की अपरिपक्वता झलकती है किन्तु आधुनिक पाश्चात्य शै के गुण स्पष्ट हैं। नाटककार की कला के विकास में बांसुरी नाटक का विशे स्थान है। इसके पश्चात् क्रमानुसार आपके एकांकी इस प्रकार प्रकाशित हु हैं—१. भोर का तारा (१९३७) २. कलिंग विजय (१९३७) ३. री[illegible] की [illegible] (अक्टूबर १९३९) ४. मकड़ी का जाला (१९४१) ५. खंड[illegible] (१९४३) ६. खिड़की की राह (१९४९) ७. ओ मेरे सपने (१९५३) इन नाटकों में मकड़ी का जाला तथा खिड़की की राह को छोड़कर शेष नाट [illegible] पर सफलता पूर्वक अभिनीत हो चुके हैं। खंडहर अँग्रेजी [illegible] हुआ है।

[illegible] आधुनिक जगत की नाना समस्याओं पर व्यंग्य करते हैं [illegible] के छोटे [illegible] का यथार्थवादी चित्रण करने में श्री माथु [illegible] है [illegible] विशेषता यह है कि इनके नाटक केवल

समस्या नाटक मात्र बन कर नहीं रह जाते। पात्रों में कोई भी उनका माउथ पीस बन कर नहीं रह जाता, उसका एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व और चारित्रिक विशेषताएं स्पष्ट चित्रित की जाती है।

आपने पुराने सुधारवादी नाटको का परिष्कार किया है, अपना व्यंग्य और अभिनय ज्ञान लगाकर आपने पात्रों के व्यक्तिव को सुरक्षित रखा है। उन्हें यह बात अप्रिय लगी कि आधुनिक पृष्ट-भूमि पर विनर्मित नाटक समस्या की ओर संकेत या स्पष्टतः उसके विवेचन में लग कर कला-विहीन हो जाते हैं। अधिकतर पात्र नाटककार के विचारों के प्रतीक बन जाते हैं। विचारों तथा दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण तो हो जाता है पर नाटकीयता लुप्त हो जाती है, पात्र निर्जीव हो जाते हैं। कथोपकथन वाद विवाद का रूप धारण कर लेता है। श्री माथुर ने इन सभी दुर्गुणों से एकांकी कला की रक्षा की है।

कलिंग-विजय तथा मोर का तारा का वातावरण सांस्कृतिक है, पृष्टभूमि ऐतिहासिक है। इनको दो नाटकों की शैली भाषा और टेकनीक विधियों की गुरु गम्भीरता के उपयुक्त उतनी ऊंची नहीं उठ सकी है। विचारों की गम्भीरता से नाटकीयता दब गई है।

श्री माथुर के सबसे सफल एकांकी सामाजिक हैं। इनमे विचारधारा समस्या वातावरण का पूर्ण परिवाक है। आपका सर्वोत्कृष्ट नाटक खॅडहर है जिसमें वातावरण का मनोरम चित्रण है। चन्द्रमा की शीतल चन्द्रिका में जब सब मदहोश हो जाते हैं, फैन्टसी के उपयुक्त बड़े सफल वातावरण का निर्माण होता है। गुप्त मनोभावों, तथा दलित अनुभूतियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण यहां बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है। रीढ़ की हड्डी एक सफल और सबल व्यंग्य है। स्त्रियों की बेबसी और सामाजिक स्थिति का इससे अनुमान किया जा सकता है। खिड़की की राह में एक फरार संगीतकार, जो शादी से मुक्ति के लिए घर से भाग निकाला था, के अप्रत्याशित ढंग से वैवाहिक बन्धन में बध जाने का मार्मिक कथानक है। टेकनिक रेडियो का है। इसमें अत्याधुनिक समाज की रोचक झांकी दिखाई गई है। अन्य विषय जिन पर नाट्यकार ने व्यंग्य किये हैं, बाह्य प्रदर्शन रंगीली चहल-पहल, शिक्षित समाज के रोमांस, दाम्पत्य जीवन के नये मापदण्ड, पश्चिमी सभ्यता तथा शिक्षा से

प्रभावित नई समस्याये वैवाहिक गुत्थियां नारी को मुग्ध करने की कृत्रिम चेष्टाएँ प्रेम के अस्थिर स्वरूप, आत्म प्रतारणा, विद्यार्थी जीवन का हलका उत्तरदायित्व विहीन वादन्द, पिकनिकें, रोमांस, छायालोक के अनूठे अनुभव, खोखले नेतृत्व का आकर्षण, चमक-दमक, मनोरंजन पेट-पूजा आदि अँग्रेजी शिक्षा और संस्कृत में पले हुए ड्राइंगरूमों और सिनेमाघरों से प्रभावित समाज आदि हैं। आपके एकांकी साहित्य में एक ओर सभ्य कहाने वाले समाज की मस्ती, धन लोलुपता, और मिथ्या प्रदर्शन का चित्रण किया है, तो दूसरी ओर मध्यमश्रेणी के निम्नतम भाग में रहने वाले गरीब क्लर्क, बाबू लोग, और मामूली कर्मचारियों का भी चित्रण किया है, जो बेरहम और बदसूरत जमाने की ठोकरें खा रहे हैं।

संक्षेप में माथुर साहब ने समाज की समस्याओं में मुख्यतः वस्तुवाद, मिथ्या दिखावा, बाह्य आडम्बर मध्यवर्ग के उच्च स्तर की हृदय हीनता, व्यापारी वर्ग की भौतिकता, विद्यार्थी जीवन की झूठ फरेब, नैतिक क्षीणता, बौद्धिक उन्नति के साथ शिष्ट जीवन में आन्तरिक और सांस्कृतिक खोखलेपन पर व्यंग्य किया है। मध्यवर्ग उनकी आलोचना का केन्द्र है। उच्च मध्यवर्ग में आपके भोलानाथ, रामस्वरूप, गोपालप्रसाद, सुधाकर निरंजन, निर्मला, नर्गिस, नलिनी, उर्मिला आदि रखे जा चुके हैं। निम्न-मध्य वर्ग में वे क्लर्क, म्युनिस्पेलिटी या बैंकों के बाबू लोग हैं जो समाज की निर्मम चक्की में पिसते जारहे हैं जैसे नन्दलाल, मकबूल अहमद, यूसुफ आदि। इस समाज की कारुणिक दशा, दयनीय स्थिति, पिसे हुये अरमानों का बड़ा दर्दनाक चित्रण इनके एकांकियों में मिलता है।

आपके कथोपकथन मर्मस्पर्शी हैं तथा उनपर आदर्शवाद की छाप है। "मेरी बांसुरी" आधुनिकतम भाषा शैली के प्रयोग से परिपूर्ण हैं। इसमें कालेज के उच्च शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों का चित्रण है। कहीं अँग्रेजी उक्तियों का अनुवाद मय अनुकरण उपस्थित है। मेरी बांसुरी में सुधाकर नायक पात्र के वक्तव्य में जूलियस सीजर की छाया है।

"""मैं जिस काम में हाथ डालता हूँ तो निराशा का स्वाद लेने के लिए नहीं। "आई केम, आई सौ, आई कानकर्ड"।

टेक्नीक के क्षेत्र में श्री माथुर का कार्य विशेष महत्त्व का है। प्रारम्भिक स्थल में वस्तुस्थिति का संक्षेप में निर्देश होता है, किन्तु आगे चलकर विकास मवर्ष उत्तरोत्तर वृद्धि पर रहता है और विविध उपादनों से गति संग्रह करता हुआ एकांकी चरमोत्कर्ष तक बढ़ता है। पात्रों का आन्तरिक द्वन्द दिखाने के लिए आप विशेष परिश्रमशील रहते हैं।

रंगमच के सम्बन्ध में आपका अनुभव तथा अध्ययन गहन है तथा हिंदी नाट्यकला के विकास में अपना विशेष स्थान रखता है। आपका विचार है कि संवेदनशील अभिनय के द्वारा ही सच्चे वातावरण और अनुभूति का सृजन हो सकता है। यूरप से भी हम अधकचरा ज्ञान उधार ले सके हैं। फलत. एक ओर तो हमारा नाट्य साहित्य है जिसकी जड़ें गीता के संसार रूपी अश्वत्थवृक्ष की भांति उर्ध्वमुखी हैं, और दूसरी ओर हमारा नाम मात्र का रंगमच है कठपुतलियों के तमाशे की तरह कृत्रिम और सांस्कृतिक अनुभूतियों से शून्य। अतः आपके अनुसार हिन्दी नाट्यकार को अपने नाटक के रंगमंच सम्बन्धी पहलू पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। रंगमंच के निर्माण निर्देशक के कर्त्तव्य, ग्रीनरूम, मैकयप, अभिनय संकेत, पर्दों का उठाना गिराना, निर्देश करने वालों के कर्त्तव्यों का बटवारा, तथा रिहर्सल के सम्बन्ध में आपने अनुभवपूर्ण संकेत प्रदान किए हैं। आप शा की भांति निर्देशक को सब कुछ ज्ञान दे देना चाहते हैं और स्टेज इफेक्ट अन्तिम प्रभाव को अपने हाथ में रखना चाहते हैं।

आप संगीत को रंगमच के लिए आवश्यक समझते हैं। आपका विचार है कि भारतवर्ष में संगीत विहीन रंगमंच नहीं जम सकता। हम स्वभावतः संगीत प्रिय और किसी हद तक रोमांटिक जाति के हैं। आधुनिकतम पाश्चात्य नाटकों में भी यद्यपि गाने तो नहीं के बराबर होते हैं तथापि भावों का आरोह अवरोह दिखाने के लिए बैंक ग्राउन्ट म्यूजिक प्रायः रखा जाता है। आपने इसी प्रकार का कलात्मक विधान रखा है। वायलिन और सितार की ध्वनि का उपयोग भी आपने वांच्छनीय समझा है। पात्रों की पोशाक की ओर श्री माथुर ने नाट्यजगत का ध्यान आकृष्ट किया था और वेशभूषा सम्बन्धी मनमानी आलोचना की थी। कुछ निर्देशकों का मत है कि रंग-

ंच पर सदैव भव्य और शानदार पोशाक होना चाहिये। आपके अनुसार दक्ष निर्देशक स्त्री, यदि वह प्राचीन युग का प्रदर्शन करता है, तो उसे उस काल के चित्र तथा मूर्तियों का अध्ययन करके यथा साध्य वैसी ही वेशभूषा उपस्थित करनी चाहिए। यदि आधुनिक समाज का दृश्य है तो जिस वर्ग का कोई पात्र है, उसीके अनुरूप वस्त्र भी रखने चाहिए। साधारण स्थिति के घरों में जैसे वस्त्र हों, उनसे भी काम चल सकता है। सूझ और कलात्मक बुद्धि से मेकअप तैयार होना चाहिए। स्त्री पात्रों के विषय में श्री माथुर का विचार है कि स्त्रियां ही उन्हें अभिनय करें। जिस समय भारत में उन्नति रंग-मंच था, और मृच्छकटिक तथा स्वप्नवासवदत्ता अभिनय किये जाते थे तब प्रश्न उठता ही नहीं था। इस कृत्रिमता का बहिष्कार होना चाहिए। उपयुक्त विषयों के अतिरिक्त श्री माथुर ने दर्शकों की अनुशासन हीनता की ओर ध्यान आकृष्ट किया और रुचि परिमार्जन की आवश्यकता बतलाई है। रंग-मंचीय सुधार की दृष्टि से माथुर साहब के विचार बड़े मूल्यवान सिद्ध हुए हैं। उनके हाथ में नाटक यथार्थवाद की ओर अग्रसर हुआ, रंगमं । सम्बन्धी कृत्रिमता विलुप्त हो गई।

वातावरण सृष्टि की दृष्टि से आप विशेष सफल रहते हैं। अपने 'कोणार्क' में यूनानी नाट्यकारों के से तमसावृत्त बेटल इनविटेबिलिटी से परिपूर्ण वातावरण में कलाकार के विद्रोही व्यक्तित्व की सफल अवतारणा की है। इसके लिए आपने संगीत पृष्ठभूमि का संगीत, रंगीन बिजली बल्ब, सजावट तथा अन्य नवीनतम प्रसाधनों का उपयोग किया है। पाश्चात्य एकांकीकारों की भांति आपकी स्टेज सूचनाएं विस्तृत, सूक्ष्म और व्यापक हैं। आपकी प्रभाव व्यंजना अद्वितीय है।

श्री भुवनेश्वर प्रसाद

कालक्रम के अनुसार भुवनेश्वर का सर्वप्रथम एकांकी "श्यामा-एक वैविहिक विडम्बना" (हंस दिसम्बर १६३३) था। तत्पश्चात् "पतित' (बाद में "शैतान" कर दिया गया हंस १६३४) प्रकाशित हुआ था। फिर क्रमशः "एक साम्यहीन साम्यवादी" (हंस मार्च १६३४); प्रतिभा का विवाह (१६३२); "रहस्य रोमांच" (१६३५); "लाटरी" (१६३५); "मृत्यु" (हंस १६३६) में प्रकाशित हुए। ये कृतियां पाश्चात्य प्रभावों से युक्त हैं तथा कुछ नाटकों में विचार साम्य ही नहीं, शा के अनुवाद जैसे प्रतीत होते हैं।

इनके पश्चात् जो एकांकी प्रकाशित हुए वे परिपक्व हैं। पाश्चात्य प्रभाव। पूर्णतः समाविष्ट हो चुका है; कलापक्ष और भावपक्ष दोनों में प्रौढ़ता है। इस वर्ग में "हम अकेले नहीं हैं" तथा "सवा आठ बजे" (भारत १६३७); स्ट्राइक" तथा "ऊसर" (हंस १६३८) में प्रकाशित हुए हैं। १६३८ में भुवनेश्वर ने एक पूरा नाटक लिखने की योजना बनाई। यह था उनका "आदमखोर" (रूपाभ १६३८) इसका केवल प्रथम अंक प्रकाशित हुआ था, और यह मौलिक विचारधारा से परिपूर्ण है। भुवनेश्वर की कला और विचारों के क्रमागत विकास में यह नाटक अपना विशेष स्थान रखता है। इसका यथार्थवाद यद्यपि भुवनेश्वर के अब तक के सभी नाटकों से कठोर है, किन्तु इसी नाटक में उनकी बुनियादी अभिरुचि प्रतीकात्मक हो गई है, जिसका प्रखररूप उनके आज के नाटकों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। नाटकीय यथार्थवाद को जो अर्थ भुवनेश्वर देते हैं, यह नाटक उसका प्रतिनिधि

फ्रासवर्ड पहेली १९३६, ५. अधिकार का रक्षक १९३८, ६. आपस का समझौता १९३९, ७. स्वर्ग की झलक १९३९, ८. विवाह के दिन १९३९, ९. जोक प्रहसन १९३९,

<u>२—द्वितीय उत्थानः</u> १९४० से १९४३ साँकेतिक और प्रतीकात्मक १. चरवाहे, २. चिलमन १९४२, ३. खिड़की १९४२, ४. चुम्बक व्यंग्य, ५. मैमूना १९४२, ६. देवताओं की छाया में १९४०, ७. छटा बेटा, फेन्टेसी ८. चमत्कार १९४३ ९. सूखी डाली १९४३।

<u>३—तृतीय उत्थान</u> १९४४ से १९५२ मनोवैज्ञानिक एकांकी तथा प्रहसन : १. आदि मार्ग १९४७ २. अंगोदीदी ३. भंवर १९४४, प्रहसन, ४. कैसा साथ कैसी आया ५. अन्धी गली १९५२, ६. पर्दा उठाओ और पर्दा गिराओ १९५१. ७. बतासिया १९५२, ८. सयाना मालिक, ९. कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन १०. मस्केबाजों का स्वर्ग १९५२ ११. जीवन साथी १९५२।

प्रथम वर्ग में अश्क के प्रारम्भिक सामाजिक व्यंग्य हैं। जिनमें समाज की परम्परायों के प्रति क्रांतिकारी रूप प्रकट हुआ है। 'पापी' में सास का बहू पर अत्याचार, समाज में स्त्रियों की निम्न स्थिति, मध्यवर्गीय पतनोन्मुख समाज के शिकजे में जकड़ी हुई नारी का हाहाकार मय चित्रण है। "देवताओं की छाया" में एक भ्रम वग्रस्त सामाजिक चक्की में पिसने वाली मुस्लिम युवती की जीवन झांकी है। "जांक" में आधुनिक अतिथियों पर व्यग्य है। अधिकार का रक्षक में उन सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का खाका खींचा गया है जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। विवाह के दिन में पुरानी वैवाहिक पद्धति पर एक व्यग्य है। पहेली आधुनिक शिक्षित युवकों के काम से पलायन की प्रवृत्ति पर व्यग्य है. आपस का समझौता में डाक्टरों की चालबाजियाँ, धोखा, झूठ, कपट, और ठगने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है। तूफान से पहले में साम्प्रदायिक झगड़ों का सजीव चित्र खींचा गया है। वेश्या प्रेम में अपमान के प्रतिशोध, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा का अध्ययन है। तौलिये में तकल्लुफ और वाह्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति पर आघात है, पक्का गाना में साहित्यिक बैराददी है, जिसने भारतीय [illegible] की आलोचना की गई है।

द्वितीय उत्थान में अश्क के संकेतात्मक प्रतीकात्मक एकांकी आते हैं। चरवाहे, मैमूना, चुम्बक, चिलमन, निर्दर्शी, नमस्कार, सूखी डाली, इत्यादि का महत्व उनके संकेतों या प्रतीकों में है जो हिन्दी एकांकी में अनोखा नवीन प्रयोग है और जिसका सूत्रपात अश्क ने किया है। ये सभी सामाजिक व्यंग्य हैं और समाज की कमजोरियों पर अंगुली रख देते हैं। भाव तथा प्रतिपादन दोनों में अश्क का प्रचुर विकास हुआ है और ये नौवस्थ सूक्ष्म हुए और अन्तर्मुखी बन गए हैं। पृष्ठभूमि में संगीत की सहायता से वातावरण के निर्माण में सहायता ली गई है।

तृतीय उत्थान में अश्क की प्रवृत्ति निरन्तर अन्तर्मुखी होती चली गई है। बाह्यजगत की अपेक्षा आपके अध्ययन का मूल केन्द्र आन्तरिक जगत का रहस्योद्घाटन रहा है। अश्क ने मानव चरित्र का गहन अध्ययन किया है। और पात्रों के मनोविज्ञान पर आपकी दृष्टि अधिक रही है। छादि मार्ग, भवर इत्यादि एकांकियों में मनोवैज्ञानिक गहराई दर्शनीय है। नारीजगत जटिलताओं, पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं, त्रुटियों, चरित्र की ग्रन्थियों, भावनाओं तथा मनोवेगों का कुशल मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है।

प्रहसनों में अश्क को अतिरंजना शैली का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके पात्र कार्टून नहीं हैं। उनके मजाक स्थूल नहीं हैं, उनकी परिस्थितियां सरकस की कलाबाजियां नहीं हैं उनकी पैनी दृष्टि दैनिक जीवन में ही अट्टहास की सामग्री खोज निकालती है और चित्र पट पर ला उतार देती हैं। अश्क की विनोद भावना वार्त्तालाप के विद्रूप या पात्रों के भोंडे व्यवहार के रूप में प्रकट नहीं होती, बल्कि चरित्र और कार्य सम्पादन की पृष्ठ भूमि के रूप में। अश्क के नाटकों में व्यंग्य की प्रतीति एक महीन वातावरण के रूप में होती है, जिसके साधन हैं हलकी सी फब्तियां, सांकेतिक कार्य सम्पादन, और पात्रों की अनजान कमजोरियों का थोड़ा बहुत उभार। ये प्रहसन सूक्ष्म, संयत और मार्मिक हैं। *

---

* देखिये : श्री जगदीशचन्द्र माथुर, "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ" पृष्ठ १३ भूमिका।

मंच पर सदैव भव्य और शानदार पोशाक होना चाहिये। आपके अनुसार दक्ष निर्देशक स्त्री, यदि वह प्राचीन युग का प्रदर्शन करता है, तो उसे उस काल के चित्र तथा मूर्तियों का अध्ययन करके यथा साध्य वैसी ही वेशभूषा उपस्थित करनी चाहिए। यदि आधुनिक समाज का दृश्य है तो जिस वर्ग का कोई पात्र है, उसीके अनुरूप वस्त्र भी रखने चाहिए। साधारण स्थिति के घरों में जैसे वस्त्र हों, उनसे भी काम चल सकता है। सूक्ष्म और कलात्मक बुद्धि से मेकअप तैयार होना चाहिए। स्त्री पात्रों के विषय में श्री माथुर का विचार है कि स्त्रियां ही उन्हें अभिनय करें। जिस समय भारत में उन्नति रंग-मंच था, और मृच्छकटिक तथा स्वप्नवासवदत्ता अभिनय किये जाते थे तब प्रश्न उठता ही नहीं था। इस कृत्रिमता का बहिष्कार होना चाहिए। उपयुक्त विषयों के अतिरिक्त श्री माथुर ने दर्शकों की अनुशासन हीनता की ओर ध्यान आकृष्ट किया और रुचि परिमार्जन की आवश्यकता बतलाई है। रंग-मंचीय सुधार की दृष्टि से माथुर साहब के विचार बड़े मूल्यवान सिद्ध हुए हैं। उनके हाथ में नाटक यथार्थवाद की ओर अग्रसर हुआ, रंगमंच सम्बन्धी कृत्रिमता विलुप्त हो गई।

वातावरण सृष्टि की दृष्टि से आप विशेष सफल रहते हैं। अपने 'कोणार्क' में यूनानी नाट्यकारों के से तमसावृत्त वेटल इनविटेबिलिटी से परिपूर्ण वातावरण में कलाकार के विद्रोही व्यक्तित्व की सफल अवतारणा की है। इसके लिए आपने संगीत पृष्ठभूमि का संगीत, रंगीन बिजली बल्ब, सजावट तथा अन्य नवीनतम प्रसाधनों का उपयोग किया है। पाश्चात्य एकांकीकारों की भांति आपकी स्टेज सूचनाएं विस्तृत, सूक्ष्म और व्यापक हैं। आपकी प्रभाव व्यंजना अद्वितीय है।

श्री भुवनेश्वर प्रसाद

कालक्रम के अनुसार भुवनेश्वर का सर्वप्रथम एकांकी "श्यामा-एक वैवि-हिक विडम्बना" (हंस दिसम्बर १६३३) था। तत्पश्चात् "पतित' (बाद में "शैतान" कर दिया गया हंस १६३४) प्रकाशित हुआ था। फिर क्रमशः "एक साम्यहीन साम्यवादी" (हंस मार्च १६३४); प्रतिभा का विवाह (१६३२); "रहस्य रोमांच" (१६३५); "लाटरी" (१६३५); "मृत्यु" (हंस १६३६) में प्रकाशित हुए। ये कृतियां पाश्चात्य प्रभावों से युक्त हैं तथा कुछ नाटकों में विचार साम्य ही नहीं, शा के अनुवाद जैसे प्रतीत होते हैं।

इनके पश्चात् जो एकांकी प्रकाशित हुए वे परिपक्व हैं। पाश्चात्य प्रभाव पूर्णतः समाविष्ट हो चुका है; कलापक्ष और भावपक्ष दोनों में प्रौढ़ता है। इस वर्ग में "हम अकेले नहीं हैं" तथा "सवा आठ बजे" (भारत १६३७); स्ट्राइक" तथा "ऊसर" (हंस १६३८) में प्रकाशित हुए हैं। १६३८ में भुवनेश्वर ने एक पूरा नाटक लिखने की योजना बनाई। यह था उनका "आदमखोर" (रूपाभ १६३८) इसका केवल प्रथम अंक प्रकाशित हुआ था, और यह मौलिक विचारधारा से परिपूर्ण है। भुवनेश्वर की कला और विचारों के क्रमागत विकास में यह नाटक अपना विशेष स्थान रखता है। इसका यथार्थवाद यद्यपि भुवनेश्वर के अब तक के सभी नाटकों से कठोर है, किन्तु इसी नाटक में उनकी बुनियादी अभिरुचि प्रतीकात्मक हो गई है, जिसका प्रखररूप उनके आज के नाटकों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। नाट-कीय यथार्थवाद को जो अर्थ भुवनेश्वर देते हैं, यह नाटक उसका प्रतिनिधि

हुई। इस नाटक की विशेषता उसका वातावरण था और यह एक अति उन्नत रंगमंच की अपेक्षा करता था। ऐतिहासिक एकांकियों के क्षेत्र में भुवनेश्वर ने कुछ और कलात्मक प्रयोग किये। "सिकन्दर" (संगम १९५०) "अकबर", तथा ' न्योजन्वां" (१९५०) की पूर्व परिस्कृत रचनायें हैं। आपकी नवीनतम कृति 'सीको नी गादी' (१९५०) है।

'शा' तथा अन्य पाश्चात्य नाटकों से प्रभावित एकांकियां में है, श्यामा: (१) वैवाहिक विडम्बना (२) एक साम्यहीन साम्यव दी (३) शैतान (४) प्रतिमा का विवाह (५) रोमांस-रोमांच (६) लाटरी इत्यादि प्रमुख हैं। इसमें चित्रित जीवन की समस्यायें भारतीय समस्याओं से मेल नहीं खाती। इनकी मूल भावना पाश्चात्य समाज से ली गई हैं जैसे—दो पुरुषों का रोमांस की भावना से भरकर एक प्रेमिका के लिए संघर्ष, विवाहिता पत्नी का पति के सन्मुख दूसरे पुरुष से प्रेम सम्बन्ध, और पति का विवश सा होना, समाज में धनिक विधवा का प्रेम और नैतिक सम्बन्ध; सुशिक्षित स्त्रियों का सामाजिक प्रतिष्ठा को मातृत्व के मुकाबिले में अधिक श्रेयस्कर समझना, सभ्य और शिक्षित स्त्रियों का काम पिपासा शान्त करने का प्रयत्न, विवाहित जीवन में पति आर्थिक उपयोगिता, पति की अनुपस्थिति में पर पुरुष का दूसरे की पत्नी को प्राप्त कर लेना। ये समस्यायें सेक्स में केन्द्रित हैं तथा हिन्दी के लिए सर्वथा अभूतपूर्व थीं। भुवनेश्वर ने फ्रायड के मनोवैज्ञानिक विचारों से प्रभावित होकर इनमें मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि के साथ चित्रित किया।

भुवनेश्वर ने सामाजिक रूढ़ियों, प्रचलित किन्तु कृत्रिम विचार स्वातन्त्र्य साम्यवाद, विवाह वैषम्य तथा मनुष्य के अन्तर्जगत् में उठने वाले काम वासना प्रेम, क्रोध, कातरता, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा आदि मनोविकारों से उत्पन्न मानसिक जटिलताओं का मार्मिक चित्रण किया है। इनका द्वन्द्व बाह्य की अपेक्षा आंतरिक अधिक है; बुद्धि की अपेक्षा हृदय का है। बुद्धि नैतिक बन्धन मान सकती है किन्तु हृदय सर्वथा स्वच्छन्द है। वह समाज के कृत्रिम नियंत्रण में नहीं बँध सकता। इन नाटकों के स्त्री पात्र बुद्धि के कृत्रिम अनुशासन से नहीं, अन्तस्थल से उद्भूत भावनाओं से परिचालित होते हैं। भुवनेश्वर की एक विशेषता

आधुनिक मन:विश्लेषण का प्रयोग है। नारी तथा पुरुष का मन:विश्लेषण बड़ा सूक्ष्म तथा पूर्ण है।

इन एकांकियों का मूल केन्द्र सेक्स तथा विभिन्न मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का आवेगमय चित्रण है। हिन्दू समाज के कठोर नियंत्रण रूढ़ियों एवं पाखण्ड तथा जीर्ण-शीर्ण संस्थायें, आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवक युवतियों की वासना अनियन्त्रित रूप से भड़ककर विकृत हो चुकी है। समाज के फौलादी नियन्त्रणों में आधुनिक पुरुष की यौन-क्षुधा अतृप्त रहती है। जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ रही है, वैसे-वैसे शिक्षित एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न मध्य-वर्ग की सेक्स भावना ग्रन्थियाँ जटिलतर होती जा रही हैं। इस प्रकार की क्रान्तिकारी भावना से परिपूर्ण समस्याओं में भुवनेश्वर ऐसे उलझ गये हैं कि कहीं-कहीं यह भ्रम होता है कि ये नाटक भारत के लिए हैं, या पश्चिमी प्रदेशों के विकसित समाज के लिए। उन्मुक्त प्रेम, वैवाहिक वैषम्य, बाहर से सुसंस्कृत किन्तु अन्दर से अनेक जटिलताओं के पुलन्दे पात्र प्रारम्भिक नाटकों को कुछ कृत्रिम और अस्वाभाविक बनाती हैं। इनके पात्र मध्यवर्ग के प्रतिष्ठित नागरिक हैं, किन्तु उनके अन्दर आज भी वही बर्बरता बैठी हुई है, जो मानव की सभ्यता के प्रारम्भिक युग में थी। भुवनेश्वर कहते हैं!—

"मनुष्य अपनी बुद्धि स्थूलता से वस्तुओं का वास्तविक रूप छिपाये हुए है—मानव जीवन की यही एक समस्या है। हमारा आधुनिक युग एक पागल वृद्धा के समान है। इसे बकने दो; और यदि तुम सतर्क नहीं हो, तो बर्तन, कुर्सियां और टेबुल भी तोड़ने दो .....।"

भुवनेश्वर पर पाश्चात्य प्रभाव इतना अधिक है कि उपरोक्त समस्याओं को सुलझाते हुए वे पाश्चात्य समाज जैसे समाज की कल्पना कर लेते हैं। उनके भारतीय नाम और योरपीय उन्मुक्त प्रेम, सेक्स, वैवाहिक-वैषम्य की समस्याएँ उनके प्रारम्भिक नाटकों को अवास्तविक सा बना देते हैं।

आपकी अधिकांश समस्याएँ विदेशी सामाजिक जीवन से प्रभावित हैं, जिस समाज का चित्रण इनमें उपलब्ध है वह कृत्रिम नैतिक दृष्टि से खोखला, सेक्स क्षुधा में तड़पता हुआ है, उसकी मान्यताओं में स्त्री के पतिव्रत धर्म पर

आस्था नहीं है, वह वस्तुवादी (Materalistic) है। भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का इस समाज पर कोई बन्धन नहीं दीखता क्योंकि यह दैवी सम्पद् समाज में ही लोप हो चुकी है।

इन नाटकों में भुवनेश्वर सन्देहवादी (Cynic) हो गये हैं। सन्देह को "बुद्धि के लिए विश्राम" मानते हैं। आज के समाज की नैतिक निष्ठा पर उन्हें कोई आस्था नहीं है। कुछ नाट्यकारों ने उन्हें निराशावादी कहा है।१ वास्तव में भुवनेश्वर निराशावादी नहीं हैं। उनकी सामाजिक आलोचनाएँ विध्वसात्मक है, सृजनात्मक नहीं। उन्होंने मध्यवर्गीय समाज को यथार्थवाद की दृष्टि से देखा है और मर्म स्थलों पर उँगली रख दी है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रेम काव्य स्वरूप होना चाहिए—यह प्रस्तुत किया है।

भुवनेश्वर समस्या का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देते। उत्तर दिखानेवाली स्थितियों, घटनाओं, व्यापारों तथा कार्यकारण परम्परा को चित्रित भर कर देते हैं। वह एक पर्दा सा फाड़कर हमें भीतर झांकने के लिए जैसे बाध्य कर देते हैं और फिर प्रश्न करते हैं—'बोलो यह क्या है? तुम्हारे सभ्यता का स्वांग करने वाले समाज में ऐसे-ऐसे भी कार्य चलते हैं? क्या मानव पुरानी बर्बरता, पशुता या स्वार्थ से कुछ आगे बढ़ सका है?" उनके विचार तथा प्रतिपादन में बरनार्ड शा का पूरा प्रभाव है। भुवनेश्वर ने इन नाटकों में शा से आदान-प्रदान के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है—"लिखने के बाद मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे "शैतान" के एक सीन में शा की छाया तनिक मुखर हो गई है मैं इसे निर्विवाद स्वीकार करता हूं।"

अपने बाद के नाटकों में भुवनेश्वर अपने प्रौढ़तम रूप में प्रकट हुए हैं। इन नाटकों में "ताँबे के कीड़े"; "जेरूसलम को"; तथा "सिकन्दर" सबसे

१—देखिये डा० नगेन्द्र के ये विचार—

"इस निराशा की जननी ज्ञान-जन्य विरक्ति नहीं है, ईर्ष्या और जलन है—असफलता की कुढ़न है। उनके हृदय में जीवन के प्रति उपेक्षा या तिरस्कार की भावना नहीं है, उसमें व्यंग्य का विष है, बटलर (Butler) का सा, कबीर-सा नहीं, उसमें 'नहीं" है, "हां" कहीं भी नहीं

उत्तम रचनाएँ हैं। "ताँबे के कीड़े" में आज की समाज व्यवस्था के प्रति चुभता व्यंग्य है। इसमें नाना प्रकार के व्यक्तियों (एक परेशान रमणी, मसरूफ पति, थके हुए अफसर, एक रिक्शा कुली, पागल आया) का बड़ा यथार्थवादी चित्रण है। यह सामाजिक यथार्थ सामाजिक विद्रोह चाहता है और पुरानी आस्थाओं का विध्वंस करना चाहता है। "जेरूसलम में" अंग्रेजी टाइप का एकांकी है, जिसका वातावरण विशेष रूप से सफल रहा है। भाषा उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी है, पात्र रोमन तथा यहूदी हैं। कथोपकथन अंग्रेजी ढंग के हैं। अन्तिम सीन में एक वक्ता आकर सम्पूर्ण कथानक को संक्षेप में सुना देता है। इसमें कुछ सांकेतिक प्रयोग भी किए गये हैं। "सिकन्दर" आपका प्रतिनिधि ऐतिहासिक एकांकी है, जिनमें भारत के अतीत गौरव के प्रति गर्व तथा श्रद्धा की भावनाएँ प्रकट की गई हैं। इसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि सिकन्दर महान् भारत की आध्यात्मिक तथा धार्मिक मान्यताओं के समीप एक बच्चा ही रहा। यूनानी दार्शनिक नाटक के अन्त में कहता है "विचित्र देश है यह! इसने संसार के सबसे पहले विश्वविजयी को फिर से एक बालक बना दिया।" यही राष्ट्रवादी भावना इनके अन्य ऐतिहासिक नाटकों में मुखरित हुई है।

आपके नाटकों के पात्र मुख्यतः दो प्रकार के हैं—एक तो समाज के सन्मुख आदर्शवादी बन किन्तु वास्तव में अनेक दुर्बलताएँ चरित्र में दबाए हुए कपटी मिथ्याचारी व्यक्ति दूसरे ऐसे पतित, जो अन्दर से आदर्शवादी हैं, पर परिस्थियों के बोझ से समाज में गिर गए हैं, पर बलिदान की अपूर्व क्षमता रखने वाले वीर। पुरुषों की अपेक्षा आपने स्त्री-पात्रों की गढ़न में विशेष दिलचस्पी ली है तथा उनके चित्रण में आधुनिक मनोविज्ञान का भी आश्रय लिया है। वे सशक्त, विद्रोही, व्यवहार कुशल, प्रेम में उन्मत्त, विवाहित होकर भी अतृप्त कामलोलुप, फैशन के गुलाम तथा अनियन्त्रित हैं। "कारवाँ" के उपसंहार में आपके स्त्री-मनोविज्ञान सम्बन्धी क्रांतिकारी विचारों का प्रतिपादन किया है, जो फ्रायड से प्रभावित हैं। भुवनेश्वर कहते हैं:—

"विवाह के विषय में इससे सरल सारगर्भित सत्य और कोई नहीं है कि विवाह एक बन्धन है। स्त्री उन पुरुषों के साथ फ्लर्ट करती है, जो उससे

विवाह नहीं करते; और उन पुरुषों के साथ विवाह करती है, जो उनके साथ फ्लर्ट नहीं करता।"

भुवनेश्वर ने कुछ स्त्री-पात्र, जैसे—मिसेज़पुरी, पार्वती, प्रतिमा, मिसेज-सिंह, माया इत्यादि आदि इन्ही विचारों के मूर्त रूप हैं। प्राय: दो पुरुष एक ही स्त्री के लिए लड़ते हैं। विजय हर जगह ठोस अर्थ प्राणिन विवाह की ही होती है। प्रेमी का क्षीण रोमानी विद्रोह हत हो ही जाता है।

भुवनेश्वर में यथार्थवाद है, किन्तु वह नग्नता लिए हुए है। उन्होंने "प्रेम" नाम के तत्त्व का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं यह नग्नता एक कठोर हास्य बन गया है और अपनी चरमता में अश्लीत्व की सीमा के निकट पहुँच गया है। भुवनेश्वर कला में अश्लीलता का अर्थ समझते हैं "नग्न पवित्रता'। वे कहते है—

"प्राय: समस्त नाटककार पेटीकोट की शरण लेते हैं और दो पुरुषों को एक स्त्री के लिए आमने-सामने खड़ा कर सघर्ष उत्पन्न करते हैं। मैंने भी यही किया है। केवल बुलडाग कुत्ते के मुख से हड्डी निकाल कर अलग फेंक दी है ताकि सघर्ष बराबर का हो।"

आपके नाटक पढ़कर अनायास ही हमें इब्सन के "डोल्स हाउस" अथवा "पिलर्स आफ सोसाइटी" और शा के "डेविल्स डिसाइपिल्स" या 'कैंडिडा' का स्मरण हो आता है, किन्तु आपके दृश्य सचमुच ही भारतीय जीवन की कठिन और व्यथित आलोचना हैं। इन नाटकों में जीवन की सी असम्पूर्णता भी है। १

अपनी टेकनीक में भुवनेश्वर पाश्चात्य एकांकियों से अत्यधिक प्रभावित हैं। इनकी टेकनीक पर पाश्चात्य प्रभाव अत्यन्त उभरा हुआ है। आपके दृश्यों का प्रारम्भ पात्रों का प्रवेश एवं कार्यकलाप, कथोपकथन, रंगमचीय सूचनाएँ, स्टेज का निर्माण, उस पर रोशनी स्क्रीन, पृष्ठभूमि की आवाजों का क्रम सब कुछ पाश्चात्य ढंग का है।

१—प्रकाशचन्द्र गुप्त

उत्तम रचनाएँ है। "ताँबे के कीड़े" में आज की समाज व्यवस्था के प्रति चुभता व्यंग्य है। इसमें नाना प्रकार के व्यक्तियों (एक परेशान रमणी, मसरूफ पति, थके हुए अफसर, एक रिक्शा कुली, पागल आया) का बड़ा यथार्थवादी चित्रण है। यह सामाजिक यथार्थ सामाजिक विद्रोह चाहता है और पुरानी आस्थाओं का विध्वस करना चाहता है। "जेरुसलम में" अंग्रेजी टाइप का एकांकी है, जिसका वातावरण विशेष रूप से सफल रहा है। भाषा उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी है, पात्र रोमन तथा यहूदी हैं। कथोपकथन अंग्रेजी ढंग के हैं। अन्तिम सीन में एक वक्ता आकर सम्पूर्ण कथानक को संक्षेप में सुना देता है। इसमें कुछ सांकेतिक प्रयोग भी किए गये हैं। "सिकन्दर" आपका प्रतिनिधि ऐतिहासिक एकांकी है, जिनमें भारत के अतीत गौरव के प्रति गर्व तथा श्रद्धा की भावनाएँ प्रकट की गई हैं। इसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि सिकन्दर महान् भारत की आध्यात्मिक तथा धार्मिक मान्यताओं के समीप एक बच्चा ही रहा। यूनानी दार्शनिक नाटक के अन्त में कहता है "विचित्र देश है यह! इसने संसार के सबसे पहले दिग्विजयी को फिर से एक बालक बना दिया।" यही राष्ट्रवादी भावना इनके अन्य ऐतिहासिक नाटकों में मुखरित हुई है।

आपके नाटकों के पात्र मुख्यतः दो प्रकार के हैं—एक तो समाज के सम्मुख आदर्शवादी बन किन्तु वास्तव में अनेक दुर्बलताएँ चरित्र में दबाए हुए कपटी मिथ्याचारी व्यक्ति दूसरे ऐसे पतित, जो अन्दर से आदर्शवादी हैं, पर परिस्थितियों के बोझ से समाज में गिर गए हैं, पर बलिदान की अपूर्व क्षमता रखने वाले वीर। पुरुषों की अपेक्षा आपने स्त्री-पात्रों की गढ़न में विशेष दिलचस्पी ली है तथा उनके चित्रण में आधुनिक मनोविज्ञान का भी आश्रय लिया है। ये सशक्त, विद्रोही, व्यवहार कुशल, प्रेम में उन्मत्त, विवाहित होकर भी अतृप्त कामलोलुप, फैशन के गुलाम तथा अनियन्त्रित हैं "कारवाँ" के उपसंहार में आपके स्त्री-मनोविज्ञान सम्बन्धी क्रांतिकारी विचारों का प्रतिपादन किया है, जो फ्रायड से प्रभावित हैं। भुवनेश्वर कहते हैं:—

"विवाह के विषय में इससे सरल आत्मगर्भित सत्य और कोई नहीं है कि [illegible] स्त्री उन पुरुषों के साथ फ्लर्ट करती है, तो उसे

विवाह नहीं करते; और उन पुरुषों के साथ विवाह करती है, जो उनके साथ फ्लर्ट नहीं करता।"

भुवनेश्वर ने कुछ स्त्री-पात्र, जैसे—मिसेज़पुरी, पार्वती, प्रतिमा, मिसेज-सिंह, माया इत्यादि आदि इन्हीं विचारों के मूर्त रूप हैं। प्राय: दो पुरुष एक ही स्त्री के लिए लड़ते हैं। विजय हर जगह ठोस अर्थ प्राणिन विवाह की ही होती है। प्रेमी का क्षीण रोमानी विद्रोह दब हो ही जाता है।

भुवनेश्वर में यथार्थवाद है, किन्तु वह नग्नता लिए हुए है। उन्होंने "प्रेम" नाम के तत्त्व का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं यह नग्नता एक कठोर हास्य बन गया है और अपनी चरमता में अश्लीलत्व की सीमा के निकट पहुँच गया है। भुवनेश्वर कला में अश्लीलता का अर्थ समझते हैं "नग्न पवित्रता'। वे कहते है—

"प्राय: समस्त नाटककार पेटीकोट की शरण लेते हैं और दो पुरुषों को एक स्त्री के लिए आमने-सामने खड़ा कर संघर्ष उत्पन्न करते हैं। मैंने भी यही किया है। केवल बुलडाग कुत्ते के मुख से हड्डी निकाल कर अलग फेंक दी है ताकि संघर्ष बराबर का हो।"

आपके नाटक पढ़कर अनायास ही हमें इब्सन के "डोल्स हाउस" अथवा "पिलर्स आफ सोसाइटी" और शा के "डेविल्स डिसाइपिल्स" या 'कैंडिडा' का स्मरण हो आता है, किन्तु आपके दृश्य सचमुच ही भारतीय जीवन की कठिन और व्यथित आलोचना हैं। इन नाटकों में जीवन की सी असम्पूर्णता भी है। १

अपनी टेकनीक में भुवनेश्वर पाश्चात्य एकांकियों से अत्यधिक प्रभावित हैं। इनकी टेकनीक पर पाश्चात्य प्रभाव अत्यन्त उभरा हुआ है। आपके दृश्यों का प्रारम्भ पात्रों का प्रवेश एवं कार्यकलाप, कथोपकथन, रंगमञ्चीय सूचनाएँ, स्टेज का निर्माण, उस पर रोशनी स्क्रीन, पृष्ठभूमि की आवाजों का क्रम सब कुछ पाश्चात्य ढंग का है।

१—प्रकाशचन्द्र गुप्त

बिना किसी पूर्व भूमिका, कथा-सार या पात्रों के मनोभावों, स्थिति इत्यादि का निर्देश किए बिना अकस्मात इनके एकांकी प्रारम्भ हो जाते हैं। पात्रों के नाम, नाटकीय स्थिति, पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों इत्यादि का ज्ञान का भी हमें उनके कथोपकथन के द्वारा ही कराया जाता है। इनके नाटक ऐसे स्थल से प्रारम्भ होते हैं कि विभिन्न वर्गों के पात्रों में संघर्ष प्रकट हो जाता है और नाटक शीघ्र गति पकड़ लेता है; स्थान-स्थान पर नाटकीय गति लेता हुआ कौतुहल चित्रण तथा आश्चर्य के साथ चरम सीमा की ओर अग्रसर होता है। घटनाओं के चित्रण तथा कथानक-सूत्र को आगे बढ़ाने में वाक्वैदग्ध्यपूर्ण वार्तालाप की सृष्टि है। इनके वार्त्तालाप बड़े कुशलता से लिखे गए हैं। इनमें गति की घनीभूत तरंगे आती हैं, जो कौतुहलता की अभिवृद्धि कर चरम सीमा पर केन्द्रित हो जाती हैं, संविधान के सूत्रों का पारस्परिक ग्रन्थन कलात्मक होता है।

वस्तु की चरम-सीमा साफ़ है। वहां भी अक्समात् का चमत्कार है। इस लिए इन नाटकों में पूर्व पीठिका बिलकुल लुप्त है। सभी वाक्य आगे को चलते हैं; पीछे की उन्हें कोई चिन्ता नहीं—कभी इससे थोड़ी ही जिज्ञासा पाठकों को क्षुब्ध करती है और वह घटना को पूरी तरह आसानी से नहीं समझ पाता।

आपके कथोपकथनों में पाश्चात्य ढंग की किफायतशारी तरलता, मर्म-स्पर्शिता और वाक् वैदग्ध्य है। "स्वगत का पूर्ण वहिष्कार है। आपके पात्रों के कथोपकथन न तो लेक्चर हो जाते हैं, न वाद विवाद का रूप ही धारण करते हैं। यदि कहीं वाद-विवाद का अवसर भी आया है, तो उसे कुशलता पूर्वक संविधान का अंग बना कर ही प्रस्तुत किया गया है। जैसे "शैतान" में हिन्दू-धर्म और आर्य-संस्कृति का विवेचन। उनके पात्रों में मित भाषण के साथ-साथ मर्मस्पर्शिता तथा तड़प भी है।

जो तत्त्व हमें विशेष रूप से भुवनेश्वर की कला की ओर आकृष्ट करता है, वह उनके रंग संकेत हैं। ये इब्सन, गॉल्सवर्दी तथा बरनार्ड शा से प्रभावित हैं—वही नमक मिर्च का व्यंग्य, उग्रता, काव्य की सहज स्पर्श और उपमा का चमत्कार। शा की व्यंग्य-वक्रोक्तियों की तरह आपने हिन्दी में प्रभाव-

व्यंजना के लिए रंग संकेतों का प्रयोग प्रारम्भ किया। "कारवाँ" का उपसंहार बरनार्ड शा नाटकों की भूमिकाओं से मिलता जुलता है। भुवनेश्वर ने रंगसकेतों द्वारा कई कार्य सम्पन्न किए हैं—(१) वातावरण की मूल भावना का अंकन (२) नाटकत्व का रूप प्रतिष्ठित करना (३) रंगभूमि की व्यवस्था (४) अभिनय में सहायता (५) पात्रों की रूप कल्पना (६) नाटक का प्रभावोत्पादक तथा सुपाठ्य का बनाना।

दुःखभरी स्थिति तथा अवसादपूर्ण वातावरण का अंक देखिये—

"पूर्व परिचित कुलियों की बस्ती, जैसे किसी ने अभिमंत्रित कर निर्जीव कर दी हो। मकानों के आगे, या विचित्र जगहों पर मजूर बैठे विष के समान ताड़ी पीरहे हैं। बच्चे कभी डर से, कभी माता की झुंझलाहट से और कभी एक अज्ञात-आशंका से रो देते हैं, और वह स्वर ऐसा ही तीव्र है, जैसे दोपहर की नीरवता में चीलों का कीकना। भावी के समान आशंका की दृढ़ता सब के मुख पर अंकित है। मध्याह्न के प्रखर आतप में जैसे विश्व मुमूर्ष प्राय हो रहा हो।" (एक साम्यहीर साम्यवादी)

पात्रों के चित्रण में व्यंग्य उपमा और शा जैसी तीखी वक्रोक्ति का चमत्कार देखिये—

"साँझ की धुंधलाहट में तेल और मिलों की कलौंच की सहायता से बाल सँवारे लम्बे-लम्बे कालरों की कमीज़ पहने स्वयं अपने फिश्रते के समान मिल के मज़दूर ऐसी ठिठौली कर रहे हैं।"

"मनुष्य के नाम स्वयं अपने से ईर्ष्यालु हाड़ चाम का मजदूर, प्रकाश के नाम की एक २०-२२ वर्ष की युवती मलिन वस्त्रों में इस प्रकार दीखती है, जैसे आंसुओं की नीहारिका में नेत्र।

"आपत्ति के समान एक २६-२७ वर्ष के एक युवक का प्रवेश, उसके बाल रूखे और बिखरे, नेत्र काले विष के समान गम्भीर।

"खद्दर के हिम-श्वेत कपड़ों में देवदूत के समान एक पुरुष बैठा है।"

"किशोर एक कटे हुए वृक्ष के समान सोफे पर बैठ जाता है।"

"हरी सर्ज की अचकन में शीत से कांपते हुए एक अधेड़ मनुष्य का प्रवेश।"

"रेशमी काले लहराते बाल। उसमें बालिका-सी लज्जा और कविता-सी मधुरता है। आकृति चाँदनी के समान सरल हैं; जुन्हाई के समान बेल बूटों की साड़ी पहिने पार्वती आती है; दूसरे ही क्षण वह आगे से टूटे हुये सेफ एक गूढ़ रहस्य के समान देखती है; पुरुष उसे देख कर खड़ा होता है और त्रस्त सा, विमुग्ध-सा उसकी ओर हाथ फैला कर बढ़ता है।"

"भुवनेश्वर की स्टेज सूचनाएँ लम्बी और व्यापक हैं; उनकी भाषा एक नया.आश्चर्य और विस्ममय लिये है। इनकी विशेषता काव्य, शक्ति, और अ:म्य प्रवाह है। आपके शब्द-चित्र हमें विशेष रूप से आकर्षित करते हैं।[88]

— ———

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी

आचार्य श्री सद्गुरुशरण अवस्थी का सम्पूर्ण साहित्य पौराणिक व सांस्कृतिक पुनरुत्थान की दृष्टि से विरचित है। अवस्थी जी यह मानते हैं कि पौराणिक कथाओं और व्यक्तियों की एक परम्परा होती है, जिसमें जनता अनन्त-काल से रमण करती आई है और उसमें रस लेने की अभ्यस्त है। अतएव अतीत की इन गाथाओं में नये आदर्शों का समावेश है; नायकों को युग के नेत्रों से देखकर उनका समीचीन मूल्यांकन किया गया है। इसमें प्राचीन रूढ़िवादी परम्परा की परितुष्टि सर्वत्र नहीं हो सकी है, यद्यपि अवस्थी जी ने अपना आदर्श प्राचीन और अर्वाचीन का वैज्ञानिक सामजस्य ही रखा है।

"शकुन्तला" में शाप के स्थान पर चोट लगना पुराने कथानक का नया मनोवैज्ञानिक हल है। शकुन्तला के ये वचन देखिये—

'हे! सम्राट' मैं तुम्हें दोष नहीं देती। पिता की अवहेलना कर, गुरुजनों की बिना अनुमति जो कन्या उतावलेपन में अपने भाग्य की गोटियाँ फेंक देती है, उसकी ऐसी ही दुर्दशा होती है। नियति गति बनाने वाली अभागिनी

[88] श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त एम० ए०।

जन्म भर विषाद को ही परखा करती है। दया से कृपा से, भुलावे से, अनुनय विनय से, किसी प्रलोभन से ऐहिक दुर्बलता अथवा मानसिक विचार से जो कन्याएँ पुरुष का प्रणतियों का सामना नहीं कर पातीं, वे अपने को प्रलय के अंगारों में विसर्जित करती हैं मेरा पराभव उन्हें सचेत करे, सुकुमारियों का ससार कठोर होना सीखें ······ नारी पत्नी बनकर क्वारी नहीं हो सकती, पुरुष पति बनकर भी अविवाहित ही बना रह सकता है। नारी का क्वारापन लौटकर नहीं मिल सकता। पुरुष का क्वारापन कहीं जाता ही नहीं।"

"तुलसीदास" में प्रेम के क्षणिक उन्माद की निस्सारता प्रकट की गई है।

भारतीय संस्कृति में प्रेम का क्या स्वरूप है, यह चित्रित किया गया है। तुलसी प्रेम में पागल होकर अपनी पत्नी रत्ना से रात में छिपकर मिलने चले आते हैं रत्ना कहती है, 'निर्लज्ज प्रेम प्रदर्शन भारत की विभूति नहीं है। विलासी मन का कला के साथ खिड़वाड़ वास्तविकता नहीं। समाज का आदर्श, अभिसार करने वाली परकीया कभी न थी प्रेम को लोकधर्म के विधि-निषेध के भीतर ही रहना चाहिए समाज की परिभाषा का उल्लंघन करना ठीक नहीं। भविष्य में आपको समाज को परख कर ही पैर बढ़ाना चाहिए।

"अहिल्या" एकांकी में अवस्थी जी ने यह चित्रित किया है कि किन परिस्थितियों में अहल्या का सतीत्व भंग हुआ था और कैसे उसकी पवित्रता स्थिर रही। वह कहती है 'नारी-जगत की संस्कृति में गोपन विधा लज्जा का दूसरा नाम है। अत्यन्त भय कातरता भी काम कर रही थी। कातरता का भी व्यवहार रूप गोपन है, अतएव आपका खुरक पाते ही भय ने लज्जा का हाथ पकड़ा और इन्द्र को पर्यंक के नीचे ढकेल दिया।'

कैकेयी में एक नया दृष्टिकोण है। कैकेयी चाहती है कि राम पहले मजदूर बनें, संसार की कठिनाइयों को देखें और यह ट्रेनिंग लेने के बाद भोग करें। हठी, बलशाली, अनुभवी राम द्वारा ही विश्व का कल्याण, भारतवर्ष का उद्धार और आर्यों की प्रतिष्ठा तभी हो सकती है। दशरथ जी को पुत्र-मोह

से निकालने के लिए ही वह राम को सांसारिक अनुभव के लिए वन में भेजती है।

"शम्बूक" में वर्ण व्यवस्था पर आक्रमण है। शम्बूक का तर्क और कटु व्यंग देखिए—"वर्ण व्यवस्था की कड़ियों को तोड़कर ऊपर उठने के लिए आप प्रोत्साहित नहीं कर सकते। निषाद से मैत्री, शबरी का जूठा आतिथ्य, केवट का सम्मान, सुग्रीव और जाम्बन्त का समादर आपके व्यक्तित्व की सम्पत्ति है ...अपना ही उदाहरण आप दूसरों के लिए पाप समझेंगे। ऊपर का व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए सब कुछ कर ले, पर यदि समाज-सुधार के लिए भी नीचे का व्यक्ति उन्हीं कार्यों को करे, तो मृत्यु-दण्ड से पुरस्कृत किया जाय वह समय आवेगा जब, जाति-पांति तोड़ना लोग अपना गौरव समझेंगे। सैकड़ों शम्बूक होंगे, पर राम का कहीं पता न होगा आपकी मिथ्या से आर्य सभ्यता संभल जाय। गिरते हुए कगारों पर खड़ी हुई यह ब्राह्मण संस्कृति अब भी सचेत हो जाय।"

"विभीषण" में विभीषण का भाई को छोड़कर चले आने का लांछन तोड़ा गया है कि सद्प्रवृत्तियों का समुदाय राष्ट्रवाद और कुटुम्बवाद से ऊँचा है।

"महाभिनिष्क्रमण" में अवस्थी जी ने वैराग्य का विवेचन किया है। प्रकृति के नाना व्यापारों से दो भिन्न-भिन्न निष्कर्ष निकाले गये हैं। 'एकलव्य' में ब्राह्मण अब्राह्मण की विवेचना की गई है। एकलव्य के इन वचनो का कटु व्यंग्य देखिये—

"एकलव्य—गुरुवर द्रोणाचार्य की आज्ञा मानी जायगी। यह ब्राह्मणों का युग है। भील निर्बल हैं, भील शूद्र हैं। ब्राह्मणों के सामने खड़े होने का साहस उनमें नहीं है' 'स्मरण रहे वह युग अवश्य आवेगा, जब सारी परम्पराओं को व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर टिकना पड़ेगा।"

"सती का अपराध" में यह चित्रित किया गया है कि सती ने सीता का रूप धारण किया था। यह एक सामाजिक व्यंग्य है, जिसमें स्त्री का सच्चा रूप भी दिखाया गया है। पति की अविज्ञा के दुष्परिणाम भी दिखाये गये हैं।

"त्रिशंकु" में स्थिति स्वर्ग दिखाई गई है। 'बलिवामन' में आर्य और अनार्य संस्कृति की विवेचना की गई है। अतिवाद की मूर्खतायें दिखाई गई

है। बलि अतिवाद में फंसा हुआ असंकारी जीव है। वामन कहते हैं, 'जीव को ब्रह्म बनने का दम्भ नहीं भरना चाहिए। अतिवाद ब्रह्म की शोभा है। जीव के भीतर अतिवाद नाश का घुन है। उसे निकाल फेंकना मर्यादा स्थापन का पहला काम है' 'मैंने भी अतिवाद ध्वंस के कई प्रयोग किए हैं। तुम्हारा पराभव भी एक प्रयोग ही है।"

सुदामा एकांकी का नायक सुदामा द्वारिकापुरी की अथवा सुदामापुरी की ठाटबाट के स्थान पर अपनी काली कमरी, झोंपड़ा, जीर्ण वस्त्र और मिट्टी के बरतन ही स्वीकार करता है।

ध्रुव में तपस्या का सुन्दर रीति सेचित्रण किया है। सारे लोगों के पोषणों के प्रति विराम लगाकर ही सब ओर से चेतना हटाकर विश्व की ओर समस्त वेग से केन्द्रित कर देने का नाम तपस्या है। तपस्या किस प्रकार मानव के विकारी उपकरणों को गला देती है, यह रहस्य इस एकांकी में स्पष्ट हो गया है।

"प्रहलाद" एकांकी में अवस्थी जी ने आर्य-अनार्य संस्कृतियों के संघर्ष को प्रकट किया है। उदात्त संस्कृति के विस्तार का यह एक प्रयत्न है।'

श्री सद्गुरुशरण जी ने अपने एकांकी नाटकों में संस्कृत ढंग से सांस्कृतिक नवनिर्माण के प्रयत्न किए हैं। उन्होंने प्राचीन, वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक अर्ध ऐतिहासिक साहित्यिक, कथानकों और नायकों को युग के नये नेत्रों से देखा है और उनका समीचीन मूल्यांकन किया है। इस प्रयास में प्राचीन रूढ़िवादी तथा परम्परावादी परितुष्टि सर्वत्र नहीं हुई है। अवस्थी जी का आदर्श प्राचीन और अर्वाचीन का वैज्ञानिक सामञ्जस्य ही रहा है।

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी

हिन्दी नाट्य साहित्य में मौलिक एकांकियों का नितान्त अभाव देखकर
ो नाट्यकार इस क्षेत्र में आए थे, उनमें श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं।
ापका अंग्रेजी साहित्य और टैकनीक का अध्ययन गहन है। पाश्चात्य
ग के मनोविश्लेषण प्रधान एकांकियों का सूत्रपात करने का श्रेय द्विवेदीजी
ो है। उनके एकांकियों में भारतीय सामाजिक जीवन का जीता जागता चित्र
मलता है। हिन्दू समाज की जीर्णशीर्ण परम्पराओं के प्रति व्यंग्य किए बिना
ाट्यकार नहीं रहा है, यद्यपि उनका दृष्टिकोण सुधारक का नहीं है। उनमें
कलात्मक अभिव्यंजना है। नाटक के रूप में किसी सुन्दर वस्तु का निर्माण
ी उनका ध्येय रहा है। ×

द्विवेदीजी भुवनेश्वर से कुछ अधिक सावधान और संयमवान हैं···भुव-
श्वर के पात्रों में विद्रोह उत्पन्न हो जाता है, वे अपने आपको एक दम स्पष्ट

× इस सम्बन्ध में स्वयं द्विवेदी जी ने लिखा है:—हिन्दी में मौलिक
ाटक का नितान्त अभाव है, विशेषकर आधुनिक नाटक का। मुझे यह
अभाव बहुत दुःख देता है। नाटक लेखक ने जिस प्रकार की और जितनी
ातिभा, शिक्षा, और अभ्यास की आवश्यकता है, वह मुझ में है या नहीं,
ाह मालूम नहीं है···हिन्दी नाटक की उन्नति करने की महत्त्वाकांक्षा, इस दिशा
ं अपनी शक्ति की परीक्षा, और कुछ इस प्रकार के मौलिक साहित्य का
नेर्माण करने की धुन, जो संसार के श्रेष्ठ साहित्य के साथ कंधा मिला सके।
ास इन्हीं कारणों से नाटक लिखना मैंने अपना धर्म समझ लिया।···यों
ो विषय इन सभी के सामाजिक हैं, पर उनके द्वारा समाज-सुधारक बनने की
धृष्टता मैं नहीं कर सकता।

कर देते हैं; मन में कोई गाँठ नहीं देख पाते—चेतन उनका अत्यन्त उद्भासित हो उठता है। द्विवेदी जी के सारे वातावरण में उसका विपरीत भाव मिलता है। यहाँ सब उद्वेग चेतन के शासन के कारण दबता चला जाता है। द्विवेदी जी की "सुहागबिन्दी" का चित्र भारत के घरों में मिल सकता है।*

द्विवेदी जी का क्षेत्र सामाजिक व्यंग्य है। कुछ नाटकों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सेक्म समस्या का विवेचन भी किया है। सेक्स के सम्बन्ध में नये पाश्चात्य मनोविज्ञान से प्रभावित हैं। कुछ एकांकियों को छोड़कर आपके अधिकांश नाटक—"सुहागबिन्दु" 'वह फिर आई थी'; 'परदे का अपर पार्श्व'; 'शर्माजी'; 'दूसरा उपाय ही क्या था'; सर्वस्व-समर्पण'; 'कामरेड' आदि सामाजिक होने के साथ किसी निगूढ़ सेक्स समस्या को लेकर खड़े किए गए हैं। भारतीय समाज की प्रेम (या कामवासना) विषयक धारणाओं को उन्होंने पाश्चात्य कसौटियों पर परखा है। क्रांतिकारियों से लड़के लड़की परस्पर स्वभाविक असकोच से काम करते हैं और सेक्स को भूल जाते हैं; किन्तु पुरानी रूढ़ियों में पले व्यक्ति उनके नये सामाजिक सम्बन्धों को पुराने बटखारों से तोलते हैं और अपने सन्देह से उन्हें वेधा करते हैं। पुराने समाज के ठेकेदारों के दिमाग में बस एक लिंग भेद की शाश्वत समस्या रहती है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दू समाज का वातावरण दूषित है। यही समस्या द्विवेदी जी ने घुमा फिराकर हिन्दू-विवाह पद्धति के नाना विषमरूप दिखाते हुए अपने एकांकियों में व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत की है। समाज की पुरानी मान्यताओं के प्रति विध्वंसात्मक हुए बिना आप नहीं रह सके हैं, यद्यपि दृष्टिकोण में नव निर्माण के लिए कोई संकेत नहीं है। इनके नाटकों का काम कई प्रश्नों का उत्तर देना नहीं प्रत्युत स्वयं समाज के ठेकेदारों से प्रश्न पूछना है मानव-मनोविकारों का चित्रण है; किन्तु सामाजिक परिस्थितियों के भीतर रह कर क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं, इन मानसिक संघर्षों को व्यक्त करना है। वे अपने नाटकीय चित्रों द्वारा समाज की विषमता दिखा देते हैं और हमें स्वयं सोचने के लिए बाध्य करते हैं। इब्सन के आदर्शों की ओर आप उत्तरोत्तर अग्रसर हुए हैं। आपके १४ एकांकी उपलब्ध हैं—(१) सोहागबिन्दी (२) वह फिर

---

* डा० नगेन्द्र।

आई थी (२) परदे का अपर पार्श्व (४) शर्माजी (५) दूसरा उपाय ही क्या है! (६) स्वर्ण समर्पण (७) कामरेड (८) गोष्ठि (९) दशा (१०) परीक्षा (११) रपट (१२) टैगौर दिवस (१६) रिहर्सल (१४) धरती माता (विश्व-वाणी १६४३)। कुछ नाटक रेडियो पर प्रसारित करने के दृष्टिकोण से लिखे गये हैं, जैसे—(१५) 'हीरे की लोंग' तथा 'पिता (१६) पुत्र'। अन्तिम दोनों सफल फीचर हैं।

द्विवेदीजी के विषय चुनाव को लीजिए। आपने विशेषतः स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण (जो सूक्ष्म भावुकता के रंग में रंगा हुआ है); प्रेम में वैषम्य; मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनमेल विवाह; समाज के कृत्रिम बन्धनों में पनपने वाला प्रेम (क्या हम उसे प्रेम कहें?); तीव्र संवेगों की आन्तरिक जटिलताएँ आदि लिए हैं। इस प्रेम में सर्वत्र वैषम्य है—प्रायः वैवाहिक वैषम्य, परन्तु इसके लिए समाज अथवा परिस्थिति उत्तरदायी नहीं हैं, यह एक दम मनोवैज्ञानिक जो है अर्थात् लेखक ने उसे एक सामाजिक समस्या न बनाकर मानव मनोवैज्ञानिक की चिरन्तन जटिलता माना है; और उसी दृष्टि से उसका विश्लेषण, किया है। केवल विश्लेषण, मानो वह उसके स्वरूप ही समझा सकता है, कारण को नहीं। कारण के विषय में तो मानवीय चिरन्तन सत्यों को स्वतः स्वीकार किए बैठा है। द्विवेदीजी ने प्रेम के सूक्ष्म, प्रायः मानसिक रूप को ही निरीक्षण किया है। वे प्रेम को एक स्थायी, एवं गहन-तीव्र मनोवृत्ति मानते हैं, परन्तु उसमें आदर्शवादिता नहीं है। स्त्री के प्रणय में जहाँ जीवन-व्यापी चाह है; समर्पण है; वहाँ ईर्ष्या; प्रतिहिंसा, प्रतिग्रहण की उत्कट लालसा भी है। इसी प्रकार पुरुष के प्रेम में जहाँ सहन करने का बल है, वह सन्देह, घृणा, दर्प और साथ ही दुर्बलता भी है।"

पुरुष की अपेक्षा नारी के प्रति आप सहानुभूति से परिपूर्ण हैं। स्त्री पात्रों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आपकी कृतियों में है। उनके नाटकों की प्रतिमादेवी, मनोरमा, उर्मिला, तारा, सीता, उमा—सभी प्रधान पात्री प्रेम से वंचित होकर घुल घुल कर जान देती हैं; और बुझते हुए दीप की भाँति बुझने से पूर्व एक नवयुवक का पदार्पण उनके जीवन में एक क्षण आशा का संचार करता है। इनमें नारी के प्रेम-जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक बिम्ब

है। पुरानी रूढ़ियों तथा संस्कारों के वातावरण में पले हुए व्यक्तियों को ये अश्लीलत्व के दोष से ये युक्त प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु क्या नारी को अपने सब तरह के अच्छे बुरे वातावरण से सन्तुष्ट होने का शाप है? क्या वह विवाह बन्धन में बँध कर निश्चय रूप से अपना प्रेम भी पति को देने के लिए बाध्य है? क्या उसे स्वतन्त्र होने, प्रेम पात्र चुनने का अधिकार नहीं है? इसी प्रकार के अनेक प्रश्न उनके एकांकियों में निहित हैं। पुरुष पात्र अपनी रुचि का साथी न पाने से कुछ असन्तुष्ट, अभावुक, यथार्थवादी से हैं। कुछ कालीबाबू की तरह अभावुक हैं जिन्हें अपने दैनिक-कर्म से ही अवकाश नहीं मिलता; कुछ बहुत संवेदनशील हैं, जो दूसरे की पत्नि को, जो उनके प्रारम्भिक जीवन में उनकी प्रेयसि रह चुकी है, प्रेम कर विहराग्नि में जलते हैं। 'सुहागबिन्दी'; 'दूसरा उपाय'; स्वस्व समर्पण'; में नारी स्वभाव का विश्लेषण है तो 'वह फिर आई थी'; 'परदे का अपर पार्श्व'; 'शर्माजी' पुरुष के मन का अध्ययन है। कुछ में केवल चरित्र का है, घटनाओं का ही अभाव है।

द्विवेदी जी का "सोहागबिन्दी" सेक्स समस्या को स्पर्श करता है अतृप्त आकांक्षाएँ प्रतिमाएँ पति के मौसेरे भाई विनोद का प्रोत्साहन पाकर उमड़ते हैं, उसके उन दो आने पर अवरुद्ध होकर रोग में, फिर उन्माद और अन्त में मृत्यु में परिणत हो जाते हैं। वैवाहिक वैषम्य का अच्छा अध्ययन है। "वह फिर आई थी" में मनोरमा का अपने प्रेमी से पुनः मिल आने का कथानक है। "परदे का अमर पार्श्व" में वास्तविक प्रेम का चित्रण है। "शर्माजी" में एक डिप्टी कलेक्टर के विद्यार्थी जीवन में रोमांस की प्रेमगाथा है। तारा के स्वभाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्विवेदीजी ने कलात्मक ढंग से किया है। उसमें स्त्री स्वभाव के गुण नहीं, पुरुष स्वभाव के गुण हैं। यही आख्याना के विषम वैवाहिक जीवन की समस्या है। "दूसरा उपाय ही क्या है ?" में पड़ोस के युवक-युवतियां का अबोध और अल्हड़ होते हुए प्रेम-व्याधि में फंस जाना, गुप्त मन में इस प्रेम के संस्कारों का रहना, उसकी प्रतिक्रियाएँ, ऐश्वर्य के प्रलोभन में दूसरी जगह विवाह, पति का अधिकार मय प्रेम पर वास्तविक रूप से हृदय पर अधिकार न होना, आन्तरिक तूफान और [illegible] का हाहाकार इन में व्यक्त हुआ है। "स्वस्व समर्पण" में विनोद

तथा उसके मामा की लड़की निर्मला के प्रेम की कहानी है। इसमें परित
और प्रेमिका के मध्य उत्पन्न होने वाली ईर्ष्या का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण
हुआ है। "कामरेड" में दो पुरुष एक स्त्री के प्रेम में पड़कर पारस्परिक
संघर्ष करते हैं। अपने साहित्यिक एकांकी "गोष्ठी" में द्विवेदीजी ने साहित्य
क्षेत्र की अनेक कमजोरियों को उभारा है।

आपके नाटकों की टेकनीक अंग्रेजी से विशेषतः प्रभावित है। मनोवि
ज्ञान की सहायता से पात्रों की अन्तर्स्थिति को चित्रित करने में आप विशेष
कुशल हैं। "वे एक बारीक तत्त्व को पकड़ते हैं, और उसको मनोविज्ञान के
तीक्ष्णतर करते हुए अत्यन्त कौशल से चरम सीमा तक ले जाते हैं। उनके
विकास में कहीं भी असंगति नहीं आई है... द्विवेदीजी की दृष्टि में मन के
स्तर खोलने की क्षमता है, और वाणी में उनका रपमय वर्णन करने की शक्ति
है।" आपके संकेतात्मक प्रयोग पाश्चात्य शैली के हैं। आप पर पाश्चात्य
प्रभाव टैकनीक के प्रत्येक अंग पर पृथक-पृथक पड़ा है।

सर्वप्रथम कथावस्तु के क्रमिक विकास में कौतूहल का प्रयोग है। प्रत्येक
नाटक में घटनाओं का विकास क्रम क्रम से होता है, साथ ही विगत घटनाएं
खुलती और पारस्परिक सम्बद्धता प्राप्त करती जाती हैं। प्रत्येक नाटक का एक
सुकल्पित लक्ष्य है। आप अपने कथावस्तु की गढ़न में विशेष चातुर्य दिखा
हैं। इसी की सहायता से कथासूत्र का विकास होता है। वाकवैदग्ध्यता और
मर्मस्पर्शिता पर्याप्त रूप में विद्यमान है। निम्नस्थिति के पात्रों से ग्रामीण
भाषा का प्रयोग कराया गया है। "गोष्ठी" तथा "कामरेड" में जो शिक्षि
पात्र हैं, वे परिष्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं।

द्विवेदी जी के नाटकीय निर्देश पाश्चात्य शैली के हैं। इनमें कथासूत्र
स्थान, वातावरण आदि का पूर्ण चित्र विद्यमान रहता है। ये लम्बे, सर्वां
पूर्ण और व्यापक हैं। आपकी एक विशेषता लघु रेखाचित्र उपस्थित करना
है। रंग सूचनाओं में आप पहले स्थान, काल तथा वातावरण का निर्देश
करते हैं, कथानक का प्रारम्भिक भाग देते हैं; पात्रों के मनोभाव, अनुभा
विभाव विषयक सूचनाएँ प्रदान करते हैं। कुछ सूचनाएँ अंग्रेजी में ही है
जैसे कामरेड की कुछ सूचनाएँ देखिये:—

श्री विष्णु प्रभाकर

यथार्थ और आदर्श को अलग पृथक नहीं मानते; यथार्थ की भित्ति पर ही आदर्श की स्थापना करते हैं। कहानी क्षेत्र में प्रगतिशील, यथार्थवादी तथा आदर्शवादी—तीनों ही श्रेणियों में आपको स्थान प्राप्त हो चुका है किन्तु आपका-सम्मान यथार्थ के सहारे सदा आदर्श की ओर ही अग्रसर होता रहा है "मानव" आपका लक्ष्य है। आप मानववादी कलाकार हैं, जो मानववादी आदर्श के बिना जीवित नहीं रह सकता, और यथार्थ के बिना चल नहीं सकता। मानववादी विष्णु अपनी कला के प्रति ईमानदार होने के कारण सदा प्रयत्नशील रहे हैं।

मानव का अध्ययन आपके रेडियो नाटक, रूपक, या एकांकी सभी में किसी न किसी रूप में प्रकट होता है। मानव-जीवन के किसी पक्ष, व्यक्तित्व या समाज के किसी विशिष्ट पहलू, राजनीति की किसी ज्वलन्त समस्या, पात्र के चरित्र की किसी मानसिक भावना-ग्रन्थि, आन्तरिक संघर्ष, या सामाजिक विषमता को उभार देते हैं। विष्णु के हाथ में एकांकी एक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कला है। ये मध्यवर्गीय समाज में फिरते हुए विभिन्न दृष्टि को

व्यक्ति, विभिन्न वर्गों की रुचियों, संस्कार और भावनाओं, किसी विशेष परिस्थिति अथवा उद्दीप्त घड़ी के मार्मिक पहलुओं के चित्र हैं। मानव के रुचि, तथा भावनाओं को, उनकी उलझनों और संघर्षों के तार-तार को पृथक करने की चेष्टा की है। विष्णु का मनोविश्लेषण गहरा और सूक्ष्म है। आधुनिक राजनैतिक हलचलों का चित्रण गांधीवाद की विचार-पद्धति का प्रतिपादन और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि इनकी विशेषतायें हैं। घृणा, द्वेष, के ऊपर मानवोचित प्रेम अथवा सहानुभूति की विजय दिखाना, मानवता के सहज सौन्दर्य का उद्‌घाटन करना इस एकांकी का प्रधान आकर्षण है।

विष्णु के एकांकियों का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं:—

सामयिक समस्या प्रधान एकांकी—(१) "बन्धनमुक्त" (अछूतोद्धार की समस्या) २—"पाप" (अविवाहित युवती का पाप") ३—"साहस" (गरीबी और वेश्यावृत्ति) ४—"प्रतिशोध" (हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्या); ५—"इन्सान" (साम्प्रदायिक झगड़े) ६—"देवताओं की घाटी" (काश्मीर आक्रमणकारियों के विरुद्ध) ७—"वीरपूजा" (भ्रष्ट शरणार्थी देवियों की समस्या) ८—"चन्द्रकिरण" (परित्यक्ताओं का पुनः अपनाने के सम्बन्ध में); ९—"रक्तचन्दन" (काश्मीर युद्ध के वलिदान की एक करुण पर गौरवपूर्ण घटना) १०—"माँ" ११—"भाई" १२—"बटवारा" १३—"विभाजन" (पारिवारिक समस्याएँ) १४—"भगवान्" १५—"नया समाज" १६—"विचार और कर्म" १७—"प्रेम" (सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं।

राजनैतिक—१—"बीमार" १९४२ की क्रान्ति; २—"हत्या के बाद" पूँजीवाद के विरुद्ध क्रान्ति, विदेशी सत्ता का उन्मूलन; ३—"कांग्रेसमैन बनो" कांग्रेस पार्टी में घुसे अवसरवादियों और भ्रष्टाचारियों पर व्यंग्य ४—"क्रांति" जन क्रांति पर आधारित हैं। ५—"बीमार" ध्वनि नाटक में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का चित्रण है। छः रूपकों में "हमारा स्वाधीनता संग्राम" में हमारी आजादी की लड़ाई का चित्रण है। शुष्क इतिहास को भी बड़ा सजीव और रोचक बना दिया गया है। इसमें सन् १८५७ के गदर, जलियानवाला बाग, असहयोग आन्दोलन, स्वतन्त्रता की घोषणा, सन् '३०

हैं, जिनमें विचारधारा की मार्मिकता पर अधिक ध्यान दिया गया है।... संकेतों में प्रभावोत्पादकता या मार्मिकता की ओर विष्णु का ध्यान नहीं है क्यों कि ये पढ़ने के लिए न होकर रेडियो की दृष्टि में रख कर लिखे गए हैं। कथोपकथन साधारणतः संक्षिप्त और अर्थपूर्ण हैं और कथानक को आगे बढ़ाते हैं। 'अशोक' के कथोपकथन बड़े जोरदार हैं। जहाँ नाट्यकार ने विचारक का बाना पहिना है और आदर्शवादिता के चक्र में पड़े हैं, वहाँ वक्तव्य लम्बे और विवेचना प्रधान हो गये हैं। इनमें मनोवैज्ञानिक आधार की ओर ध्यान दिया गया है। साधारणतः 'स्वगत' कम हैं, किन्तु रेडियो एकांकियों में (जैसे—'अशोक'; 'ममता का विष'; 'जहाँ दया पाप है'; 'उपचेतना का छल' में) स्वगत बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। बच्चों के एकांकियों में सरल, स्पष्ट भक्ति में शिक्षात्मक दृष्टिकोण ही सामने रखा गया है। गम्भीर नाटकों भाषा मध्यवर्ग द्वारा प्रयुक्त शुद्ध हिन्दी है। कहीं-कहीं काव्य की माधुरी फूटी है, यद्यपि ऐसे अंश भावना के तीखेपन के कारण कवित्वमय हुए हैं। व्यंग्य का बड़ा सफल प्रयोग हुआ है।

१०—हिन्दी की महिला एकांकीकार

हिन्दी साहित्य, में जहा कहानी, कविता और निबंधों के द्वारा महिला खिकाओं ने सेवा की है, वहां नाटक तथा एकाकी के क्षेत्र में भी उनका चुर सहयोग रहा है। एकाकी नाटकों के क्षेत्र में श्रीमती विमला लूथरा म०, ए०, हीरादेवी चतुर्वेदी, शचीरानी गुर्टू एम०. ए०, रत्नकुमारी एम० . । कृष्णाकुमारी मिश्र, विद्यागुप्त, प्रभा पारीक बी०. ए०. दमयन्तीबाई वान, सीतादेवी, सरस्वती देवी पाणिग्रही; आदि महिला एकांकीकारों से नकी कृतियों द्वारा पर्याप्त सेवा हो रही है।

श्रीमती विमला लूथरा एम० ए० के बहुत से हास्य व्यंग्य मय एकांकी सरिता में प्रकाशित हुए हैं जैसे १, 'प्रीतिभोज' (१६४८), २—'टाट और तली' (१६४६) ३—'मुन्ने का नामकरण' (१६४६) ४—धोबी का आगन (१६४६) ५—'गृहलक्ष्मी' (१६४७) ६—'सगाई का प्रबन्ध' (अप्रैल १६४६) ७—'आल इण्डिया रेडियो पर 'तानसेन' ८—'टिकिट चेकर' (१६४६) ६-'लाइन क्लीयर (१६५०), १०-आठवां आश्चर्य' (१६५०) ११-'बलिदान' (१६४६) श्रीमती विमला लूथरा का क्षेत्र समाज की विद्रुताओं को उभारकर उपहास का विषय बना देना है। आप अंग्रेजी नाट्य-साहित्य, टेकनीक एवं चरित्र की विशेषताओं से परिचित हैं। अंग्रेजी की प्रोफेसर होने के कारण यत्र-तत्र अंग्रेजी एकांकियों की छाया से प्रभावित हैं।

विमला लूथरा के नाटकों में नाट्यकार का व्यक्तिगत 'अहं' भी स्पष्ट प्रकट होता है। समाज कैसा है? कैसा होना चाहिए—यह प्रश्न आपको चिन्तित नहीं करते। व्यक्तिगत जीवन में आपका जिस-जिस व्यक्ति, सामाजिक संस्था या विभाग से सम्बन्ध रहा है, या सम्पर्क में आई हैं, उनकी बाह्य

मिथ्यापूर्ण बातें, कृत्रिमता से परिपूर्ण व्यवहार, दिखावटी रहन-सहन, ०।...
जित खोखलापन आपको एकांकी लिखने के लिए प्रेरित कर देता हैं। इनमें हमारे पढ़े-लिखे सभ्यता का दावा करने वाले मध्यवर्गीय समाज का खोखलापन सामाजिक विद्रूपताएं हमारे समक्ष प्रस्तुत करदी गई। उदाहरण के लिए आपका 'सगाई' का प्रबन्ध लीजिए, जिसमें सगाई के लिए क्या क्या मिथ्या प्रपन्च रचे जाते हैं, इसका पर्दाफाश कर दिया गया है। 'आल इण्डिया रेडियो पर 'तानसेन' में आपने रेडियो के प्रबन्ध, व्याख्या, सस्ते अर्थहीन गीता और गन्-िकृति उभारने वालों पर व्यंग्य किया है।

टेकनीक की दृष्टि में विमला लूथरा का मुख्य शस्त्र है कटाक्ष तथा व्यंग्य। सैमुअल बटलर की पद्धति का अनुसरण करते हुए उन्होंने समाज के धोखाबाजों की खूब मरम्मत कराई है। इनकी टेकनीक देखकर हमें अनायास ही बर्नार्ड शा की याद आ जाती है। विमला लूथरा हिन्दी और अंग्रेजी में सरलता पूर्वक लिखती हैं।

श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए० के एकाँकी नाटकों का क्षेत्र पारवारिक यथार्थ है; शैली में हलके व्यंग्य का प्रयोग है। आपके लिखे दस नाटक प्रकाशित हो चुके हैं '१' 'रक्त का अर्घ्य' २—'श्यामा' –३—'गुलाबी साड़ी' ४-दोषी कौन ? ५—'वे यात्री' ६—'चाची' ७—'भाई' ८—'चरित्रहीन' ९—'मर्याद का मूल्य' १०—'दस दिन पहले' ये नाटक अपने मनोवैज्ञानिक-चित्रण में अतिनीय हैं। भाव, भाषा तथा कला तीनों ही दृष्टिकोणों से इन नाटकों निजी स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। एक ऐतिहासिक नाटक को छोड़कर शेष सब नाटक वर्त्तमान सामाजिक समस्याओं को लेकर विचरित है तथा इन समस्याओं के पृष्ठ भाग में कोई गुप्त पर तीखा सन्देश छिपा हुआ है। नाटकों की शैली में एक अपनापन है, जो गुण केवल महिला लेखकों की रचनाओं में ही उपलब्ध हो सकता है। यदि वास्तविक अनुभूतियां तथा नाटकीय तत्वों को सफलता का आधार माना जाय, तो यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि ये नाटक सफल हैं। 'दोषी कौन ?' नाटक में, जहां वास्तविक परिस्थितियों में [illegible] पूर्ण है, वहां मनोवैज्ञानिक चित्रण में अद्वितीय है।

रत्न कुमारीजी का क्षेत्र पारिवारिक है। लेखिका ने उनमें हमारे आधुनिक पारिवारिक जीवन का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। आपने यह चित्रित करने का प्रयत्न किया है कि हमारे परिवारों में क्या क्या निर्बलताएँ प्रविष्ट हो गई हैं। रत्नकुमारीजी की भाषा ओजपूर्ण, शैली सरस, विचार पुष्ट, कथानक आकर्षक और कथोपकथन रोचक होते हैं। ये सब गुण किसी अन्य महिला एकांकीकार में एक साथ नहीं मिलते।

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी कहानी, उपन्यास तथा एकांकी तीनों ही क्षेत्रों में मनोयोग पूर्वक कार्य कर रही हैं। आपके उच्च कोटि के एकांकी प्रकाशित हुए हैं—१ 'रंगा-सियार' (१६४६) २—'भूल भुलैया' (मानवता १६४६) ३—'मुँह दिखाई' (१६५०) ४—'माटी की मूरत' (१६५२) ५—'रंगीन पर्दा' (१६५१) इत्यादि। आपके नाटक उच्च वर्ग की नग्न समस्याओं से सम्बन्धित है, जैसे सभ्य समाज में शिक्षितों का मिथ्याचार, गरीबों की यातनाएँ, सचाई, शील, गुण इत्यादि के प्रति उनकी विरक्ति, सभ्यता की छाया में पलने वाली धोखेबाजी, तरुणाई के प्रवाह में की जाने वाली मूर्खताएँ रोमान्स के ससार में मधुरता के पीछे से झांकने वाली कुरूपता, मिथ्या दंभ, छलछन्द, खोखलापन, सम्बन्धियों की पारस्परिक खटपट, साझे के व्यापार का दिवालियापन, नौकरों पर किए जाने वाले अत्याचार आदि समाज के मिथ्या व्यवहारों की आप आलोचक हैं और उनकी असलियत प्रकट करना आपका मूल ध्येय हैं। सभ्य जगत की अनेक दुर्बलताओं पर आपने उंगली रख दी है। इनके नाटकों में हम जीवन का वह पहलू पाते है, जिनके प्रति हम अनजान है; समाज का लड़खड़ाता पहलू, जिसकी बुनियादें खोखली हो चुकी हैं।

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी के नाट्य जगत् में कहीं अमीरी की धूप है, तो कही ग़रीब की छाया; एक ओर मंगल गीतों का उच्चारण हो रहा है तो दूसरी ओर मातम हो रहा है; नौकर पीटे जारहे हैं; कहीं इनाम दिया जा रहा है। इनमें न केवल समस्या तथा रंगों की विभिन्नता है, वरन् नई पुरानी भारतीय सभ्यता के संघर्ष का चित्रण है। कई नाटकों जैसे—'माटी की मूरत' 'मुँहदिखाई' इत्यादि में हीरादेवीजी का विशुद्ध यथार्थ एवं जीवनदर्शन

प्रकट हुआ है। वे समाज के मिथ्या दिखावे के प्रति विद्रोही हैं। गरीबों पीड़ितों शोषितों के प्रति उनके हृदय में सहज स्नेह और सहानुभूति है। इन नाटकों के द्वारा यथार्थ सामाजिक जीवन का एक आइना उन्होंने हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। उसके छलछिद्र, विद्रूपता एवं दुरभिसंधि का यार्थार्थ-वादी चित्रण इनमें हुआ है।

'भूलभुलैयां' में एक भावुक युवक अरुण का चित्रण है। उनका छापखाना खूब चलता है; स्वयं किताबें लिखते और छापते हैं किन्तु प्रेस घाटे में चलने के कारण सम्बन्धियों से खटपट होती है। जिन सम्बन्धियों ने हाथ बटाया था, वे ही अरुण बाबू को दिवालिया बना देते है। छापखाना बिकता है और अरुणबाबू बेकार हो जाते हैं। इसका मानसिक आघात उन्हें शिथिल कर देता है। पैसा पास नहीं है। अरुण के चरित्र में आदर्शवाद भर गया है; वह भावुकता क शिकार है। वह पत्नी को डाक्टर के पास तक नहीं जाने देता। उसके विचारों की झांकी इन वक्तव्यों से प्रकट होती है—

"दुनियां इसी का नाम है। कहीं धूप है, तो कहीं छाया। किसी के घर में मंगलगीत गाये जाते हैं अथवा शहनाई बजती है। तुम यह आशा ही क्यों करती हो कि तुम्हारे घर में दुःख, दर्द और अभाव है, तो सारी दुनिया सर दर्द मोल ले बैठे।"

"हम अपने कर्त्तव्य किये जांय; परन्तु दूसरों से उसके प्रतिफल की आशा करें-भूलकर भी नहीं""।

ऐसा सुन्दर गीत गाने वाली इस दुनिया से भला क्या माँगेगा? और दुनिया उसे दे ही क्या सकेगी? यही बहुत है कि वह अपने मन की पीर दुनिया को सुना रही है। यह जीवन सचमुच एक आंखमिचोनी है और यह दुनिया है एक भूलभुलैया ""।

दिल पर लगने वाली चोट की दवा नहीं हो पाती। अरुण की मृत्यु हो जाती है। इस एकांकी का विषय मनोवैज्ञानिक है अधिक भावुकता भी निंद्य है; एक बड़ी कमजोरी है—यही दिखाना इष्ट है। इसके अतिरिक्त सम्बन्धियों के साथ व्यापार में हानि की सम्भावनाएँ, दुनिया का कठोर यथार्थवाद जीवन की आंखमिचोनी, माया की भूलभुलैया का नग्न चित्रण किया गया

किये गये विशेष कृत्यों के प्रदर्शन में नाट्यकार ने विशेष दिलचस्पी ली है। 'भूल भुलैया' के आदर्शवादी भावुक अरुण, उसकी पत्नी अलका, दर्शनशास्त्र के डॉक्टर रमेश के व्यक्तित्व उनके अस्थि मज्जा के शरीर और कृत्यों की रूप रेखा के अतिरिक्त हमारे मन पर कुछ स्थूल भाव छोड़ जाते हैं। इनमें प्रत्येक पात्र एक विचार विशेष का प्रतीक है। अरुण भावुकता की कमजोरी प्रदर्शित करता है, तो रमेश सभ्यता के छलछिद्र का प्रतीक है। रमा आधुनिक रंगीन सभ्यता के रोमांस की मूर्खता का मूर्तिमान् स्वरूप है। अलका साधारण शिक्षा में आदर्श नारी का एक अनुकरणीय आदर्श है। इन पात्रों के अतिरिक्त गौण पात्र 'रंगे सियार' की सरला, कमला, 'भूल भुलैयां' में अलका की सहेलियां सभी विचारपूर्ण, प्रेरणाप्रद बातचीत करती हैं। हृदय और मस्तिष्क के पारस्परिक ताने बाने से इन समस्याओं को उभारा गया है। इनके पात्र घटनाओं और समाज से अलग होकर 'टाइप' बन जाते हैं। इन पात्रों के द्वारा नाटककार ने समाज के उतार चढ़ाव को भी खोलकर रख दिया है। इन पात्रों में लेखिका का समाज से असतोषपूर्ण हाह कार मुखरित हुआ है।

प्रारम्भ में आप कौतूहल की स्थिति रखती हैं। धीरे धीरे एकांकी गति पकड़ता है, कथानक मध्य में खुलकर अन्त तक पहुंचते पहुंचते चरित्र चित्रण की तीव्र और संक्षिप्त रूप रेखा खिंचती जाती है। अन्त होते होते व्यंजनात्मकता और प्रभावशीलता बढ़ जाती है। आप जीवन की एकरूपता का, चरित्र के एक पहलू का ही अध्ययन प्रस्तुत करती हैं। उदाहरणार्थ 'रंगासियार' *शिक्षित धोखेबाजी और 'भूल भुलैया' भावुकता को निर्बलता का अध्ययन* प्रस्तुत करता है। 'रंगेसियार' में वर्णनात्मक तत्वों का प्राचुर्य है। अभिनय की दृष्टि से दोनों ही सफल रचनाएँ हैं।

टेकनीक की दृष्टि से 'रंगासियार' सफल रचना है। एक ही लम्बे दृश्य में सम्पूर्ण कथानक को प्रगट कर दिया है। प्रारम्भिक स्थल सरल सादे होकर आनेवाली मूल समस्या पर प्रकाश डालने वाले हैं। 'भूलभुलैय्या' में जो कार्य प्रथम दृश्य से निकाला जाता है, वही 'रंगासियार' में रमा तथा उसकी सहेलियों की प्रारम्भिक बातचीत से पूर्ण किया गया है। 'भूलभुलैया' बड़े नाटक का संक्षिप्त संस्करण कहा जा सकता है।

इनके नाटकों में चरमसीमा अन्त में आती है। हृदय पर एक तीखा आघात करते हुए नाटक समाप्त होता है। प्रारम्भिक वर्त्तालाप से ही संविधान इस प्रकार कहा जाता है कि घटनाएँ एक दूसरे की सहायता करतीं जाती हैं। Final Impression उत्पन्न कर नाटक की इति श्री हो जाती है।

'भूलभुलैया में यत्र-तत्र सांकेतिक प्रयोगों का भी आश्रय लिया गया है। दो प्रकार से प्रतीकों का उपयोग किया गया है। प्रथम तो रंगमच की पृष्ठ-भूमि से बैक ग्राउण्ड गीतों के द्वारा एक विचार-विशेष का प्रतिपालन किया गया है। दूसरे वस्तुओं के द्वारा, जैसे-जैसे 'भूलभूलैया' में अलका घर का अन्धकार दूर करने के लिए दीपक जलाती है। दीपक जलाकर अपने जीवन देवता की आयु स्वास्थ्यकामना करती है। इसी बीच में हवा का एक तेज झोंका आता है। दीपक बुझ जाता है। अलका को पति के जीवन की आशंका हो जाती है।

हीरादेवीजी का कविहृदय दोनों नाटकों में उद्वेलित हुआ है। "रंगे-सियार" का वातावरण गम्भीर और तीखा होने के कारण वहां सरला केवल अभिनय के साथ गुनगुनाती भर है किन्तु "भूलभुलैया" में तीन मधुर गीतों का प्रयोग किया गया है। टेकनीक में हीरादेवी जी की एक विशेषता बेक-ग्राउन्ड से आता हुआ, यह संगीत है, जो वातावरण की मूल भावना को प्रदीप्त करता है। प्रथम दो गाने मधुर प्रकृति की शोभाश्री का निदर्शन करते हैं, अन्तिम गाने का प्रतीकात्मक प्रयोग है। अलका के पति के बचने की कोई आशा नहीं है। वह धड़ाम से फर्श पर कटे वृक्ष की भाँति गिर जाती है। पीछे से कोई व्यक्ति यह गीत गाता है—

आंख मिचौनी जीवन की यह सब को ही भरमाये।
भूलभुलैया माया की यह सबको ही भटकाये॥

श्रीमती शचीरानी गूर्टू एम० ए० आलोचना के क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं, किन्तु कहानी एवं एकांकी के क्षेत्र में भी सफल रही है। आपकी कहानियां मनोवैज्ञानिक हैं। एकांकी नाटकों में आपकी दो विभिन्न धाराएँ उपलब्ध हैं:—

(१) सामाजिक एवं आर्थिक व्यंग्य (२) पौराणिक आदर्शवाद

प्रथम धारा का प्रतिनिधि आपका 'हरिया' एकांकी (१९५०) नाटक है, जिसमें एक निर्धन परिवार के गरीब बेबस लड़के का मर्मस्पर्शी चित्र है, जो होटल में नौकर है और मैनेजर की निर्दयता का शिकार बनता है। वह स्वयं खराब नहीं है, समाज की परिस्थितियां उसे चोर बनाती हैं। यह नाटक हमारी दूषित आर्थिक व्यवस्था पर एक व्यंग्य है। दूसरी धारा का प्रतिनिधि 'माता देवदूति' नाटक है, जिसमें आपने आदर्श पौराणिक चित्र प्रस्तुत किया है।

अपने सामाजिक नाटकों में शचीरानी जी ने मजदूरों की दुरावस्था, नैतिक हीनता, पतन, शराबखोरी अधिक सन्तान से उत्पन्न निर्धनता-जन्य कठिनाइयों को चित्रित किया है। जिस समाज में परिवार इतने गरीब, मूर्ख, व्यसनी कामांध हों, जिससे स्त्रियों को संतान प्रजनन के हेतु एक यन्त्र बना लिया जाय, व्यसन अभिवृद्धि पर हो, मजदूरों के बच्चे निरन्तर शोषित हों, वहां समाज की जर्जरता-चरम सीमा पर पहुँची हुई समझनी चाहिए। इस समाज में रहने के कारण परिस्थिति से मजबूर होकर निर्धन परिवार के बच्चे चोरी कर सकते हैं; लेकिन इसका उत्तरदायित्व उस समाज विधान पर है जो समाज का आर्थिक आधार ऊँचा नहीं उठाता, प्रत्युत जिसमें अमीर अधिकाधिक अमीर तथा गरीब निरन्तर गरीब होता जाता है। हरिया का शराबी पिता इसी समाज का सड़ा गला अंग है, जो मल में किलमिलाते कीड़े की तरह अबोध अज्ञानी और अन्धकार में है। हरिया की मां शराबी पति को पाकर भी सहज स्निग्ध है। रूढ़िवादी समाज के शिकंजों में उसकी आत्मा जैसे तड़प रही है।

आपके सामाजिक नाटकों की पृष्ठभूमि नग्न यथार्थ पर खड़ी की गई है। "हरिया" को पढ़कर हमें निम्न वर्ग की मौजूदा स्थिति का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। जैसा उन्होंने निम्न समाज देखा वैसा ही चित्रित किया है, किन्तु इस यथार्थ के भीतर हमें आदर्श की प्रतिष्ठा भी प्राप्त हो जाती है। हरिया स्वभावतः आदर्शवादी है। वह कुत्ते को इतना अधिक प्रेम करता है कि उसके सुख के लिए अपनी नौकरी और पिता की भर्त्सना की परवाह नहीं

करता। उन्होंने जिसको निज दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। नारी के चित्रण में उनकी असीम सहानुभूति उद्वेलित हो उठी है।

वे मनोविश्लेषणात्मक आधार पर ऐसे चित्रों की सृष्टि करती हैं, जिनमें वस्तु की नग्नता तो है, किन्तु वे आदर्श की ओर संकेत करती हैं; वह भी स्पष्ट है। उनके एकांकियों में यही बुद्धिवादी यथार्थ है। रंगबिरंगे कल्पना लोक में विहार करने की अपेक्षा कठो वास्तविकता की ओर वे ध्यान आकृष्ट करती हैं।

आपके नाटकों में मनोविज्ञान से प्रचुर सहायता ली गई है। 'हरिया' में बालक की गुप्त प्रवृत्तियों का मनोविश्लेषण किया गया है। घोर निर्धनता में होकर भी बालक स्वभावतः बुरा नहीं होता; उसमें उच्चता, दिव्यता और ईमानदारी होती है। वह अपने आदर्श के प्रति सदा ईमानदार रहता है। परिस्थितियों का उस पर तीव्र प्रभाव पड़ता है। इसीका चित्रण 'हरिया' में किया गया है। शराबी पिता का चित्रण भी मनोविज्ञान की कसौटी पर है, यद्यपि उसका स्वरूप अतिरंजित है।

पौराणिक आदर्शवाद के अन्तर्गत हम इनका 'माता देवहूति' रख सकते हैं। एक आदर्श चरित्र की प्रतिष्ठा के लिए इस नाटक की सृष्टि की गई है। इसका वातावरण सत्य त्याग, भक्ति वैराग्य से परिपूर्ण है। लेखिका की प्रवृत्ति केवल पात्रों ही द्वारा नहीं, प्रत्युत सिद्धान्त वाक्यों तथा नैतिक उपदेशों द्वारा भी आदर्शवाद की स्थापना की ओर रही है। कपिलदेव के मुख से जिस वचनावलि का प्रयोग कराया गया है, वह कोई नैतिक-धार्मिक उपदेशक ही दे सकता है। यहां आदर्शवाद इतना स्पष्ट हो गया है कि वह नाटक के अन्तर संघर्ष को ही नष्ट कर डालता है। कपिल देव तथा माता देवहूति, जिसमें आदर्श उतारा गया है आदर्शमय होकर महान पूजायोग्य तथा अनुकरणीय हो गए हैं। भावुकता, बौद्धिक वैराग्य तथा भक्ति का समावेश इसमें हो गया है।

पौराणिक नाटकों, जैसे "माता देवहूति" में आपने स्वतन्त्र कल्पना से भी काम लिया है और नवीनता का समावेश किया है। महर्षि कर्दम का देवहूति को दर्शन होना भागवत में नहीं है। यह नाट्यकार की सूझ का परि-

"दो पहलू" (सरस्वती, मार्च १९४६) में आपने शिक्षित स्त्री के गृहस्थ एवं पारिवारिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। नीलिमा मिस्ट्रेस है, मृदुला उसकी बालसखी है, परिवार में फँसी हुई है। दूसरी ओर नीलिमा स्वच्छन्दता की शौकीन है, जिसमें खाने पीने, उठने बैठने की स्वतन्त्रता है। यह स्त्री स्वच्छन्द जीवन को श्रेष्ठतर बताती है किन्तु मन ही मन मृदुला के शान्त सन्तुष्ट मधुर पारिवारिक जीवन को ही श्रेष्ट समझती है। उधर मृदुला पारिवारिक जीवन की सिफारिश करती है; पर स्वच्छन्द जीवन मन ही मन अच्छा समझती है।

इस नाटक में लेखिका ने दो स्त्रियों की आन्तरिक मन स्थिति, संघर्ष, परिस्थिति सम्बन्धी कठिनाइयां और आदर्श एवं यथार्थ का भेद अच्छी तरह प्रकट किया है। यदि आज की स्त्रियों पूर्ण आर्थिक स्वच्छंदता मिल भी जाय, तब भी उनकी मनोदशा ऐसी है कि उसे सहायता के लिये किसी पुरुष की आवश्यकता है। स्त्री बाह्य सांसारिक जगत् की विषमता को अपनी कोमलता के कारण ग्रहण नहीं कर सकती। गृह का कोमल वातावरण ही उसके लिये उचित है।

एक स्थान पर नीलिमा अपने स्वतन्त्र जीवन से ऊबकर कहती है:—

"अह! चीनी जैसी छोटी चीज के लिये भी उस भयावह सूरतवाले क्लैकी से मिलना होगा। हर बात मेरे ही सिर पर पड़ती है ... इतने वेतन में अपना ही पूरा नहीं पड़ता। पोस्टेज के लिए पैसे कहाँ से लाऊँ? सुबह उठते ही, स्कूल जाना है स्कूल से लौटकर आऊँगी तो नौकर की किच-किच किच। जीने का सामान करते करते मरने लगी। ऐसी लाइफ से ऊब गई......मुजसे मृदुला ही अच्छी है।'

दूसरी ओर परिवार की उलझनों में फँसी बेचारी मृदुला अपने पति से कहती है—

मृदुला—(बच्चों से नाराज होकर) मैं दिन भर इन्हीं बातों की हो गई। एक इधर चिल्ला रहा है, एक उधर। घड़ी भर निकलने की फुरसत नहीं। नीलिमा शुरू से क्लास में पीछे रही। अब देखो कैसी प्रतिभा चमक रही है। लेख लिखती है, व्याख्यान देती है, जनता में सम्मान है। एक मैं

कि हाय-हाय के अतिरिक्त कुछ नहीं। परतन्त्र रहकर भी किस को सुख मिला है, सचमुच नीलिम्माने ही मार्ग चुना है।"

इसी संघर्ष तथा द्वन्द्व के मध्य में नाट्यकार हमें छोड़ देती है। आज की स्त्री में जो जागृति है, जिसमें वे पथभ्रम हो रही हैं, संशयात्मक स्थिति का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। विवाहित जीवन के पक्ष और विपक्ष में सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। एकांकीकार ने निष्कर्ष निकालने का कार्य दर्शकों पर छोड़ दिया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी नाट्य-साहित्य के अन्तर्गत महिला एकांकी नाट्यकारों द्वारा भी पर्याप्त सेवा हो रही है। उनके हाथ में एकांकी नाटक निरन्तर उन्नति कर रहा है।

११—हिन्दी एकांकी-साहित्य में प्रहसन

संस्कृत नाट्य-साहित्य के अनुसार, रूपक के दस भेदों में, प्रहसन अपना विशेष महत्त्व रखता है। मूलतः यह एक ही अंक का होता है। प्रहसन की परिभाषा करते हुए श्री विश्वनाथ ने निर्देश किया है:—

"भाणवत्सधि संध्यङ्ग लास्याङ्गाङ्कैर्विनिर्मितम्"

भाण की भांति प्रहसन में एक अंक होता है। पर आगे चलकर प्रहसन में एक अंक की सीमा का पालन न हुआ, दो अंकों में भी लिखा जाने लगा। प्रहसन की आत्मा हास्य-व्यंग्य है। अच्छे प्रहसन की सफलता इसमें है कि वह किस तीखेपन से किसी विशेष सामाजिक कुरीति, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक वैयक्तिक जीवन पर प्रहार करता है। उसमें किसी प्रकार की कुरूपता, असंगति अनौचित्य, अनैतिकता, पाखण्ड आदि को व्यंग्य का शिकार बनाया गया है। सस्कृत नाटकों का विदूषक प्रहसनात्मक दृश्यों का प्राणस्वरूप होता था। आधुनिक प्रहसनों मे विदूषक जैसी परम्परा लुप्त हो चुकी है।

प्रहसन, समाज का चाबुक है। जिस प्रकार चाबुक मारकर घोड़े को ठीक मार्ग पर किया जाता है, उसी प्रकार व्यंग्य-बाण के द्वारा प्रहसन; समाज की मर्यादा स्थिर रखता है। अधिकतर प्रहसन, समाज की विद्रूपताओं को उभारने के उद्देश्य से प्रणीत हुये हैं। व्यक्तियों की विचित्रताएँ लेकर प्रणीत प्रहसनों में लोकप्रियता का अभाव रहता है, जब तक कि ये व्यक्ति किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व न करें। समाज में फैले हुए दुर्गुण, व्यक्ति की आड़ लेकर जनता के समक्ष प्रस्तुत किये जा सकते हैं। जब समाज नाना कुरीतियों, वर्ग-वैमनस्य, कुत्सित दाँव-पेच, रूढ़ियों, भ्रममूलक आशाओं, निरर्थक पार्टीबन्दी प्रपंचपूर्ण कार्यों, अस्वाभाविक जीवन, आदर्श झगड़ों, धार्मिक पाखण्ड का कटीला बन जाता है, तब उन जटिलताओं को सुलझाने के हेतु प्रहसन की रचना होती है। यही कारण है कि हमें उस समाज तथा काल में विशेष रूप से प्रहसन मिलते हैं, जिसमें समाज की अवस्था पतित है और वह न्यूनताओं से पूर्ण है। समाज की जितनी भी गिरी हुई अवस्था होगी, प्रहसन में उतना ही तीखा व्यंग्य होगा।

यह परिताप का विषय है कि हिन्दी के पास अपना रंगमंच नहीं रहा है। फलतः हिन्दी नाटकों के साथ ही प्रहसन के आरम्भिक प्रयोग शिथिल से हैं। मुसलमानी शासन के उत्तरार्द्ध में नाट्य-कला एक प्रकार से समाधिस्थ सी कर दी गई थी; समाज में नाटक को ऊँची दृष्टि से न देखा गया, कुशल अभिनेताओं का अभाव रहा। अतः नाटक के क्षेत्र में कोई बड़े प्रयोग न हो सके। प्रहसन प्रायः बड़े नाटकों के मध्य में मनोरंजन के लिए ही प्रयुक्त होते रहे। आधुनिक एकांकी कला के अन्तर्गत प्रहसन का विशेष रूप से प्रसार हुआ है।

यों तो साधारण कोटि के प्रहसन हिन्दी में प्रारम्भिक काल में भी लिखे गये हैं, किन्तु इनका विकास अंग्रेजी भाषा-साहित्य के सम्पर्क से विशेष रूप से हुआ है। १९ वीं शताब्दी में भारतीय साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव अधिक रहा है। अंग्रेजी के माध्यम हो जाने के कारण हमारे पाठक एवं लेखक, पाश्चात्य शैली पर प्रहसनों का निर्माण करने लगे थे। भारतेन्दु-काल में प्रहसनों का प्रारम्भिक प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इस काल के प्रहसन साधारण

कोटि के हैं; जिनमें नाट्यकार का मूल तात्पर्य आवश्यकता से अधिक स्पष्ट हो गया है। स्थान स्थान पर शेर-दोहों का प्रयोग है। सामाजिक कुरीतियों— मद्यपान, प्रसगत-प्रेम, वेश्यावृत्ति, छल-कपट पूर्ण व्यवहार, रूढ़िवादी चरित्र धार्मिक पाखण्ड, मूर्खतापूर्ण व्यवहार को प्रहसनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया। भारतेन्दु ने संस्कृत नाट्य-शास्त्र की नींव पर हिन्दी प्रहसनों का प्रासाद निर्मित किया है।

हिन्दी के प्रारम्भिक प्रहसन के प्रयोग कर्त्ताओं में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यों तो बालकृष्ण भट्ट, देवकीनन्दन त्रिपाठी, राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र प्रभृति नाट्यकारों ने प्रारम्भिक प्रयोग किये थे; किन्तु भारतेन्दु जी का कार्य युगान्तकारी था। भारतेन्दु जी के 'अन्धेर नगरी; 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आदि में उच्चकोटि का साहित्यिक व्यंग्य था। बालकृष्ण भट्ट के 'शिक्षादान', 'जैसा काम वैसा परिणाम' (संवत् १६३४); 'कालिराज की सभा'; 'रेल का विकट खेल,' 'बाल-विवाह' आदि प्रकाशित हुए हैं। 'शिक्षादान' में आधुनिक शिक्षित युवक का पाखण्ड तथा अस्वाभाविक आदर्श, अशिष्टता, दुःशीलता, कुसंगति को व्यंग्य का शिकार बनाया गया है। एक पढ़ा लिखा बड़े घर का लड़का, जो बाहर से सभ्यता का आवरण चढ़ाये हुए है, कुसंगति में पड़कर अपने चरित्र को दूसित करता है, उसका व्यंग्यपूर्ण खाका भट्ट जी ने प्रस्तुत किया है। भट्टजी के प्रहसन सुधारवादी हैं। 'शिक्षादान' के अन्त में भरतमुनि का वाक्य लिखा गया है:—

होंहि एक पतिव्रत-रत सब भारत नर वर।
तजहिं कुपथ, पथ गहहिं धर्म कर दुर्मति तज कर॥
तजे वेश्यासंग रमन करहिं श्रद्धा निज तिय पर।
जासों सुधरहिं दशा हीन भारत के सत्वर॥

श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी के दो प्रसिद्ध प्रहसन प्रकाशित हुए हैं, 'कलियुगी जनेऊ' तथा 'कलियुगी विवाह' (संवत् १६४३)। अपने प्रहसनों में त्रिपाठीजी ने झाड़-फूँक, टोना जादू, पुरोहितों की अशिक्षा, मूर्खता, रूढ़-

वादिता, धोखेबाजी, यज्ञोपवीत की दुर्दशा, ब्रह्मचर्य आश्रम की दुर्दशा का निर्दशन किया है। छोटे बच्चों के विवाहों के दुष्परिणाम भी व्यक्त किये हैं।

'कलियुगी जनेऊ' में उन पुरोहितों पर व्यंग्य है, जो अशिक्षित होते हुए जनता को मूर्ख बनाते और ठगते हैं। वे नहीं जानते कि वेदों में क्या है, फिर भी जनता और विशेषतः स्त्रियों को धोखा देते हैं, रुपया और पवित्रता नष्ट करते हैं। मन्त्रों का नाम कुछ का कुछ उच्चारण किया करते हैं। इस प्रहसन में एक पुरोहित का अन्तरजित्त चित्र देखिए:—

पुरोहित गजवदन—तो चुप रहो, अब वेदारम्भ हो (हाथ पकड़ कर) पूरा, वेदा गणपति कासा फिकवा, मानहानि; जरा मरण पतयो विषा, वेद, उगा: क्यः !!

नौनीतराय—भाई, इसमें तो कोई सिफ्त की बातें नहीं हैं। कोई अच्छा सा ऋचा पढ़ाइये। यह तो दयानन्दियों का सा खेल मालूम पड़ता है।

गजवदन—लीजिए ! दण्ड, पादुका, मिसरी, चन्दन, कज्जल, चांस्तु, गुड़, गोंद स्वाहः स्वाहः।

मकरू—लाला, एक ऋचा हमहूँ पढ़वै। देखई कैसन चा।

गजवदन—(हाथ पकड़ कर पढ़ता है) ऋण स्वाहा:, धन स्वाहाः, कुल स्वाहा:, विद्या विनय स्वाहाः, ढोल स्वाहाः, दमार स्वाहाः, पण्डित स्वाहाः, जिजमान स्वाहाः, सर्व स्वाहाः हरि भजे। वेश्या मनोर्भुजे उफाली सेवे गाजी, प्रपञ्चे स्वाहाः।

दूसरे प्रहसन 'कलियुगी विवाह' में वर्तमान समय के अस्तव्यस्त रीति से प्रचलित विवाह की दुर्दशा चित्रित की गई है। अन्त में नाट्यकार ने लिखा है—

गर्ग औ गौतम शाण्डिल नाम ले बेचउ पूत कुलीन कहाओ।
बेद औ शास्त्र पुरानहु को तुम भूरि प्रपंच से धूरि मिलाओ॥
तीन औ चारहु पाँच बरसिन के बालक ब्याहि कुरीति बढ़ाओ।
नारी [illegible] भारत के मुख खाक लगाओ॥

आपका तृतीय प्रहसन 'जयनारसिंह की' है। यह अंग्रेजी प्रभावित नाटक है, जिसका उद्देश्य ओझा आदि वंचकों की धूर्तता, धोखेबाजी का भण्डाफोड़ करना है। त्रिपाठी जी के प्रहसन, सुधार की वृत्ति से ओत-प्रोत हैं। मध्य में गीतों के प्रयोग, रस निष्पत्ति के लिए रखे गये हैं।

पं० प्रतापनारायण मिश्र के दो प्रहसन हैं। (१) 'जुआरी खुआरी' (२) 'कलिकौतुक' इनमें सभ्य पुरुषों के चरित्रों की निर्मलता, मांस-मदिरा-सेवन की बुराइयाँ व्यभिचार, साधुओं भाडों की दुष्टता चित्रित है। मिश्रजी की दृष्टि चरित्र चित्रण पर रहती थी।

श्री किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेट' प्रसिद्ध प्रहसन है, जिसमें त्रियाचरित्र की कहानी को एकांकी का रूप दे दिया गया है। इसमें लम्पटों की दुर्दशा का मनोहर चित्र खींचा गया है। श्री अनन्तराम पाण्डे का 'कपटी मुनि' प्रहसन १६०३ में प्रकाशित हुआ था। यह सुधारवादी वृत्ति का प्रहसन है।

(द्विवेदी युग १६०३-१६१८)

सुधारवादी युग होने के कारण इस युग में प्रहसनों का कार्य वेग से चलता रहा। इस युग में दो शक्तिशाली प्रहसनकार दृष्टिगोचर होते हैं–प्रो० बदरीनाथ भट्ट तथा जी० पी० श्रीवास्तव। भट्टजी के अनेक प्रहसन प्रकाशित हुए हैं, जैसे 'मिस अमेरिकन' 'विवाह-विज्ञापन'; लबड़धोंधों (एक छोटे प्रहसनों का संग्रह) १६२८ में प्रकाशित हुए। इनका हास्य शिष्ट, साहित्यिक, सभ्यतापूर्ण और सुरुचि का द्योतक है। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने प्रहसन बृहत संख्या में लिखे हैं, (जैसे–'मरदानी औरत'; 'गड़बड़ झाला' आदि (१६१७); 'कुरेसं मैन' (१६२३) 'पत्रपत्रिका सम्मेलन' (१६२५) 'घंटाढार'; (१६२४) 'न घर का न घाट का' (१६२५), किन्तु ये अपने प्रहसनों में उच्चकोटि का शिष्ट साहित्यिक हास्य न दे सके। इनके प्रहसनों में साहित्यिक हास्य की अपेक्षा धोलधप्पे का हास्य अधिक है। श्रीवास्तवजी ने चुंगी की उम्मीदवारी, पूँजीपतियों, साहूकारों की चरित्रहीनता, साहित्य में अश्लीलता, नेताओं की चरित्रहीनता, मिथ्याचार आदि पर समाज-सुधार की दृष्टि से प्रकाश डाला है।

आपका तृतीय प्रहसन 'जयनारसिंह की' है। यह अंग्रेजी प्रभावित नाटक है, जिसका उद्देश्य ओझा आदि वंचकों की धूर्तता, ढोंगेबाजी का भण्डाफोड़ करना है। त्रिपाठी जी के प्रहसन, सुधार की वृत्ति से ओत-प्रोत हैं। मध्य में गीतों के प्रयोग, रस निष्पत्ति के लिए रखे गये हैं।

पं० प्रतापनारायण मिश्र के दो प्रहसन हैं। (१) 'जुआरी खुआरी' (२) 'कलिकौतुक' इनमें सभ्य पुरुषों के चरित्रों की निर्बलता, मांस-मदिरा-सेवन की बुराइयाँ व्यभिचार, साधुओं भाटों की दुष्टता चित्रित है। मिश्रजी की दृष्टि चरित्र चित्रण पर रहती थी।

श्री किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेट' प्रसिद्ध प्रहसन है, जिसमें त्रियाचरित्र की कहानी को एकांकी का रूप दे दिया गया है। इसमें लम्पटों की दुर्दशा का मनोहर चित्र खींचा गया है। श्री अनन्तराम पाण्डे का 'कपटी मुनि' प्रहसन १६०३ में प्रकाशित हुआ था। यह सुधारवादी वृत्ति का प्रहसन है।

(द्विवेदी युग १६०३-१६१८)

सुधारवादी युग होने के कारण इस युग में प्रहसनों का कार्य वेग से चलता रहा। इस युग में दो शक्तिशाली प्रहसनकार दृष्टिगोचर होते हैं—प्रो० बदरीनाथ भट्ट तथा जी० पी० श्रीवास्तव। भट्टजी के अनेक प्रहसन प्रकाशित हुए हैं, जैसे 'मिस अमेरिकन' 'विवाह-विज्ञापन'; लबड़धोंधों (एक छोटे प्रहसनों का संग्रह) १६२८ में प्रकाशित हुए। इनका हास्य शिष्ट, साहित्यिक, सभ्यतापूर्ण और सुरुचि का द्योतक है। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने प्रहसन वृहत संख्या में लिखे हैं, (जैसे—'मरदानी औरत'; 'गड़बड़ झाला' आदि (१६१७); 'कुरेसं मैन' (१६२३) 'पत्रपत्रिका सम्मेलन' (१६२५) 'घंटाढार'; (१६२४) 'न घर का न घाट का' (१६२५), किन्तु ये अपने प्रहसनों में उच्चकोटि का शिष्ट साहित्यिक हास्य न दे सके। इनके प्रहसनों में साहित्यिक हास्य की अपेक्षा धोलधप्पे का हास्य अधिक है। श्रीवास्तवजी ने चुंगी की उम्मीदवारी, पूँजीपतियों, साहूकारों की चरित्रहीनता, साहित्य में अश्लीलता, नेताओं की चरित्रहीनता, मिथ्याचार आदि पर समाज-सुधार की दृष्टि से प्रकाश डाला है।

इस काल के एक सफल प्रहसनकार पंडित हरिशंकरशर्मा कविरत्न हैं। (१९२४-२५) में आर्यसमाज से प्रभावित होकर आपने आर्य-मित्र में प्रहसन लिखने आरम्भ किये थे। आपके 'बिरादरी-विभ्राट्'; 'पाखण्ड-प्रदर्शन'; स्वर्ग की सीधी सड़क'; 'बुढ़क का ब्याह' आदि प्रहसन शिष्ट हास्य के उदाहरण हैं। शर्मा जी की शैली बदरीनाथ भट्ट-स्कूल के हास्य व्यंग्य वाली है। आपने समाज के मिथ्याचारपूर्ण जीवन से असंतुष्ट रहे। आपने सामाजिक जीवन के अन्तर्गत छलकपट पूर्ण जीवन, ऊंच नीच का भेद, रूढ़िवादी चरित्र, पडित और धर्माचार्यों का जीवन, धार्मिक पाखण्ड आदि पर बौद्धिक कटाक्ष किया है।

पं० रूपनारायण पांडेय का 'प्रायश्चित प्रहसन्' (१९२८) मनोरंजक प्रहसन है। आपके प्रहसनों में 'मूर्ख मण्डली' महत्त्वपूर्ण रचना है। आपने देशी होकर विदेशी चाल चलने वालों का हास्य-व्यंग्यमय खाका खींचा है। आपका हास्य शिष्ट और सभ्यतापूर्ण है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' प्रहसनों के क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्ध कर चुके हैं आपके 'उजबक' तथा 'चार बेचारे' (१९२५) सफल हास्य व्यंग्यात्मक रचनाएँ हैं। 'चार बेचारे' के चारों प्रहसन—(१) 'बेचारा संपादक' (२) 'बेचारा अध्यापक' (३) 'बेचारा सुधारक' (४) 'बेचारा प्रचारक' १९२२-१९२५ तक के मध्य में लिखे गये थे। सन् १९४१ में आपने एक बड़ा मनोरंजक गीति प्रहसन प्रकाशित किया 'हवाई हैदराबाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन इसमें आपने साहित्य-जगत् में फैली हुई अनेक भ्रान्तियों पर व्यंग्य किया है आपके प्रहसनों में बात को साफ़ साफ़ कह देने का फक्कड़पन है और कठोर निर्मम व्यंग्य।

श्री सुदर्शन का 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' जनता में से बनाये हुए मजिस्ट्रे[illegible] की [illegible] योग्यता है। जिन्हें जनता की सेवा करने के लिए प्रायः चुना जात है, वे लोग प्रायः अपढ़, मूर्ख अशिक्षित और डरपोक होते हैं। उनमें शास[illegible] की कोई योग्यता नहीं होती, यद्यपि न्याय का दण्ड उनके कर कमलों में दिया जाता है। इस प्रहसन में ऐसे ही जन-सेवकों के चित्र हैं।

[illegible] रामनरेश त्रिपाठी के साहित्यिक प्रहसन महत्त्वपूर्ण हैं। स्त्रियों [illegible] [illegible] प्रहसन में स्त्रियों की कलहप्रियता, असहिष्णुता, ईर्ष्या तथा लग

ध्यान में रखकर ये प्रहसन लिखे गये हैं। मानसिक असंगति, अनौचित्य, किसी कार्य को करने में अति और अस्वाभाविक जीवन को आपने व्यंग्य का शिकार बनाया है।

नये एकांकीकारों में सर्व श्री विष्णु प्रभाकर, रामसरन शर्मा मधुकर खेर, रामचन्द्र तिवारी, भगवतीचरण वर्मा, सरनामसिंह शर्मा, अरुण माचवे, बेढ़ब बनारसी आदि नाट्यकारों ने प्रहसनों में नवीन जागृति का शंख फूंका है।

श्री विष्णुप्रभाकर के 'कांग्रेसमैन बनो' 'व्यंग्य', 'भूल', 'गीत के बोल' 'पुस्तक कीट' 'कार्यक्रम', 'कला का मूल्य' इत्यादि उत्तम प्रहसन हैं। 'प्रोफेसर लाल' नामक प्रहसन में आपने शीशे और बोलने की मशीन के सहारे भाषण देना सीखने वालों पर व्यंग्य किया है; 'गीत के बोल' में सिनेमा के गीतों पर हास्य की उत्पत्ति की है; 'भूल' में एक पत्नी के होते हुए दूसरे विवाह के इच्छुकों का मजाक बनाया है; 'सरकारी नौकरी' प्रहसन में क्लर्क जीवन की एक झांकी उपस्थित की है; 'पुस्तक कीट' रट्टू विद्यार्थियों का व्यंग्यमय चित्र है; 'कार्यक्रम' जनतन्त्र के मंत्रियों पर आक्षेप व व्यंग्य उपस्थित करता है; 'कांग्रेस मैन बनो' अवसरवादी कांग्रेस नेताओं पर व्यंग्य है। 'व्यंग्य' प्रहसन मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। व्यंग्यात्मक रूप में इसमें यह उपस्थित किया गया है कि जो तथ्य हम जीवन में नहीं सह सकते, उसे कहानी में स्वीकार कर लेते हैं। 'कला का मूल्य' प्रहसन सम्पादकों का मिथ्या प्रशंसा व गरीब लेखकों का शोषण उपस्थित करता है। विष्णुजी का दृष्टिकोण मानववादी है। ये आदर्श के बिना जी नहीं सकते और यथार्थ के अभाव में चल नहीं सकते।

श्री प्रभाकर माचवे के प्रहसन बौद्धिक विचार के चिन्तन के परिणाम हैं। 'अदालत के पास होटल'; 'गली के मोड़ पर', 'यदि हम वे होते'; 'वधू चाहिए'; 'नाटक का नाटक'; 'पागलखाने में'; आदि का व्यंग्य तीखा है। आपने आधुनिक शिष्टाचार, सभ्यता का ढोंग, पाखण्ड तथा सभ्य कहलाने वाले जीवन को अपने प्रहसनों का विषय बनाया है। आपके प्रहसनों की पृष्ठभूमि मनोवैज्ञानिक है। भारतीय शिष्ट समाज के अनेक अछूते विषय लेकर आपने प्रहसन रचे हैं। ये [illegible] प्रहसन लेखकों से विशेष प्रभावित हैं।

पौराणिक, चरित्र एवं कथोपकथन-प्रधान तीनों प्रकार के प्रहसन लिखे गये हैं। इनके चरित्र प्रधान प्रहसन विशेष सफल रहे हैं।

मधुकर जी के कई प्रहसन बड़े सफल रहे हैं, जैसे—'नारी की पसन्द'; 'यह पाकिस्तान है'; 'देशभक्ति' आदि। 'यह पाकिस्तान है' प्रहसन में पाकिस्तान में हुई धर्मान्धता, अनाचार, लूट और मौलवियों का व्यंग्यात्मक ढंग से पर्दाफाश किया गया है। लेखक ने चित्रित किया है कि पाकिस्तानी मुल्लाओं ने वहाँ के सामान्य नागरिकों का जीवन दूभर कर दिया है। 'नारी की पसन्द' में नई रोशनी में पले हुए नवयुवकों को व्यंग्य का शिकार बनाया है। '[illegible] भण्डार' 'बिल्ली महारानी'; 'अखिल भारतीय [illegible] विरोधी सम्मेलन' भी सफल प्रहसन हैं।

श्री जगन्नाथ [illegible] एम० ए० के सात प्रहसन प्रसिद्ध हो चुके हैं—(१) 'लोमड़ियों का शिकार' (२) 'लल्लनजी बहादुर' (३) 'नवाब का इन्साफ' (४) 'शतरंज के खिलाड़ी' (५) 'बंटों के शौकीन' (६) 'लस्सी का गिलास' (७) 'संवेदना-सदन'। इनमें 'समवेदना सदन' सर्व श्रेष्ठ प्रहसन है। इसमें दिखाया गया है कि आधुनिक सभ्य संसार में दिखावट इतनी बढ़ गयी है कि शोक के समय रोने के लिए भी लोगों के पास अवकाश नहीं है। एक व्यक्ति शोक मनाने वाली 'संवेदना-सदन' संस्था खोलता है, जहाँ से मृतकों को रोने के लिए शोक-मंडलियाँ भेजी जाती हैं। जिसे हम समाज की सभ्यता कहते हैं, वह सत्य से कितनी दूर है, यह स्पष्ट कर दिया गया है। मनुष्य धन का कितना गुलाम हो गया है; व्यापार व्यसन कितना बढ़ गया है कि धन समेटने की धुन में मानव की सहृदयता, करुणा, नम्रता, सहानुभूति, संवेदना को उसके लालच का जलता रेगिस्तान पी गया है। वर्तमान समाज, सभ्यता, कला, सस्कृति और नाटक के पात्रों पर भी इसमें मीठा-तीखा व्यंग्य है।

आधुनिक व्यंग्यकार लेखिकाओं में श्रीमती विमला लूथरा एम० ए० के कुछ प्रहसन अच्छे लगे हैं—(१) 'प्रीत-भोज' (१९४८) (२) 'टाट और सुतली' (१९४६) (३) 'मुन्ने का नामकरण' (१९४८) (४) 'धोबी का आगमन' (१९४६) (५) 'सगाई का प्रबन्ध' (१९४६) (६) 'आल इण्डिया रेडियो पर तानसेन'; (७) 'टिकट चेकर'। लेखिका में चरित्रों को

व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है। हमारी सभ्यता को स्थान-स्थान पर पछाड़ा है। 'सगाई का प्रबन्ध' में सगाई के समय गृह की आन्तरिक व्यवस्था का अतिरंजित स्वरूप प्रकट किया है। 'आल इण्डिया रेडियो पर तानसेन' में रेडियो का मौजूदा प्रबन्ध, व्यवस्था, बोलने की प्रणाली पर व्यंग्य किया है। विमला लूथरा के प्रहसन परिस्थिति प्रधान हैं। अपने अनुभव तथा निरीक्षण से लेखिका ने कुछ ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया है कि असंगत देख कर बरबस हँसी आजाती है। उन परिस्थितियों में कथावस्तु को इस प्रकार फिट किया गया है कि हास्य स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जाता है। 'संसार का आठवां आश्चर्य (१६५०) में शाहजहाँ के युग का व्यंग्यमय चित्रण है। यह कल्पना करने में कि शाहजहाँ के समय में भी आज कल के पी० डब्लू० डी० जैसा विभाग था, इतिहास के साथ स्वच्छन्दता बढ़ती गई है। ये प्रहसन अंग्रेजी पद्धति से विशेष रूप में प्रभावित हैं।

श्री रामसरन शर्मा ने रेडियो पद्धति पर सुन्दर प्रहसन लिखे हैं। उन्हें सीधी-सादी शैली पसन्द नहीं है। वे भुवनेश्वर तथा प्रभाकर माचवे जैसी हास्य-व्यंग्यमय-शैली में लिखते हैं, जिसमें कटाक्ष और व्यंग्य का सम्मिश्रण है। इनमें हमारे समाज की मूर्खताओं, रूढ़ियों का थोथापन, सभ्यता के दिखावे पर प्रहार है। आपके लिखे हुए (१) 'बीमार बीवी' (२) 'भूतों की दुनियां' (३) 'बेचारी चुड़ैल' (४) 'पत्रकारिता' (५) 'वकालत' आदि प्रहसन प्रसारित हो चुके हैं। 'पत्रकारिता' में आपने आजकल के सिनेमा से प्रभावित सस्ते रोमांस और उथली पत्रकारिता पर व्यंग्य किया है। प्रेम जैसी पवित्र भावना आज कैसी उथली होकर सस्ती हो रही है, जिसका चित्रण किया गया है। 'वकालत' में वकीलों के मिथ्या दिखावे पर व्यंग्य है। शर्माजी का क्षेत्र चरित्रप्रधान प्रहसनों की रचना है। गर्व, पाखण्ड, अहंकार, लालसा, मोह, स्वार्थ को मिथ्या प्रदर्शन का आधार मानकर मानवी भावों का चित्रण करते हुए इनके प्रहसनों की रचना हुई है। आपके चरित्र विशेष 'टाइप' के व्यक्तियों का चित्रण कर व्यंग्य करते हैं।

श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' के प्रहसन 'हजामत'; 'घर और बाहर'; '[illegible]'; 'मुहागरात' (१६३६), 'राबर्ट नैथनिगल ओझा' (१६३७)

समाज का दिखावा, झूठी नेतागीरी, आर्य समाजियों का उपदेशकपन, विद्यार्थियों की अनैतिकता, मिथ्याचार की आलोचना से सम्बन्धित उच्चकोटि के प्रहसन हैं। इनमें मौलिक सूझबूझ और चरित्र-चित्रण की गहराई है। टेकनिक संस्कृति से विशेष रूप में प्रभावित है।

श्री सुबोध मिश्र सुरेश के कुछ प्रहसन समाज तथा व्यक्ति पर विद्युत्प्रकाश डालते हैं—(१) 'गाँव खानसामा' (२) साहित्यिक सनक' (३) 'घनचक्कर' (४)'प्रेमी की पूजा' आदि। 'गाँव खानसामा' में देशी होकर विलायती भोजन करने वाले अधकच्चरे साहबों का व्यंग्य चित्र खींचा गया है।'घनचक्कर' में कर्जदार और कंजूस व्यक्तियों पर व्यंग्य है। 'साहित्यिक सनक' में सम्पादकों का चित्रण है, जो एडीटर, कम्पोजीटर, प्रूफरीडर अर्थात् सब कुछ स्वयं होते हैं और मिथ्या प्रदर्शन करते हैं। रोमांटिक प्रवृत्ति के व्यक्तियों का भी उपहास किया गया है। एक स्थान पर कहा गया है:—

"दुनियां की खोपड़ी औंधी हो गई है। अब लड़कियां प्रेम की कैसी-कैसी लीलायें प्रदर्शित करती हैं—चाय की प्याली हाथ में, मुँह से निकला "आह !" हाथ काँप गया, प्याली चूर-चूर हो गयी ! सूखी जमीन पर चहल कदमी करते वक्त मुँह से निकला—"आह !" हाथ काँप गया, प्याली चूर-चूर हो गयी ! जमीन पर चारों खाने चित्त हो गयी, डाक्टर के यहां आदमी दौड़ाया ! शीशे के पास गई, आले पर दृष्टि पड़ी, मुँह से निकला "आह !" पाउडर स्नो की डिब्बी चकनाचूर होने लगी, पिताजी ने मनिहारी दूकान की ओर मोटर दौड़ा दी'''।"

मिश्रजी के प्रहसनों में गम्भीरता कम है, साधारण कोटि का हास्य अधिक है। इनकी रचनाएँ जी० पी० श्रीवास्तव के 'धोल धप्पे' वाले हास्य की याद दिलाती हैं

श्री गिरधरलाल के राजनैतिक प्रहसन 'डबल रोटी पर संकट' (१६३८) 'पद्मपुराण' (१६३८); 'सपने की मुलाकात' (१६३८) राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर प्रकाश डालती हैं। 'सपने की मुलाकात' में मुसलिनी-हिटलर की वार्ता का एक प्रसंग देखिये !

हिटलर—तुम सब जगह पौलिटिक्स में सीधे से काम लेना चाहते हो।

मुसैलिनी—क्या यह कोई बुरी बात है ?

हिटलर—क्यों नहीं ? सिर्फ बुरी ही नहीं, बल्कि बेवकूफी है... पौलिटिक्स कभी मन्त्र पर चलती है; कभी फूट पर, कभी अकड़ दिखलाती है और कभी चापलूसी। यह वेश्याओं की तरह अनेकों रुख दिखलाती है...।"

श्री वामन मल्हार जोशी एम० ए० का 'स्वराज्य-साधना' देश के नेताओं का कोरे गीत गाना, बाजे बजाना, प्रोपेगेण्डा करना, जिधर देखो उधर झगड़े लेकर निकलना, क्रान्ति के गीत मात्र गाने पर व्यंग्य करता है। इसमें कांग्रेस, समाजवाद, सनातन हिन्दू धर्म, आदि के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। परस्पर लड़ने झगड़ने से कितनी हानि हो सकती है, इसका संकेत है। श्रीमती विवेकवती का एक वक्तव्य देखिये:—

विवेकवती—"जिन्हें कुछ करके दिखाना है, वे अपना समय ... झगड़ों में क्यों खर्च करें ? अरे, काम करने वालों को तो दम मारने तक की फ़ुरसत नसीब नहीं होती है। जो निठल्ले हैं, बेकार हैं, आलसी हैं, वे ही झगड़ते हैं। जिन्हें देश की सेवा करनी है, उनके सामने तो हजारों काम होने पड़े हैं कि आपसी झगड़ों की याद तक नहीं आ सकती। देश की बुराइयों को दूर करने के लिए हममें से अनेकों को अनेक जन्म लेने पड़ेंगे।"

श्री नरकगनन्द मायापहरी का 'धर्मराज का दरबार' श्री ज० प्र० मि० का प्रहसन 'ब्याह, ब्याह, ब्याह, श्री भाई जी का 'फैशनवाली', (१६३६); श्री सुरेश का 'अपनी अपनी डफली' (१६३८) आधुनिक सभ्यता का पर्दाफास करते हैं। श्री रघुवरदत्त का 'मुफ्त में यश' (१६३६) शिफारशी व्यक्तियों का व्यंग्यात्मक चित्रण प्रस्तुत करता है। ये सब प्रहसन आधुनिक सभ्यता के पाखंड अनौचित्य, अनैतिकता तथा अस्वाभाविकता की विवेचना प्रस्तुत करते हैं।

श्री सुशील कुमार चौबे एम० ए० के पांच शिष्ट प्रहसन उपलब्ध हैं— (१) 'फैशन का फन्दा' (२) 'यह रेडियो स्टेशन है' (३) लालाजी के घर में भूत' (४) 'पहली अप्रैल' (५) 'मेहमान'। ये प्रहसन आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के अस्वाभाविक जीवन, मूर्खतापूर्ण कार्य, भोजनप्रियता तथा वितण्डावाद पर व्यंग्य करते हैं। सभी प्रहसनों में शिष्टता की रक्षा का पूर्ण प्रयत्न है-

इस उपेक्षित अंग की ओर गई है। विदूषक-प्रधान प्रहसन की परिपाटी हिन्दी नाटक में लुप्त प्रायः है। व्यंग्य, श्लेष और हास्य द्वारा उच्चकोटि के शिष्ट हास्य की सृष्टि की जा रही है।

१२—हिन्दी में ध्वनि-एकांकी की प्रगति

गत पांच-छः वर्षों में रेडियो ने हिन्दी एकांकी के विकास में विशेष योग दिया है। ध्वनि-नाटक की टेकनीक, रंगमंचीय नाटक की टेकनीक से पृथक् है। ध्वनि-तत्त्व के विशेष उपयोग, संवादों की सजीवता, संगीत के कलात्मक प्रयोग तथा ध्वनि-आलेखन की निजी विशेषताओं द्वारा रेडियो नाटक विभिन्न शैलियों में विकसित हो रहा है।

ध्वनि-एकांकी की एक स्वतन्त्र टेकनीक है। रेडियो-नाटकों में संकलन-त्रय की नए ढंग की व्यवस्था है। कार्य-संकलन, तथा स्थल-संकलन की मर्यादा से इसमें एक सम्पूर्ण कार्य एक ही स्थान पर पूर्ण एवं केन्द्रित होना आवश्यक है। रेडियो-एकांकीकार का मुख्य साधन ध्वनि है। कथोपकथन ही पात्रों के चरित्र, क्रिया-कलाप, गति-विधि, प्रवेश-प्रस्थान आदि की सूचना देकर कथा-सूत्र को आगे बढ़ाता है। इसमें ध्वनि की विशेषता है। ध्वनि के उतार-चढ़ाव से विभिन्न पात्रों की वय, मनःस्थिति तथा विचारधारा का ज्ञान कराया जाता है। ध्वनि-नाटक केवल कान का आलम्बन है। पात्रों के संवाद के अतिरिक्त इसमें कृत्रिम साधनों का भी उपयोग किया जाता है, उदाहरण के लिए, रेल का चलना, घोड़े का दौड़ना, आंधी तूफान, पानी का बरसना-बहना, गली, [illegible], [illegible], [illegible] इत्यादि का आभास रिकार्ड बजाकर

बढ़ाया जाता है। ध्वनि को कन्ट्रोल द्वारा घटाने-बढ़ाने और पृष्ठ-भूमि में संगीत मिलाने के साधनों का भी ध्वनि-प्रणाली में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

रेडियो-नाटक में पात्रों की संख्या कम होनी चाहिये, क्योंकि विभिन्न पात्रों की स्थिति भिन्न-भिन्न ध्वनियों पर ही निर्भर होती है। अनेक पात्रों के कलरव ध्वनि-नाटक को दुरूह बनाते हैं। पात्रों का परिचय, प्रत्येक प्रस्थान की सूचना, स्थान, समय तथा दृश्य-विशेष की सूचना, पात्रों अथवा सूत्रधार की बातचीत द्वारा व्यक्त की जाती है। संवादों तथा सूत्रधार द्वारा दिए हुए कथा-संकेतों में वर्णनात्मकता तथा चित्रमयता रहती है। अनावश्यक प्रसंगों अथवा संवादों को स्थान नहीं दिया जाता, क्योंकि इससे श्रोताओं का ध्यान मुख्य विषय से हट जाता है तथा रसानुभूति में व्यवधान उपस्थित होता है। ध्वनि-एकांकी में निःशब्दता का भी उतना ही महत्त्व है, जितना कि शब्द का।

साउण्ड-इफेक्ट देने के लिए अन्य साधनों के साथ संगीत का विशेष स्थान है। दृश्यान्तर की अभिव्यक्ति विराम (Pause) अथवा संगीत की स्वर-लहरी द्वारा की जाती है। ध्वनि-नाटक की सफलता के लिए नाटककार के अतिरिक्त अभिनेता, रंगमंच-संचालक आदि को सम्मिलित रूप से कार्य करना पड़ता है। रेडियो-अभिनेता का कार्य रंगमंचीय अभिनेता की अपेक्षा कठिन है, क्यों कि उसे समस्त अभिनय कंठ-ध्वनि से ही प्रकट करना पड़ता है। रेडियो में एकांकी नाटक के अनेक रूप प्रचलित हैं—नाटक, रूपक, संगीत-रूपक, प्रहसन, संवाद, प्रकरी, (किसी कौतुहल घटना को मनोरंजक अभिनय में प्रतिपादित करना) अन्तर्दृश्य, पृष्ठापक और इतवृत्ति + ।

रेडियो-एकांकी नाटक—रेडियो-नाटक के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं, जिनमें पात्रों द्वारा ही कथा-वस्तु का आरम्भ हो कर कौतुहल की अनेक परिस्थितियाँ पार कर चरम सीमा में कथानक की परिणति होती है और कथानक मूल सत्य या समस्या को प्रकट करता है। इसका आकार ध्वनि-नाटकों के अन्य रूपों की अपेक्षा बड़ा होता है, दृश्यों की प्रचुरता रहती है, कहीं-कहीं कथानक का भूतकाल के चित्र तथा तदनुकूल वातावरण उपस्थिति करता है। कथा-भाग को एक-सूत्र में नियोजित रख कर कार्य-संकलन का पूर्ण

+ डाक्टर रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित "ध्वनि नाटक की शैली"।

श्री प्रभाकर माचवे के 'मेहमान, [illegible] ,
किसकी ?, 'नृत्योर्माऽमृगमय', 'नाटक का नाटक' (चार भाग), 'पागलखाने में', 'पंच कन्या' क्रम में पाँच नाटक, 'संकट पर संकट' इत्यादि रेडियो-पद्धति पर लिखे गए हैं। इनमें समाज के जीर्ण शीर्ण बन्धनों पर कटु व्यंग्य हैं। इनका मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण इन्हें समस्याओं के मर्म परखने की विशेष क्षमता प्रदान करता है।

श्री जयनाथ नलिन के 'फ़िलासफ़र' 'मेहमान' कैन्वेसिंग' 'सागर तट पर' 'फ़िल्मी कहानी' 'डिमोक्रेसी' 'चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी' 'महालक्ष्मी' 'चोली' 'संवेदना सदन' आदि नाटक प्रसारित हो चुके हैं। उनके व्यंग्य चुटीले, रागद्वेष-शून्य एवं आह्लादप्रद होते हैं। समाज और जीवन की स्वाभाविक निर्बलताओं को वे बड़े व्यंग्यात्मक रूप में उभारते हैं।

श्री हरिशंकर खन्ना के कई नाटक रेडियो पर बड़ी सफलता से प्रसारि किये गए हैं। रेडियो-निर्देशक होने के कारण आप रेडियो की कमजोरियं से पूर्ण परिचित हैं तथा बड़ी कुशलता से वातावरण निर्मित करते हैं। आपः 'स्वयंवर' 'अपमान' 'मुक्ति के पथ पर' तथा 'अचैतन्य' आदि सफ नाटक हैं।

श्री विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त के सात ऐतिहासिक रेडियो-नाटक प्रकाशि हो चुके हैं—'शकुन्तला' 'सम्राट अशोक' 'हारजीत' 'भाई-बहिन' 'मर क भी अमर' 'सिराजुद्दौला' 'कुंवरसिंह' इनमें से अधिकांश पटना रेडियो प्रसारित हुए हैं। इनमें दृश्यों की अधिकता है। 'हार-जीत' के प्रथम दृश्यों में हुमायूँ की कहानियों पर प्रकाश डाला है। तृतीय दृ में अकबर के जीवनकाल का प्रारम्भ हो जाता है और पूरा एकां अकबर के चरित्र पर प्रकाश डालता है इसमें कथानकों का आधिक्य होने कारण घटनाओं के गति क्षिप्र है। किन्तु नाट्यकार ने सवादों को सजीव बन की ओर विशेष ध्यान दिया है। इनके अन्य रेडियो-एकांकियों में घटनाओं की प्रमुखता है और पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने का प प्रयत्न किया गया है।

श्री अमृतलाल नागर के निम्नलिखित महत्वपूर्ण एकांकी प्रसारित हो चुके हैं : (१) 'उजाले के पहिले'—यह मोहनजोदड़ो की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखित सुन्दर रचना है । इस नाटक में इतिहास अंत एक पाप अनश्वर धन और ज्ञान के पद का मार्ग परिलक्षित करता है । (२) 'भारतेन्दु कला'—इस रेडियो नाटक में भारतेन्दुजी की विभिन्न साहित्यिक कृतियों के द्वारा उनके व्यक्तित्व का निरूपण किया गया है । (३) 'गूंगी'—यह समाज की उन लाखों स्त्रियों का प्रतीक है, जो मौन रहकर समाज की रूढ़ियों के जघन्य अत्याचारों को सहन करती हैं । टेकनीक की दृष्टि से इस नाटक में एक नयी परम्परा स्थापित की गई है । रेडियो एकांकी में, जहाँ स्वर से ही चित्र बनते हैं, नाटक की प्रमुख नायिका गूंगी है । (४) 'उतार चढ़ाव'—यह एक मनोवैज्ञानिक नाटक है । परिस्थितियाँ और इन्सान दोनों ही एक दूसरे को परिवर्तित करने की सामर्थ्य रखते हैं । इसमें चित्रित किया गया है कि इन दोनों का उतार-चढ़ाव ही जीवन है । (५) 'चक्करदार सीढ़ियाँ और अंधेरा'—यह भी मनोवैज्ञानिक रेडियो नाटक है, जिसमें पागलों के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया गया है ।

इनके अतिरिक्त नागरजी ने ऋग्वेद काल तथा महाभारत काल के सामाजिक जीवन में नारी का स्थान दिग्दर्शित कराते हुए, तीस मिनट की अवधि के दो नाटक लिखे हैं । इनमें जीवन का सुविकास तथा रस का पोषण साहित्यिक रूप में उपलब्ध है ।

पटना रेडियो से प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' के भी अनेक सामाजिक नाटक प्रसारित हुए हैं । कवि और कहानीकार 'मुक्त' जी ने नाटकों के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है । वे मानते हैं कि आज की आर्थिक विषमता ने हमें देह-धर्मी बना दिया है, यद्यपि संस्कारतः हम मनोधर्मी (या आत्मधर्मी) रहे हैं । यही उनके नाटकों की मूल समस्या है । सभ्यता के विकास ने मनुष्य के जीवन को कृत्रिम बना दिया है और मनुष्य-मनुष्य के बीच अलंघ्य दीवारें खड़ी करदी हैं । उनकी यह भी मान्यता है कि प्राचीन को सर्वथा नष्ट करके नवीन की प्रतिष्ठा से मनुष्यता का यथार्थ कल्याण नहीं हो सकता, बल्कि इसके लिये प्राचीन के साथ नवीन का सहज सामंजस्य अपे-

ने आजकल के कल्पना-प्रिय रोमान्टिक युवक-युवतियों के दिमाग की सनक का चित्रण किया है।

डा० रामकुमार वर्मा के दो रूपक बड़े सफल रहे हैं—'प्रसाद की कला' (१९४८) तथा 'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया' (१९५०) 'प्रसाद की कला' में रेडियो-रूपक के माध्यम से प्रसादजी के समस्त नाटकों की झाँकियाँ अभिनय के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। प्रतिन्यास के रूप में 'प्रसाद' के नाटकों पर समीक्षात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। 'प्रसाद' के प्रथम नाटक 'सज्जन' के विषय में प्रतिन्यास कहता है:—

"यह रही पहली झांकी, संस्कृत नाटक के इसमें प्राण हैं, तो पारसी थिएट्रिकल कम्पनी का शरीर है। एक कैरेक्टर गाना गाता है, दूसरा कविता पढ़ता है, तीसरा जोर से बोलता है। कथा पुरानी है, लेकिन इसमें प्राण नहीं हैं। यहाँ 'प्रसाद' जी संस्कृति के पुराने और हिन्दी के नये नाटक के रास्ते पर चल रहे हैं।

"आइए, दूसरी झाँकी देखें। 'अजातशत्रु' में पश्चिमी नाट्यकला आ गई है, लेकिन यह कथा अधिकतर एलिजवेथन काल की कला से भरपूर है। इसमें स्वगत कथन और अभिनयात्मकता का विशेष प्रभाव है। 'अजातशत्रु' ने जयशंकर प्रसाद को प्रथम श्रेणी का नाटककार घोषित कर दिया।

"अब उनकी कला की तीसरी और आखिरी झांकी देखिए। उसमें पश्चिम की नाट्यकला का स्वतन्त्र प्रभाव है। प्रसाद की मौलिकता अन्तिम सीमा पर पहुँच गयी है। उसमें मनोवैज्ञानिक सरसता का पूर्ण उदय हो गया है, जैसे पूर्णमासी का चाँद हो। 'चन्द्रगुप्त' में अभिनय पूर्ण है।"

इस प्रकार डा० वर्मा ने 'प्रसाद' के नाटकों की झाँकियाँ बड़े मनोहारी ढंग से प्रस्तुत की हैं। जीवन कैसा है, यह 'प्रसाद' के पात्रों द्वारा कहलवा दिया गया है।

दूसरे रूपक 'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया' में अमर सन्त और महाकवि कबीरदास का जीवन-परिचय दिया गया है।

श्री अमृतलाल नागर के कुछ रूपक बड़े गम्भीर और दार्शनिक हैं, जैसे, 'पीकदान' 'महानिशा' 'कला के प्रभु'। इनका अर्थ-गाम्भीर्य दर्शनीय है।

'अबीर-गुलाल' नामक रूपक में नागर जी ने त्यौहार और वर्ग-संघर्ष की समस्या चित्रित की है। 'सीता' में आदर्श और वास्तविकता के दो रूप प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें सीता का अभिनय करने वाली एक अभिनेत्री का मानसिक संघर्ष चित्रित किया गया है। 'पर्दे के पीछे' में कला और संस्कृति का नारा लगाकर मानव संस्कृति को पतन के मार्ग पर ले जाने वाले भारतीय फिल्म-जगत् की एक झाँकी दी गई है। 'चन्दन वन' में कालिदास और शेक्सपीयर की पुस्तकों तथा बुद्ध, ईसा और गांधी की मूर्तियों को अपने ड्राइंग-रूम की सजावट का सामान मान कर सभ्यता और संस्कृति की डींग हाँकने वाले समाज का कुत्सित रूप प्रस्तुत किया गया है। इन रूपकों का उद्देश्य रस का पोषण करते हुए, जीवन का सुविकास करना है।

<u>संगीत रूपक</u>—रेडियो-रूपक में जब प्रवक्ता अथवा पात्र या दोनों ही पद्य या प्रगीत में घटनाओं का वर्णन तथा मनोभावों को व्यक्त करते हैं अथवा कथा वस्तु का अभिनय करते हैं, तो संगीत-रूपक का आविर्भाव होता है। संगीत रूपकों की रचना रेडियो के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी हो रही है।

दिल्ली-रेडियो से पं० उदयशंकर भट्ट के कुछ उत्कृष्ट पद्य-रूपक प्रसारित हो चुके हैं। उनके भाव-नाट्यों में 'विश्वामित्र', 'मत्स्यगधा' और 'राधा' प्रधान हैं, जो पौराणिक होते हुए भी आधुनिक बुद्धिवादी और मनोवैज्ञानिक ढंग से जीवन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं। कला की दृष्टि से इन भाव-नाट्यों में कविता और नाटकीय तत्वों का मणि-कांचन सहयोग है। भट्टजी के तीन ध्वनि-रूपक 'कालिदास', 'मेघदूत' तथा 'विक्रमोर्वशी' विशेष उल्लेखनीय हैं। 'कालिदास' में नाट्यकार ने कालिदास के अन्तर्जगत के विश्लेषण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इनमें कालिदास की रचनाओं के मर्मस्थलों की रूपकात्मक परिणति प्रस्तुत की गयी है। 'मेघदूत' में कालिदास के महाकाव्य में 'मेघदूत' का रूपान्तर है। 'विक्रमोर्वशी' कालिदास का ही एक नाटक है। ये रूपक ध्वनि-रूपक-साहित्य के उन नये रूपों में से हैं, जिनका निर्माण रेडियो की प्रेरणा से हुआ है। इनमें भट्टजी ने ध्वनि-रूपकों की सभी टेकनीकों का उपयोग सफलता से किया है तथा गीत-तत्त्व की प्रधानता रखी है। कोमल तथा उदार भावों को ज्यों का त्यों उँडेल दिया

हैं। कुछ दैनिक जीवन से सम्बन्धित शब्द चित्र प्रधान और कुछ दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी व्यंग्य हैं। इस दिशा में आपके 'साथ वाला मकान', 'मानो न मानो', 'दादी अम्मा आगीं', 'घर का मालिक', 'दफ्तर जाते समय', 'टेलीफोन पर' इत्यादि प्रहसन प्रथम श्रेणी के हैं। चिरंजीतजी प्रहसन के लिखने में उतने ही सफल हुए हैं, जितने संगीत-रूपक लिखने में। इनमें समाज तथा सभ्यता की विद्रूपताओं पर मीठा व्यंग्य मिलता है।

नए रेडियो एकाकीकारों में श्री अनिलकुमार विशेष उत्साह से कार्य कर रहे हैं। आपने सामाजिक एवं ऐतिहासिक एकांकियों के अतिरिक्त कुछ प्रतीकात्मक गीत-नाट्य बड़े सफल लिखे हैं। आपके एकांकियों का क्रम इस प्रकार है:—सामाजिकः—'फागुन के दिन' (फागुन में खेत की फसल कट कर उसका रुपया लगान के नाम पर घरों पर कैसे नज़ा जाता है तथा बेचारा कृषक कैसा निरुपाय रह जाता है, इस तथ्य का चित्रण) २—निर्देशक (सिनेमा जगत् में लेखकों पर होने वाले अत्याचार) ३—प्रजापति की निर्माणशाला (मानव जगत् की बुराइयों पर व्यंग्य) ४—गृहों का निर्णय (नाटक कम्पनी में रहने वाले वैज्ञानिक नाट्यकार की स्थिति) ५—'मैं' (मरने के उपरान्त क्या होगा, इसका चित्रण) (६—'अपने पन का निर्णय') ७—'भूत इत्यादि।

ऐतिहासिक चेतना के अन्तर्गत आपने १—'महामाया' २—'मजबूर' ३—'घूंघट' ४—'पराजय' ५—'कैकेयी लिखे हैं। इनके अतिरिक्त रेडियो पर रूपान्तरित नाटकों में कई कहानियों, उपन्यास तथा नाटकों के ध्वनि संस्करण तैयार किये हैं। इसके रूपक ये हैं—१ 'इरावती' (प्रसाद के उपन्यास पर आधारित) २—'मृगजल' (अनन्तगोपाल शेवड़े के उपन्यास का रूपान्तर) ३—'दासी' (प्रसाद की कहानी पर नाटक) ४—'देवरथ' (प्रसाद की कहानी का रेडियो रूपान्तर) गीत-नाट्यों में आपके प्रतीकात्मक 'मदन दहन' और 'जय भारत जननी' बड़े सरस बन पड़े हैं।

"प्रजापति की निर्माणशाला में आपने वर्तमान काल की यंत्रणापूर्ण दुर्व्यवस्था, मानवजाति के व्यक्तिगत तथा सामाजिक रूपों का चित्रण मार्मिक

श्री प्रभाकर माचवे ने नयी शैली के अनेक सुन्दर प्रहसन लिखे हैं, जिनमें आधुनिक सनक तथा पुरातन रूढ़ियों का पर्दाफाश किया गया है। आपके पास व्यंग्य का तीखा हथियार है, जिसके द्वारा आप किसी भी सामाजिक कुरीति, सनक, रूढ़ि या व्यवस्था को इस प्रकार उभार देते हैं कि वह उपहास-मय प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार के प्रहसनों में आपका 'पुराने चावल' अत्यधिक हास्य-व्यंग्य-मय प्रहसन है, जिसमें पुरानी और नयी संस्कृति की तुलना द्वारा यह दिखाया गया है कि पुराने माप-दण्डों में भी कितना परिवर्तन अपेक्षित है।

श्री अमृतलाल नागर ने दो बड़े कलात्मक प्रहसन लिखे हैं। 'बाँकेमल' तथा 'बाँकेमल फिर आगये' इन दोनों प्रहसनों में उच्च कोटि का हास्य प्रस्तुत किया गया। अन्नपूर्णानन्दजी के हास्य रस के उपन्यास 'मगन रहु चोला' का रेडियो रूपान्तर भी आपने प्रस्तुत किया है।

श्री रामचरन शर्मा के वाग्वैदग्ध्य से युक्त हास्य व्यंग्य मय कई प्रहसन प्रसारित हुए हैं। उन्हें सीधी-सादी शैली पसन्द नहीं। प्रभाकर माचवे और भुवनेश्वर की व्यंग्यात्मक शैली को आपने अपने प्रहसनों में अपनाया है। इनमें उच्चकोटि का परिहास मिलता है! 'बीमार बीबी' 'भूतों की दुनियाँ' 'बेचारी चुड़ैल' 'पत्रकारिता' 'वकालत' आदि प्रहसनों में आपकी पैनी दृष्टि सभ्य समाज तथा शिक्षित वर्ग की विद्रूपताओं की ओर गयी है। बाहर से सभ्यता, शिष्टता और थोथी शान का दिखावा करने वालों का खोखलापन आपने बड़ी चुभती हुई शैली में दिखाया है। शर्मा जी का हास्य शिष्ट है। उन्होंने अधिकतर परिस्थिति-जन्य उपहास की सृष्टि की है।

पं० राजाराम शास्त्री के अनेक प्रहसन प्रसारित हो चुके हैं। इन्हें मनोरंजक बनाने के प्रयास में कहीं-कहीं हास्य इतना भोंडा और अतिरंजित हो गया है कि लेखक के उद्देश्य को ही क्षति पहुँचती है। उदाहरणार्थ 'अदला बदली' में पुरुष और स्त्री के कर्त्तव्यों को महत्त्वपूर्ण दिखाया गया है, किन्तु इस घरेलू लड़ाई में अतिरंजित दृश्यों से काम लिया गया है।

श्री निरंजन के लगभग ५० रेडियो फीचर प्रसारित हो चुके हैं। जो [illegible] के सम्बन्ध में हैं। इनमें कुछ 'लालबुझक्कड़' जैसे प्रहसन

हैं। कुछ दैनिक जीवन से सम्बन्धित शब्द चित्र प्रधान और कुछ दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी व्यंग्य हैं। इस दिशा में आपके 'साथ वाला मकान', 'मानो न मानो', 'दादी अम्मा आगीं', 'घर का मालिक', 'दफ्तर जाते समय', 'टेलीफोन पर' इत्यादि प्रहसन प्रथम श्रेणी के हैं। चिरंजीतजी प्रहसन के लिखने में उतने ही सफल हुए हैं, जितने संगीत-रूपक लिखने में। इनमें समाज तथा सभ्यता की विद्रूपताओं पर मीठा व्यंग्य मिलता है।

नए रेडियो एकांकीकारों में श्री अनिलकुमार विशेष उत्साह से कार्य कर रहे हैं। आपने सामाजिक एवं ऐतिहासिक एकांकियों के अतिरिक्त कुछ प्रतीकात्मक गीत-नाट्य बड़े सफल लिखे हैं। आपके एकांकियों का क्रम इस प्रकार है:—सामाजिकः—'फागुन के दिन' (फागुन में खेत की फसल कट कर उसका रुपया लगान के नाम पर घरों पर कैसे लूटा जाता है तथा बेचारा कृषक कैसा निरुपाय रह जाता है, इस तथ्य का चित्रण) २—निर्देशक (सिनेमा जगत् में लेखकों पर होने वाले अत्याचार) ३—प्रजापति की निर्माणशाला (मानव जगत् की बुराइयों पर व्यंग्य) ४—गूहों का निर्णय (नाटक कम्पनी में रहने वाले वैज्ञानिक नाट्यकार की स्थिति) ५—'मैं' (मरने के उपरान्त क्या होगा, इसका चित्रण) (६—'अपने पन का निर्णय') ७—'भूत इत्यादि।

ऐतिहासिक चेतना के अन्तर्गत आपने १—'महामाया' २—'मजबूर' ३—'घूंघट' ४—'पराजय' ५—'कैकेयी लिखे हैं। इनके अतिरिक्त रेडियो पर रूपान्तरित नाटकों में कई कहानियों, उपन्यास तथा नाटकों के ध्वनि संस्करण तैयार किये हैं। इसके रूपक ये हैं—१ 'इरावती' (प्रसाद के उपन्यास पर आधारित) २—'मृगजल' (अनन्तगोपाल शेवड़े के उपन्यास का रूपान्तर) ३—'दासी' (प्रसाद की कहानी पर नाटक) ४—'देवरथ' (प्रसाद की कहानी का रेडियो रूपान्तर) गीत-नाटयों में आपके प्रतीकात्मक 'मदन दहन' और 'जय भारत जननी' बड़े सरस बन पड़े हैं।

"प्रजापति की निर्माणशाला में आपने वर्तमान काल की यंत्रणापूर्ण

बन पड़ा है। 'निर्देशक' में संस्थाओं द्वारा खरीदे हुए लेखकों की मजबूरियों को चित्रण किया है।

रेडियो रूपान्तरों में 'मृगजल'; 'इरावती' इत्यादि बृहत् उपन्यासों को इस प्रकार संक्षिप्त किया गया है कि सब अनिवार्य घटनाएँ आगई हैं। अनिलजी ने साढ़े-तीन-सौ पृष्ठों को २५-३० पृष्ठों की शृंखलाबद्ध चित्रावलि में सजा दिया है। 'इरावती' बड़ा सफल रहा है। इसमें घटनाओं को इरावती पात्र के माध्यम से संजोया गया है। उसे ही केन्द्र मानकर अन्य अवान्तर पात्रों, घटनाओं, सिद्धान्तों और विषयों को टाला है क्यों कि उपन्यास अधूरा होने के कारण इन अन्य वस्तुओं का विकास निरर्थक हो गया है। 'इरावती' और 'महामाया' का निर्माण यद्यपि रेडियो के माध्यम के लिए हुआ परन्तु इन पर मंच शैली का प्रभाव देखा जा सकता है। दृश्यों की द्रुततर गति द्वारा कथा प्रवाह में उत्सुकता उत्पन्न करना (Tempo बढ़ाना) फिल्मों में देखा जाता है। फिल्म की यह Tempo शैली 'इरावती' में प्रयुक्त हुई है। श्री अनिलकुमार की रेडियो नाट्यकला उत्तरोत्तर विकास की ओर है।

इस प्रकार अनेक रूपों में ध्वनि-नाटक उन्नति कर रहा है।